आनंद.

पांचवा वर्षके लीये.

आनंद पत्रके ग्राहकगणकों.

नेकनामदार लिंबडी संस्थानके महाराजा

श्री दौलतसिंहजी साहेब बहादुर

तरफसें यह खास भेट हैं.

जीन्होंनें आनंद पत्र चाहु वर्षका
लवाजम भेजा है वा भेजेंगे उन्हीकों
यह भेट प्राप्त होगी.

अधिपति–आनंद.
पत्र.

॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

सूत्र वाचकोकों प्रथम प्रार्थना.

शास्त्र मात्रका मूल वेद, याका सार वेदान्त वाका सार–ब्रह्मसूत्र हैं वो अति गंभीर होनेतें सत्संप्रदाय पुरःसर अर्थ विवेचन करनेमें सर्वथा अवलंबन तो श्रीभाष्यकाहि हैं. परंतु मातृभाषा गुजराति और संस्कृत ज्ञान स्वल्प हो करके केवल सदाचार्योंसें श्रवण कीया, वोहि आधारतें साहस कीया हैं. यातें अनेक प्रकार दोष रहे हैं तो भी जिज्ञासुओंकों श्रीभाष्यमें प्रवेश करनेकों सहायक हो. यह अभिलाषातें आरंभ कीया सो श्रीपति कृपातें पूर्ण भया जिज्ञासुओंका भी तथैव हो. येहि उनके लीये वोहि श्रीपतितें प्रार्थना हैं. इति.

लींबडी-काठियावाड
ता. ३ जुलाइ सन् १९१०
ज्येष्ठ कृष्ण १२ गुजराती
संवत् १९६६

दासानुदास.
अनंतप्रसाद

॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

* ब्रह्मसूत्र. *

हमारे वेदांतकी प्रशंसा युरोप अमेरिका पर्यंत फैल रही है तो हमको तो वो समझना अवश्य चाहीये. हम लोकका धर्म वैदिक, हमारा शास्त्र मूल वेद, वाका अंत भाग सो "वेदांत" वो कीतना कोनसा ? वा विषयमें शिष्ट आचार्यमें मतभेद नहि. मूल उपनिषद. और उनकों समुझनेको "सूत्र" जीनका नाम वेदांतसूत्र. कोई ब्रह्मसूत्र कहते हैं तो कोई शारिरकसूत्र भी कहते है. व्यासजीनें वो बनाये हैं. वातें "व्याससूत्र" भी वो कहे जाते हैं. थोडे अक्षरमें बहुत अर्थका समावेश कीया हो वाको सूत्र कहते हैं. उनका मूल वेदांत उतनांहि नहि. किंतु वातें वेदांत सुगमतासें समुझाजावे वो वाका उद्देश है. और येहि कारणोंतें इनकों वेदांतसूत्र कहते हैं. हमकों समझनेकों उपयोगी सर्व बाबतें वामें है. जाके—चार अध्याय कीये हैं, प्रथम अध्यायमें "ब्रह्म" क्या है ? सो समुझाया हैं. दुसरेमें वोहि ज्ञानकों सुदृढ कीया है. तीसरेमें "उपाय" और चोथेमें "फल". वेदांतर्ते क्या समुझा जायगा ? "ब्रह्म". फीर वो समझके हमकों क्या करना ? "उपाय" क्यों ? "फल" के लीये. क्या उपाय और क्या फल वो—ब्रह्म क्या है—सो प्रथम समझके पीछे समझनेका है. वातें यथाक्रम वामें समुझाया है. चार अध्याय या प्रकार या हेतु करके है. हमारा तो "वेद धर्म". "वेद" प्रमाण. हम लोक आपकों "वैदिक" कहावते हैं. फीर आरंभ वेदांततेंहि क्यों करें ? आदि वेदको समझे विना "अंत" कों समझ भी क्यों सकेंगे ? यामें हमारी योग्यता अधिकार कैसे सिद्ध होंगे ? यह शंका ठीक है.

सर्वाधिकार वेदांत नहि. सबको सद्य वेदांतमें नहि प्रवेश करना चाहीये. प्रथम वेदका पूर्व भागहि समझना चाहिये. और वातें व्यासजीने प्रथम वो पूर्व भाग के सूत्र आपके शिष्य पास करवाये. जाके सोला अध्याय है. वो पूरे पढ चूके तो फीर यह चार अध्याय पढने चाहिये. वेदके पूरे सूत्र वीस अध्यायमें; और व्यासजी भी वातें आपके रचे वेदांतसूत्रोंका आरंभहि एसा करते है कि जातें यामें कोनका कब अधिकार है सो समुझा जाय—

प्रत्येक अध्यायके चारपाद करके उनके प्रकरणमें विभाग कीये हैं. वाकों आधिकरण कहते हैं, और वो आधिकरणोंको सूत्रमें समुझाये हैं. एक प्रसंग एक सूत्रतेंभी समुझा जाय. दो,–पांच,–दस, तें, जैसा प्रसंग वामें प्रथम अध्याय प्रथम पाद प्रथम आधिकरण प्रथम मत्रहि यह हैकि—

सूत्र—ॐ ॥ अथा तो ब्रह्म जिज्ञासा ॥ १

" अथ वा लीये ब्रह्मकी जिज्ञासा "

" अत्र " कहे तो कोई एक खास स्थिति हमारी हो तब. और " वा लीये " कहे तो कोई हेतु भी है.

वो दो पदकों समझनेंकों टीकाकी अपेक्षा हैहि—और वो वोहि कि—वेदका पूर्वभाग पढके समझके पीछे—हमारा मन वातें तृप्त न हो " तब ". जो हेतुतें तृप्त न हो वो हेतु यातें पूर्ण होगा एसा दीखे. " वा लीये " ब्रह्मकी जिज्ञासा करनी; एसा तात्पर्य " अथ " और " अतः " का है.

वेदके पूर्व भागके आरंभमें धर्मकी जिज्ञासा करनी कही है. हमारा धर्म—कर्तव्य कर्म हमकों प्रथम समझना चाहीये. सो समझमें

आवे-ऐसे कुछ भी भये वहाँ तेहि-आठ वर्षके भये-कि कर्तव्यमें लगाये, संस्कार करके वेद पढाने लगे. हमारा हमारे धर्मके साथ संबंध करवाया. हमकों " हिंदु " बनाये कि आरंभ भया वेद पढे, तो कोन वर्ण ? कोन आश्रम ? उनके क्या धर्म ? क्या कर्म ? वो सर्व समुझा जाता है. फीर वो धर्मतें हि अर्थ-काम भी मीलसकते हैं. वाके उपाय-फल वामें बताये हैं. यह लोकके तो ठीक. परंतु " धर्म " का मुख्य उद्देश समझके लोक जो आचरना चहते हैं सो-मरने पीछेके लीये काम लगे-वा लीये क्या क्या धर्मकीये तो क्या क्या फल मीलेगा ? वो वामें खूब समुझाया है. सोला अध्याय एसे उपाय और फलके भेद है. परंतु वो सर्व अंत नश्वर फल है एसा उनतें समुझा जाता है. तापर भी जीनकों वोहि वारंवार चाहीये एसी रुची रहे, सो वामें लगे रहते हैं. परंतु जो आप अस्थिर फलतें संतोष नहि पाते हैं वो अनंत स्थिर फलकों चहते हैं. और वातें जब पूर्ववेदांत पढके समझके वामें कहे कर्मके फलको देखके वातें संतोष न मानके वामें जीनका राग-रुची न रहे ऐसे होवे " तब " अर्थात् " मुमुक्षु " कों वेदांतमें प्रवेश करनेका अधिकार है. वो सोल अध्यायके पढनेसें ज्ञान हो तब-उनके लीये यहांतें आरंभकी " अथातो ब्रह्म जिज्ञासा " अब यातें ब्रह्मकों जाननेंकी ईच्छा करों. यह तो " अथ " का सार भया. फीर " अंतः " का ? " वा लीये " सो कैसें ?

परलोकमें ब्रह्माके भुवनमें गये तोभी फीर जन्ममरण रहता है. पूर्व मिमांसानुसार मात्र कर्महि कीये गये तो वाके फल तो नश्वर हि है. यातें फीर करना मीलाना-खाना खूटजाना-फीर करना-यह घटमाल चली जायगी-जाती है-वो ठीक नहि. अब यातें छुटनें और अनंत स्थिर फल मीलानेका विचार करना ठीक है. एसी निश्चय भया है " ता लीये " क्योंकि वो विचार हि " वेद " के उत्तर भाग वेदांतमें

है सो समझके वोहि पूर्व मिमांसामें कहे कर्म धर्म कीये तो अनंत स्थिर फल जन्म मरणतें छूटके मीले—एसा वामें ज्ञान, उपाय फल है. वा लीये यह " अतः " का परमफल ये अर्थ है. जीनकों प्राकृत सुखतें वैराग्य वो " अथ " और परम शांति में राग वो अतः जो हम एसे भये हो तो हमको चाहिये—" ब्रह्मजिज्ञासा करें. " ब्रह्मको जाननेंकी ईच्छा करें.

"ब्रह्म"—वडा. कीतना कोन वातमेंना !? कवतें ! सर्वतें सर्व वातमें सर्वदा; जाकी वडाईकी कोई प्रकार सीमा नहि. जाकी भी कोई प्रकार सीमा नहि. और जातें फीर कोई प्रकार कोई वडा नहि हो सकता वो ! ब्रह्म है.

" जिज्ञासा "—" जाननेंकी ईच्छा " कीये तो वातें क्या होगा ? वोहि अनंत स्थिर फल है सो साक्षात होगा. अनुभवमें आयगा वो हम उपाय कीये तो हमकों प्राप्त हो सकता है. एसे वाके स्वरुप स्वभाव और प्राप्तिके उपायका ज्ञान होगा. और वातें वो फल भी प्राप्त होगा. वो एकके ज्ञानमें सव है. क्योंकि वोहि उपाय वोहि फल है. वाके ज्ञानमें सर्व है. वो जो शास्त्र सीखाता–समुझाता है. वाका नामहि वेदांत है. " अव यातें ब्रह्मको जाननेंकी ईच्छा करे " वामें हम, वो, क्या है ? सो " तत्व " वाको पावनेका " उपाय " ओर वातें " फल, " यह सर्व समुझे जो सूक्ष्मतासे अवके तीन सूत्रमें और स्थूलतासे प्रथम द्वितीय, और तृतीय, ओर चतुर्थ अध्यायमें कहेते हैं. प्रथम ब्रह्म क्या है सो समुझाते है.

सूत्र ॥ **जन्माद्यस्य यतः** ॥ २

अर्थ—जन्म आदि याका जातें ॥

" जन्म " के साथ " आदि, " क्योंकि जो जन्मता है सो

जीवता है फीर मरता है. आदि " कहे तो पालन जो स्थीतिका हेतु और मृत्यु जो लयका हेतु. एसी तीन अवस्था—उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—कोनकी ?

अस्य—याकी—जो देख पडता है, चारुं दिशामे, ओर उपरं नीचें—और जीनके लीये सुना जाता है—वो सर्व चित् अचित्—जीव जगत् जामें सजीव निर्जीव दो प्रकारके पदार्थ देख पडते हैं वो सबको संग " अस्य " लीये तो यह जगत्, करके वामें जो है सो सर्व आ गया. फीर वो पाषाण, पहाड, नदी, समुद्र, सूर्य, चंद्र, देव, मनुष्य, कीट, ब्रह्मा सर्व. जीनकी उत्पत्ति स्थिति और लय सुनते है कि होता है. होयाहि करता है. लयके पीछे उत्पत्ति ओर स्थितिके पीछे लय. एसे प्रवाहकी परंपरा जो होती है वाका कारण जो है–कहे तो–" यतः ", जातें यह सर्व ब्रह्मा समेत ब्रह्मांडकी वाके भीतरके नामरुप मात्रकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय होता है. " जन्मादि " " याका जन्मादि जातें है " सो कोन ? " ब्रह्म ". ब्रह्मको जाननेकी ईच्छा करनां कहीके हि यह सूत्र है. सो ब्रह्मका ज्ञान देनेकोहि है. ब्रह्म कैसा है वो समुझावनेको, यह जगत्का कर्त्ता भर्त्ता संहर्त्ता कोई होगा क्या ? वो एक होगा की अनेक? एकहि सबकी आप कर्त्ता होगा की काम बटे होंगे ? यह कोई सच्च समझके निश्चय करले एसी बात नहि. वातें भी सूक्ष्म वात यह है कि सामान्य तो लोक बोलते हैं कि ईश्वर एकहि है. वो जगतका कर्त्ता भर्त्ता संहर्त्ता एकहि आपहि है. परंतु वानें जीवकों कैसे वनाया ? जगत कोनमेंतें वनाया ? अर्थात् याका निमित्तकारण वो एकहि. फीर और कारणें " उपादान " " सहकारी " इत्यादि कोन ? वो सब शंकाका समाधान व्यासजी संक्षिप्तमें " यतः " जातें कहीं के देत हैं. आगे विस्तारतें समुझेंगे. सामान्य जवाब जगतके अनेक कारण नहि " " एकहि कारण

वो " ब्रह्म " है. " जन्म आदि " में सब वोहि है. या समझें वो कैसा है सो पूरा समझे तो यह सर्व पुरा समुझा जायगा. वा लीये दो अध्याय है. यह दो सूत्रके खुलासेमें यहां तो आप जो श्रुति वचनसें कहते हैं-वो एकका स्मरण करे. जो दोनों सूत्रके मूलरूप स्पष्टहि दीखती है. वो यह है. " यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवंति यत्प्रयन्त्यभि संविशंति तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति " जातें यह भूत उत्पन्न होते है. जा करके उत्पन्न भये जिते है. जामें लय होके प्रवेशते हैं. वाको जानवो ब्रह्म है. " तद्विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म " वाके उपरतें "ब्रह्म जीज्ञासा" ओर "यतो, जायंते" आदिके उपरसें "जन्माद्यस्य यतः" कहा है. यहां "यतः" शब्द है. वातें सूत्रतें "यतः" लीया है. प्रथम जन्महि होता है वातें वो प्रथम कहा है. जब ब्रह्म सर्वको उत्पन्न करने वालाहि भया तो सर्वके पूर्व रहा हि, और वातें सर्व भये, तो देहतें लेके सर्व वातें हि पाये. यह तो ठहराहि. फीर वो उत्पन्न भये वो स्वतंत्र जीव भी नहि हो सकते है क्यों खुशीसें कोइ मरता तो हैहि नहि ! फीर मरके कहां जाना? सो हम नहि जानते हैं. परंतु फीर भी वो–हि गति है. वाका संबंध छुटता नहि " यहां वर्त्तमानकाल " तें एसा चलाहि जाता है करके दीखाया है " जेसे जायंते " तात्पर्यकि हमारा अनादि ते वोहि सब कुछ, वातें सब कुछ, वाके वशमें सब कुछ है. वो ब्रह्म है तो सर्वके लीये वाको जाननाहि अवश्य है.

यह जानना सो श्रवण करके मानना मात्र नहि. अनुभवसिद्ध होना चाहिये. सुना सो जानना एक प्रकार है. और अनुभव भया सो दुसरी वात है तबहि तो " जानना" पुरा भया. ब्रह्मकी जिज्ञासा सो वाके साक्षातकार करनेकी. हम कंगाल मनुष्य देशके चक्रवर्त्तिका साक्षात नहि कर सकते हैं. उंमर भर मानतेंहि रहे कि " विक्टोरीया है " फीर कहां सूर्य चंद्र ! सो तो वाके दासके दास " ता पर जो

वो कोटी ब्रह्मांडाधिप कहा जाता है वाका साक्षात्कार कैसे हो सके ! यह देहतें तो असंभवित हैं, कोइ भी मनुष्य वाकों देख नहि सकता. त्यों एसा माना भी क्यों जाये कि एसा वो एक है, जो सर्व मरे-पें मरता नहि. सर्व जन्मते हैं पें जन्म पाया नहि. सर्वकों दुसरे देवे तबहि मीलता है—एसा नियमहि है. वाके विरुद्ध याकों कोईनें कभी कुछ दीयाहि नहि ! फीर विनाकरण—साहित्य—के कुछ कर्म हो नहि सकता. घट बनाना हो तों कुंभकारकों स्थान, शरीर, इन्द्रीयें तो चाहियेहि. परंतु मृत्तिका, चाक आदि कारण भी उपादान-सहकारी होतेहि है. वातें विरुद्ध एक ब्रह्महि सर्वविध कारण, और वो फीर एसे अनंत प्रकारके जगतका; ओर एकीला ओर सर्वदा है. करके जो कहा सो प्रत्यक्ष अनुमान एकभी प्रकारतें माना नहि जावे एसा है. और वो ठीक वात है. यह प्रकार प्रत्यक्ष वा अनुमान वाके लीये वाके ज्ञान साक्षातकार वाको समझने—मानने वा अनुभव कर-नेको कारण हो भी नहि सकते. व्यासजी तबहि यह सर्व संशयका समाधान करतेहैं कि—

सूत्र—॥ शास्त्र योनी त्वात् ॥ ३

अर्थ—" शास्त्र योनी होनेतें. "

शास्त्र कारण है, साधन है, प्रमाण है. जो करके ब्रह्म जाना—माना अनुभव कीया जाताहै. शास्त्र " वेद " वोभी जैसे ईश्वर है तेसेंहै हि. वो पढे तो, समुझे तो, वामें कही रीति अनुष्ठान कीये तो ब्रह्म है, एसाहि है यों अनुभवसिद्ध होता है. जगतका एकहि कारण ब्रह्म ओर वो सिद्ध करनेका "कारण" साधन शास्त्र है. वातें यो सब प्रत्यक्ष नहिहि होवे त्यों अनुमानमेंभी नहिहि आवे. यह स्वीकारके, आ-स्तिककों "शास्त्र" या विषयमें कहे सो कबुल यह प्रतिज्ञा करनी. यह

दृढ श्रद्धा शास्त्रमें होनी चाहीये. क्योंकि ब्रह्मकों जाननेका वोहि उपाय है. कोइ कहे शास्त्रतें तो सुख मीले–दुःख जावे, वाके उपाय यह लोक परलोकके लीये है वाको ब्रह्मके साथ क्या संबंध? तब कहा है–

॥ तत्तु समन्वयात् ॥ ४

॥ तत्–शास्त्रकों तो सम्—उत्तम प्रकार. अन्वय–संबंध होनेतें ॥ शास्त्रकों और ब्रह्मकों क्या संबंध है? हमकों जो चाहीये सो. हमकों अनंत स्थिर फल चाहीये. सो कोन है? कर्म धर्मतें मीले वो फल तो वाके प्रमाणमें अर्थात् अंतवान और अल्पहि हो सकता है. ब्रह्महि "सत्य ज्ञान अनंत आनंद" है. वो "ब्रह्मको जाननेवाला परम पावता है." यह कहेनेवाला शास्त्र है. परम पुरुषार्थरूप ब्रह्म सो ब्रह्मके ज्ञानतें वो फल, वो ज्ञान शास्त्रतें, या रीति शास्त्रकों ब्रह्मके साथ संबंध भया है. ब्रह्मकों जानने मानने—वाका साक्षातकार करनेका उपाय शास्त्रमें कही रीति करें वातें फलरूप समन्वय ब्रह्मकों है. वाका साक्षातकार शास्त्रप्रतापतें हो जायगा. वा लीये और छोडके ब्रह्मकों जाननेकी ईच्छा करना. क्योंकि वोहि सर्व कुछ है. वाका उपाय शास्त्र है. वो प्रापक है. वातें प्राप्य वोहि परम पुरुषार्थरूप अनंत स्थिर फल ब्रह्म है सो मिलेगा.

येहि चार सूत्रका सार—याका हि चार अध्यायमें विस्तार है.

इति चतुःसूत्री.

ईक्षत्यधिकरण.

यह जगतमें जो सर्व हम हैं. उनका कर्त्ता एकहि है. जगतका सर्व प्रकार कारण वोहि है. वाकी हि अधिक पहेचान करनेका प्रसंग है.

ब्रह्मको जानना चाहिये. येहि तो वेदांतका उद्देश है. तो वांकी यह प्रथमहि विशेपता है कि वो यह सर्व जगतका कर्त्ता कारण विलक्षण रीतिसें है. वो क्या ? वाके ईक्षणतें यह जगत भया है. वो वात श्रुतिमें जहां "ईक्षति" शब्द है वहां है. वाके उपरतें यह सूत्र ओर अन्य सूत्र मीलके यह अधिकरण है. यातें याका नामहि "ईक्षत्यधिकरण" है. वैसे हि सूत्रके पहिले शब्दके उपरसें प्रायः अधिकरणके नाम धरे गये है. ये लक्षमें रखना.

छांदोग्यमें वाप बेटेके बीचमें संवाद है. वामें पिताके वचनमें है कि " तदैक्षत " वानें इच्छा की. ओर फीर आगे है कि वातें यह जगत होने लगा. फीर वामें " तेज भया " वो तेजनें इच्छा की, जल भया. " जलनें इच्छा की "—एसे भी वचन है. वहां शंका उत्पन्न होवे कि " तेजनें इच्छा की—जलभया " एसेहि क्रमतें जगत भयाहो तवतो जडमेंतें जगत भया ठहरा. वातें जगतका कारण जड अचित हि ठहरे. फीर जामेंतें यह सर्व भया वो ब्रह्म है.—कहा है वो—ब्रह्म भी तो अचित हि भया. अचितका नाम " अशब्द " भी देते हैं. जो शब्दतेंहि नहि समझा जावे वो " अशब्द. " " शब्द " कहे तो शास्त्र. वातेंहि समझा जावे एसा तो ब्रह्म—वैसा यह नहि है. प्रत्यक्षतें अचित देखा—समुझा जाता है. वातें वाकों " अशब्द " कहेते हैं. वो जगतका कारण क्यों न हो ! ऐसी शंकाके समाधानमें सूत्र कहा कि.

स. सू. "ईक्षतेर्नाशब्दम्"॥ ५ ॥—ईक्षतेः न अशब्दम्.

अर्थ—इच्छा करता है वातें अशब्द नहि है.

विवेचन—श्रुतिमें वहां प्रथम कहा है " जो सत् हि एकहि आद्वितीयहि रहा वानें इच्छा की. " ओर वो इच्छातें यह जगत् भया है. सो इच्छा करना वो स्वभाव " अशब्द "—प्रकृति—अचित्—जड—

जो तेज जल आदि कहे उनका नहि होता है. वातें श्रुतिमें जातें जगत भया कहा है वो चेतन है. ब्रह्म चेतन है. ओर वो या प्रकार येहि श्रुतित सिद्ध भयाकी वो जो एकहि अद्वितीयहि रहा, वाके संकल्प (ईक्षण) सें यह सर्व हो गया. एसा वो " सत्य संकल्प है. "ईक्षण" देखनां " राजाकी नजर भयी तो गाम वस गया " कहे तो येहि की " कृपा पूर्वक ईच्छा " संकल्प. वैसेहि हम सबकी उत्पत्ति. वाकी कृपायुक्त " ईक्षण "—नजरतें है. जैसे राजाकों लोक ओर जमीन होती है. वो मीलके गाम होता है. वैसे ईश्वर ब्रह्मकों भी अचित-तत्व प्रकृति और चित तत्व. जीववर्ग संग रहा. परंतु जैसे बीज ओर पृथ्वी प्रथक् पडे रहे तो बीजतें वृक्ष जमीनमेंतें नहि होता तेसे हम प्रकृतिमें बद्ध प्रलयमें पडे रहे. आपतें एसे नहि हो सके ! वानें संकल्प कीया तब प्रकृतिमें विकार होके वो शरीररुप बनी ओर वामें जीव शरीरी आके जागृत भया—प्रकट भया—उत्पन्न भया भी कहते है. जैसे मालीने जमीन खोदके वाकों सींचके वामें बीज धरा. वातें आगे वृक्ष होता है. एसे सर्वेश्वरके संकल्पतें यह जगत भया है. जो हि-साब अभी यह जन्ममें हमारा है कि पिताके उदरमें अन्नके साथ हम आये रहे. वो वीर्यरुप होके माताके उदरमें भेजे गये. ओर वहां ह-मारा एसा अद्भुत कारीगरी युक्त शरीर वो शुक्र शोणीतके संयो-गतें क्रमशः बढता बनाया गया. वामें सर्वेश्वरके संकल्पकोंहि मुख्य हेतु समजके वाकों हमारा पेदा करनेवाला कर्त्ता हम मानते है. "हम" कहे तो मात्र हम जीव नहि. वीर्यमेंतें एसे आकृतिवाले देहकों भी बनावनेवाला—वोहि जीवको वामें बसावनेवाला है. एसा चित अचि-तका कर्त्ता वोहि यह एकके हिसावतें सबका समझे. अभीके हिसाबसें श्रष्टीके आरंभका भी समझकि वो सदा सबका कर्त्ता है. वातेंहि सर्व भूत उत्पन्न भये है. सो फीर एकहि वेर नहि. जैसे हम कंइ वेर जन्मे

रहे, मर गये; वैसे समग्र ब्रह्मांड (जगत) भी कंई वेरं उत्पन्न भया, रहा, प्रलय भया, सो जाके संकल्प करके जाके ईक्षणतें होता है वो कोन ? जब जीव चित तत्व बद्ध नहि हो सकता, तो अचित " अशब्द " तो आपतें होहि केसें सके ? उनमें " इच्छा करना " स्वभावहि नाहि. ओर श्रुति कहती है कि "जगतके कारण" नें ईच्छा की. वातें जगत भया, तो सिद्ध भयाकी जगतका कारण ब्रह्म—ईच्छा करनेवाला—सत्यसंकल्प परमचेतन एसा समर्थ है की वाके संकल्प मात्रतें ब्रह्मांड; ब्रह्मा देव ऋषी; फीर पीपीलीका पर्यंत भये. ब्रह्मा भी पीछे भये तो ओरकी क्या कहे ? ! वहां अचितका तो संभवहि नहि—यह सिद्ध भया. यदि शंका करेंकि जडका ईक्षण भी श्रुतिमें वहां कहा है. प्रथम तो " सत् " एक अद्वितीय ब्रह्मका ईक्षण कहा. वानें ईच्छा की, ओर " तेज भया " ऐसाहि वहां है (छांदोग्य छठवा प्राठक—द्वितीय खंड) परंतु फीर वो तेजनें ईच्छा की, ओर वानें जल कीया " एसा भी है. वातें यह ईक्षणकों अक्षरशः न माने, ओर गौण माने, जैसे कहते है कि " घेहुं वृष्टीकी ईच्छा कर रहे है " वैसे यहां माने. क्योंकि तेजको ईच्छा करना वैसा संभवित है. तो वो क्यों न संभवे ! सूत्रकार हि वो शंका उठाके समाधान करते है—

सू० सू ॥ गौणश्चेन्नात्म शब्दात् ॥ ६ ॥

" गौणश्चेत्—न—आत्म शब्दात् "

" अर्थ—गौण कहे तो नहि आत्म शब्दतें "

विवेचन—तेज शब्द मात्र गौण ईक्षण जो हो तो लेनां ठीक है. परंतु आगे खुलासा है. " ऐतदात्म्य मिदं सर्वम् " यह सर्वका वो आत्मा है. " वो " कहेतो " ब्रह्म " यह सर्व ब्रह्मात्मक है तो सिद्ध भयाकि तेजका ईक्षण भी ब्रह्म वाका आत्मा होके. " हाथनें मारा " कहे तो आत्माको लेके; तैसें वो मुख्य

ईक्षणहि है. गौण नहि समझना. वहां "आत्मा" ऐसा स्पष्ट शब्द होनेतें वाका ईक्षण माननां गौण नहि "शब्दात्" कहे तो श्रुतिके शब्दतें–यह आत्माका इक्षण सिद्ध है.

यद्यपि हम यह अचित शरीरके आत्मा है. जाको जीव चेतन कहते हैं. वैसे कोटी देहोमें कोटी चेतन आत्मा है. परंतु कही गयेकि आप हमतें नहि जन्म पाये; हमारा एक ओर आत्मा भी है. वो हमारा कहे तो चेतन "जीव वर्ग" मात्रका-देहधारी मात्रका. "आत्मा" कहे तो जेसे हम एक देहमें व्यापीके वाकों धारके वाका नियमन करते है–वेसे वो सर्व देह ओर सर्व देहधारी आत्माओंको धारीके उनका नियमन करनेवाला है. ऐसा वो एकहि यहुतहि वडा "ब्रह्म" सर्वका कारण है. वाके संकल्पतें सर्व भये रहे है. ऐसा "ऐतदात्म्य मिदं सर्वं" जो यह सर्व जगत ब्रह्मात्मक है सो वो सर्व जगतके देहधारी –भिन्न भिन्न–देव मनुष्य वामेंभी देवदत्त–श्वेतकेतु–ऐसे–रूपके उपरसें नाम पायेहै. परंतु उन सर्वमें वो एक जेसे रहा है–तेसें अचितमें भी वोहि रहा है. चित अचित कोई ऐसा नहि जामें वो न हो. वा विना कोइभी कछु होहि नहि सकता. "ऐतदात्म्य मिदं सर्वं." यह सर्व कों ब्रह्मात्मक कही दीये तो येहि वात समझनेकी है. वातें चितकीनांई अचित–जेसे यहां कहे तेजमें वेसे जल्में, देहमें वेसेहि जीवमें–प्रत्येकमें–वेसेहि सर्वमें–वो है. वातें जो है सो या प्रकार ब्रह्मात्मक ही है. ओर वाका वरावर नाम दीये तो सर्व वाको शरीर है. चित ओर अचित ऐसे वाकों दो प्रकारके. शरीर है. ओर वो जहां जो है वो सर्व जगत भर. तवहि कहा–ऐतदात्म्य इदं सर्वं. यह सर्व वाके आत्मक. यह सर्वका वो आत्मा–सो हमारा भी तो भया हि. हम यह शरीर विशिष्ट होनेतें वेसे देहधारी रहे–वहांलों हमकों–"श्वेतकेतु" कहे. परंतु सत्य शरीरी वो है–जाके

हम श्वेत केतु भी शरीर है. जेसे मात्र जड शरीर सो श्वेतकेतु नहि तेसे श्वेतकेतु कहे तो शरीर विशिष्ट चेतनहि नहि, परंतु ब्रह्म–विशिष्ट वो जीव–भाकृत देहधारी, अर्थात् ब्रह्महि है. वोहि सत्य है. वो तेरा आत्मा है. हे श्वेतकेतु–वातें "वो तुं है." यह सर्व वो है. अर्थात् यह सर्वमें वो है. वाको लेके है. यह सर्वका एक शरीरी वो है. शरीर शरीरी संग रहे तो जेसे उनका रुप एक देख पडता है वेसे नामभी तो एकहि दीया जायगा. शरीरका नाम वोहि शरीरीका भी. सत्य रुप तो शरीरीका है. तेसे सत्य नामभी तो वाकाहि, ओर प्रकार "तेज" कहे तोभी वो नाम शरीरीका–ब्रह्मका है करके वहां यह ज्ञानतें यह समझतें श्रुति कहती है. वातें तेजका ईक्षण तो क्या! किंतु श्वेतकेतु नाम ब्रह्मका दे यें–ओर वाका ईक्षण कहें तोभी अंत सत्य यह है कि वो परम आत्माका ईक्षण है. ओर यहां वाका "सत्." नाम दीया है वो सत कहे तो वोहि परब्रह्म. वाकोहि सर्वका मूल सर्व यामें अभीभी है. सर्वमें वो है हि वो हमारेमेंभी है. वातें वो हम है. एसा विस्तारतें समुझाया है. वहां प्रकृतिका प्रकरण हि नहि. वातें प्रकरणअनुगुण अर्थ कीये तो बराबर है. और वहांहि यह सर्व जाके ईक्षणतें भये कहा है, सो वाकों ऐसा सर्वका एक शरीरी सर्व चित अचितका एक आत्मा–वो ब्रह्मकों हि–"सत्"–नामसें, "तत्" नामसें, "आत्मा" नामसें कहा है. वोहि जगतकारण ठहरता है. और काहुका भी ईक्षण कहेतो वाका गौण, ओर परमात्माका हि मुख्य, समजनां, जैसे माता पिता जन्म देनेवाले कहे तोभी परमेश्वर–ब्रह्म–मुख्य मानतेहि है. वोहि सर्वमें एक, सर्वका सत्य आत्मा, व्यापक पिता है सो वो सबकुछ है. ओर वादिकों यहां कहा है. प्रकृतिको नहि कही. वाके और हेतु येहि प्रकरणमें देख पडते है. यह प्रश्नोत्तर बाप बेटेके बीचमें होनेका हेतु मोक्षोपदेश है. पितानें पुत्रकों

वो दीया है. वामें पुत्रकों शरीरको तो " अहं " न समझे. परंतु आपकों भी स्वतंत्र " अहं " शरीरका स्वामी न समझे. किंतु जो सर्वका आत्मा होनेतें हमाराभी आत्मा है. " हम " चेतनकेभी भीतर है वाका विचार-ध्यान—उपासन—प्रेम-श्रद्धा—एकाग्रता—विशुद्धता उपकार वृत्ति दीनतापूर्वक कीया करे तो वो भीतर रहा अंतरयामी हमकों ये वहारके बंधनतें छोडता-मोक्ष देता है. वो कृपा करके यहां यह देहमेंहि हमारा काम कर देता है. जो जगतका कर्त्ता—जातें जगत सर्व भया. वातें हम भये. तो अब वातें भिन्न जेसे राजा गाम वसाके राजधानीमें चला जावे वेसा वो हमारा कर्त्ता नहि भया. वो तो सदा सर्वत्र होनेतें सवमें चित अचितमें होताहि हैं. हमारी चित अचितकी कोनभी स्थिति जन्म, स्थिति, मृत्यु, अथवा प्रलय हो—हमारेमें जैसाका वैसा रहताहि है. वो अभी तो फार हृदयमें अंगुष्ठमात्र पुरुषके खास आकारमें है. ऐसा अनुभव हो सकता है. वो यहां हि हम वाकों उपासके वाका साक्षातकारभी कर सकते हैं. वा लीये अनेक प्रकार अनेक गुण विशिष्ट अनेक हेतु करके वाका चिंतवन—वामें स्थिति—वो निष्ठ-रहेनेंको-शीखानेंकोहि सर्व ब्रह्मविद्या है. वेसीहि एक यह पिता पुत्रके संवादरुप " सत् " जाका नाम-एसी वातें " सद्विद्या " भी है. यामें भी वो सतमें निष्ठ रहनेकोहि यह उपदेश है. वहां असतकी वात क्या ? सततेंहि भया सतकोंहि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सत्य संकल्प-मानो. तवहि वाका ईक्षण सफल होवे. वो सफल भया है. वो वेसाहि है. जो बांध सकता है सोहि छोड सकता है. वो छोडता है वेसा भी वाका स्वभाव सामर्थ्य हैं. ओर वो वामें लगे रहे तो-एसा वो परम अद्भुत श्रेष्ठतत्व बंधनतें-प्रकृतितें विरुद्ध स्वभाव गुणवाला सो प्रकृति " अशब्द " केसे ठहर सके ! एसा सूत्रकार वोहि एक हेतु एक सूत्रसें यहां कहते है कि जातें ईक्षण—अशब्दका नहि ठहर सके.

सूत्र–" तन्निष्ठस्य मोक्षो पदेशात् " ॥ ७ ॥

अर्थ—" वाके निष्टको मोक्षका उपदेश देनेतें. "

विवेचन—" वो सतमें निष्ट लगे रहे तो मोक्ष हो जायगा. एसा वहांहि उपदेश दीया है तो वोहि " ना श-ब्दम् " अशब्द—अचेतन—प्रकृति—जगत कारण नहि है यों समुझेहि जाना—प्रकरण संपुर्ण हो वहां पर्यंत. फीर मोक्षका प्रसंग होके भी वा लीये सामान्य विवेचन होता तोभी जो अशब्द–प्रकृतिका प्रकरण—होता तो वातें तो वचना चाहिये. एसा पिता कहते. क्यों कि (अशब्द—प्रधान भी वाका नाम है.) वोहि तो " हेय " हैं वो त्यागे तब हम छुटे. और वैसा यहां नहि कहा. यह ओर हेतु भी है सो कहते है.

सूत्र—" हेयत्वा वचनाच्च. " ॥ ८ ॥

अर्थ—हेयत्व वचन नहि होनेतें " च " ओर एक हेतु अधिक.

विवेचन—" हेय "–" अवचन. " नहि कहा–कहीं भी की वो जगत कारण हेय हैं. त्यागनें योग्य हैं. ऐसा तो नहि कहा और वातें निरुद्ध वोहि उपादेय हैं करके कहा है. और कहांलोंकी वो जगत कारण सतका ज्ञान भया तो सर्वका ज्ञान होगा. ऐसा लाभ वामें हैं. अरे ! मूख्य येहि तो प्रतिज्ञा है. यह फीर प्रकरण देखें तो एक ओर–हेतु है ऐसा दीखावते हैं.

सूत्र—" प्रतिज्ञा विरोधात् "– ॥ ९ ॥

प्रतिज्ञाका विरोध होनेतें. प्रधान जगतकारण नहि हैं. अचितका ज्ञान तो हैं. वातें तो हमारा जीव आत्माकों पूरा ज्ञान नहि. फीर परमात्मा–सर्वात्माका–वो सर्वके साथका–वाके एसे शक्तिमान सत्य संकल्पका ज्ञान तो होवेहि कहांसे ! जो प्रतिज्ञा है कि वो एकके ज्ञानतें

वो दीया है. वामें पुत्रकों शरीरको तो " अहं " न समझे. परंतु आपकों भी स्वतंत्र " अहं " शरीरका स्वामी न समझे. किंतु जो सर्वका आत्मा होनेतें हमाराभी आत्मा है. " हम " चेतनकेभी भीतर है वाका विचार-ध्यान—उपासन—प्रेम-श्रद्धा—एकाग्रता—विशुद्धता उपकार वृत्ति दीनतापूर्वक कीया करे तो वो भीतर रहा अंतरयामी हमकों ये वहारके बंधनतें छोडता-मोक्ष देता है. वो कृपा करके यहां यह देहमेंहि हमारा काम कर देता है. जो जगतका कर्त्ता—जातें जगत सर्व भया. वातें हम भये. तो अब वातें भिन्न जेसे राजा गाम वसाके राजधानीमें चला जावे वेसा वो हमारा कर्त्ता नहि भया. वो तो सदा सर्वत्र होनेतें सबमें चित अचितमें होताहि हैं. हमारी चित अचितकी कोनभी स्थिति जन्म, स्थिति, मृत्यु, श्रष्टी प्रलय हो—हमारेमें जैसाका वेसा रहताहि है. वो अभी तो फार हृदयमें अंगुष्ठमात्र पुरुषके खास आकारमें है. ऐसा अनुभव हो सकता है. वो यहां हि हम वाकों उपासके वाका साक्षातकारभी कर सकते हैं. वा लीये अनेक प्रकार अनेक गुण विशिष्ट अनेक हेतु करके वाका चिंतवन—वामें स्थिति—वो निष्ट-रहेनेंको-शीखानेंकोहि सर्व ब्रह्मविद्या है. वैसीहि एक यह पिता पुत्रके संवादरुप " सत् " जाका नाम-एसी वातें " सद्विद्या " भी है. यामें भी वो सतमें निष्ट रहनेकोहि यह उपदेश है. वहां असतकी वात क्या ? सततेंहि भया सतकोंहि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सत्य संकल्प-मानो. तवहि वाका ईक्षण सफल होवे. वो सफल भया है. वो वैसाहि है. जो बांध सकता है सोहि छोड सकता है. वो छोडता है वैसा भी वाका स्वभाव सामर्थ्य हैं. ओर वो वामें लगे रहे तो-एसा वो परम अद्भुत श्रेष्टतत्व बंधनतें-प्रकृतितें विरुद्ध स्वभाव गुणवाला सो प्रकृति " अशब्द " केसे ठहर सके ! एसा सूत्रकार वोहि एक हेतु एक सूत्रसें यहां कहते है कि जातें ईक्षण—अशब्दका नहि ठहर सके.

सर्वका ज्ञान होता है तो वो सिद्धतो–सत् परमात्माके ज्ञानतें हो सके. ओर यहां वोहि सिद्ध करते हैं. या विषभी यहां प्रधान सत् जगत-कारण करके नहि कहेते हैं.

मुक्ति पर्यंत कहां जावे ? " सत् " शब्दका उपयोग यहां शुषुप्ती प्रकरणमें भी कीया है. शुषुप्तीमें तो हम प्रधान (देह) को भूल हि जाते हैं, फीर कहां जाते हैं ? कोनमें लीन होते हैं ? वो " सत् " है. हमतें भी ओर; ओर प्रधानतें भी ओर, जो हमकों एसे सुवाय देता है. घडीभर बंधनके भोग मात्र अटकाय देता है, यह भी हेतु है.

सूत्रः ॥ स्वाप्ययात् ॥ ॥ १० ॥

अर्थ—आपमें लय होने तें.

विवेचन—शुशुप्तीमें सतके संपन्न जीव होते हैं. वो " सत् " प्रकृति कैसे होवे ! वो जो हमकों लगीहि है. ओर वाकी असरोंनें तो हम घडीभर छुटके शुशुप्तीमें ओर विश्राम पावते हैं वो सत् प्रधान नहि हो सकता. यहां जो " स्व " सो जामें हम भी लय होते हैं वो हमारा भी " स्व "—आत्माका आत्मा—हमतो भूलनेवाले वामें डुबनेवाले वो हमारा स्थान विराम हैहि. वोहि सत्—वोहि सत्य है. जो हमकों जगाता आपमेंतें फीर प्रकृतिके अभिमुख करता है. सत्य " स्व " वोहि है ज्ञानी यह सत्य कभी नहि भूलते की हम स्वतंत्र नहि शरीरीहि नहि हैं. वोहि सत्य शरीरी जो जहां है. सो वोहि है वाकाहि सब कुछ है. वातें वोहि सबकुछ है. हमतो वाके शरीर–शेष—परतंत्र हैं यहांहि देखोकि देव ऋषीकी भी ये कहां शक्ति जो जीव बंधमें रहे–बंधकों न भोगे जेलमें केदी ओर महेलमें राजा एक-दम एक पल एकसा अनुभव करें ! कोइ न स्वशक्तिसें शुशुप्ती पाइ सकता है. न वो स्थितिमेंतें जाग्रत दशामें आइ सकता है. जो

ब्रह्मादिककों वरसों तक सुलाये रखता है वो सत है: वो वैसा सामर्थ्यवान है. सो विचारी प्रकृति अचित—आपतें कुछहि न करनेवाली कैसे ठेर सके ! होहि सके ! यातें जगतकारण प्रकृति नहि. अशब्द नहि. किंतु वोहि है जो " शब्द " वेदांतशास्त्रतें प्रतिपादित समुझा बुझा जाता है. वाके लीये वोहि एसे ज्ञान शक्ति वल वीर्य तेज ऐश्वर्यादि सामर्थ्य व्यापकत्व—सर्वात्मकत्व—सर्व शरीरकत्वपूर्वक सर्वका सर्वविध कारण है, एसा यह एकहि विद्यामें नहि कहा. श्रष्टी होनेका जगतकारण कोन है ! कैसा है ! वाके उपनिषदोंमें जहां जहां प्रकरण है वहां देखें तो उन सर्व वचनोंकी गति समानहि होती है.

सूत्र. " गति सामान्यात् "॥ ११ ॥

अर्थ—गति समान होनेतें,

विवेचन—सर्वमें सर्वेश्वर एसेहि गुण शक्तिवाले ब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तमकों जगतकारण कहा है. यातें प्रधान जगतकारण नहि सो सर्व प्रकरण देखे तो नहिही है ऐसा ठहरता है. ज्यों वो नहि है ऐसा ठहरता है वैसा ब्रह्महि जगतकारण है. ऐसा भी श्रुतियोमें स्पष्ट कथन है. प्रमाण वहुत है.

सूत्र—श्रुतत्वाच्च ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रुति होनेतें.

विवेचनमें अत्र कीतनी श्रुतियें कहे. आरंभहि " जाको जानो " जो कर्त्ता भर्त्ता संहर्त्ता " सो ब्रह्म है " करके कीया है. " वाकोहि शास्त्रतें सर्वविध संवंध है " कहा है. वाके अनेकगुण शक्ति हेतु करके अनेक नाम है. जीतनेगुण शक्ति उतने नाम और वो सर्व समझे तव वाकों पूरा समझे यातें वाकों वैसा अनंतगुण शक्ति नाम

रुपवाला ऐसा एक सर्वका सर्वविधकारण समझना येहि सार है. प्राकृत गुणरहित वातें निर्गुण भी वोहि, और सर्वज्ञ सत्य संकल्प साहित वाकों कल्याणगुण भी कहे सो उचित है. हमारे सरीख हाथ पाद नेत्र कांनतें नहि तो करता चलता देखता सुनता वातें वाका वो नहि है कहेभी ठीक है तो वो हमारी नाई करता देखता नहि ऐसा समुजावनेको अकर्त्ता कहेनां भी ठीक है. और अचिंत्य शक्तितें करता है. वातें वोहिको कर्त्ता भी कहेनाहि पडता है. वोहि वात रुपकी भी है. निषेध सो प्राकृतका—हम देव मनुष्योंके मुकाबलेतें और जो जो कहा है सो भी सत्य है साकार रुप आदि अप्राकृतता—दिव्यता—सो वाकी विशेपता विलक्षणता अचिंत्यताकों लेके कहा है, ऐसा समझनां. सर्वमें वो है. यातें सर्व वो है. यह भी ठीक, और वो सर्व तो वाके शरीर, आप स्वरुपतें वातें भिन्न एसे आप वो नहि यह भी ठीक है जैसे हाथ भिन्न, पाद भिन्न, वोहि फिर शरीर, वोहि फिर में, ओर में उनमें रहा भिन्न ओर वो मेरे शरीर. यह भी ठीक है. कलमनें लीखा, शाहीनें, हाथनें, इन्द्रीयनें, वो लीपीके संस्कारवाले ज्ञानतें, वो ज्ञानवाले आत्माने—वेसे वो सर्वके शरीरी परमात्मानें. यह सर्व कहा जाता है. क्योंकि एक कृत्य अनेक हेतुतें होता है. परंतु मुख्य जाकी इच्छातें है वो वाका कर्त्ता कहा जाता है. वोहि मुख्य कारण कहा जाता है परंतु और का निषेध वातें नहि समझनां ऐसे जगतका कारण सत्य ब्रह्म कहेतो वातें वाके गुण शक्ति, चित, अचित, शरीर, वैभव, जो वाके कर्म, उनका अनादित्व प्रकृति पुरुष आदि वो सर्वका अनादित्व निषिद्ध नहि करनां. जहां जहां जो जो श्रुति कहे—वाकों वामें सुसंगतें अविरुद्ध लगाना. और वो सर्व विशिष्ट सर्व गुण शक्ति वैभव शरीरवाला जबतें तबतें वो—सर्व युक्त विशिष्टहि—ऐसा वो एक अद्वितीय ब्रह्म जगतकारण जगत अवस्थामें—और प्रलय अवस्थामें है. वो

हि सर्व श्रुतिका समग्र ज्ञान—संपूर्ण ज्ञान है. उनमेंतें जीतना भाग त्यागें, उतनां वाका ज्ञान हमकों न्यून होगा. हमकों वो सुसंगत न दीखे वातें भाग त्याग करना ठीक नहि. वाकों सुसंगत लगानेका यत्न करना आपसें न बने तो औरोंकी बुद्धिकी सहाय लेनी. वो सहाय देनेकों भाष्यादि तैयार है. वो सर्व वेदांततें जो वेद्य हो वो जगतकारण है. वो ब्रह्म है. सद्विद्यामें वाका नाम सत है. ऐसा वो एक अद्वितीय चित अचित शरीर—और सत्य संकल्पादि गुण विशिष्ट है. यह वाका प्रभाव प्रतापपरत्व कर्ता होके विलक्षणता विशेपता शास्त्रतेंहि समुझाजावे. प्रत्यक्ष वा अनुमान नहि काम लगे. यों वाका एक प्रकार कुछ समझे एक प्रसंग पुरा भया.

आनंद मयाधिकरण.

एक खास अधिकरणतें श्री व्यासजीनें सद्विद्यामें ते ईक्षत्याधिकरणमें यह सिद्ध कीया की जगतकारण—जो ब्रह्मतें दुसरा तत्व प्रधान वो नहि है. यातें दो तत्वकी सिद्धिके साथ एक शरीर और दुसरा शरीरी. सर्व ब्रह्मात्मकहि ऐसा भी सिद्ध भया. और मुख्य ये सिद्ध भया कि जगत कारण एसा समर्थ कर्त्ता अचिंत्य शक्तिवाला है. कि जाके संकल्प मात्रतें जगत भया है. हम भी भये हैं. क्या हम भी वाके शरीर है; यहां अभी शंकाकों अवकाश है कि जगत बनानेवाला जड नहि. परंतु हमारे जैसा एक जीव क्यों नहि ? तीन देवकों कर्त्ता भर्त्ता संहर्त्ता माननेवाले भी हैं. वो ब्रह्महि जगतकारण हो. अर्थात् अचिततत्व तो कर्त्ता कारण नहि होई सकता. परंतु चित तत्व तो होई सके ! तो वो हमारेसरीखहि चेतन—क्यों न हो. फीर हमतें भी और चेतनमें चेतन हमारा भी शरीरी हमतें भी विशेष, क्यों ? वि-

लक्षण भिन्नतत्व क्यों ? अर्थात् अत्र यह अधिकरणमें जीव जगत-कारण नहि होहि सकता है. वो समुझाते हैं. वा लीये वो तैत्तरीय उ-पनिषद्की आनंदवल्लीका प्रसंग लेते है. वहां एक व्यक्तिकों लेके वामें पांच (कोश) शरीर समुझाये हैं. अन्नमय–यह प्रत्यक्ष स्थूल–वामें "प्राणमय." वामें "मनोमय"–वामें "विज्ञानमय"–और वामें "आनंदमय" यह पांचों शरीरोंका जो शरीरी वो जगतकारण है. वो·जीव वा वातें कोई और है ? यह शंका है. वहां वाके यह पांचों शरीरके नाम दीये हैं. और वो शरीरवाले आत्माकों जगतका कारण करके फीर कहा है–समझनेका यह है कि जैसे श्वेतकेतुकों "तुं ब्रह्म है" कहा है. ऐसा हि यहां भी है. अचित्–चित्–और भीतर ब्रह्म–सर्वेश्वर–वो आनंदमय है. अन्न, प्राण, मन, यह तीन अचितमय,–ओर विज्ञानमय सो "जीवात्मा"–वो चित्त, ऐसे जाकों अचित और चित शरीर है वो जगतकारण है. वहां प्रकृति जीव–दो शरीर समु-झाये है. यहां वामें विभाग करके पांच कहते हैं. एकहि वात है–वाके शरीरकाहि विवेचन है. वो एसे शरीरवाला होके फीर आनंदमय है. वातें हि वो जीव नहि–हमारेसरीख नहि. हमकों शरीर कर्मके बदल हमारी ईच्छा विना वानें–दीया वैसा मीला है–अर्थात् केदीके साथ सिपाहिकी नांई हम वाके वश हैं–ओर परब्रह्मकों वो शरीर राजाके साथ सिपाहिकी नांई–वो अचित–चितकी स्वरुपस्थिति प्र-वृत्ति वाके वश है. या रीति ऐसे शरीरवाला वो जगत-कारण है. वो प्रकरणमें कहीं चूके की सर्व वाके संकल्पाधीन है. जेलमें रहे जेलरकी नांई वो सर्व वाके तावेमें है. परमात्माकी लीलाके वो परिकर है. क्योंकि वो चाहे वैसे वो होहि रहते हैं. ऐसा वो विलक्षण शरीरी है. और वाको वो सुखकर होके वाकों आनंदमय हि कहा है. यह सर्व राज्य प्रजातें वो जगतका रा-

जा मोज कर रहा है. वाका आनंद कीतना कहे ? जैसे ग्रामधनीसे तालुकदार खंडीआ, मांडलीक और चक्रवर्त्तिका आनंद अल्प कहो. ऐसाहि यह सर्वके एक शरीरीका—जगतकारणका आनंद समुझावनें-को वडे अभ्याससें वार वार आनंदवल्ली प्रकरणमें कथन है. वाका स्मरण करावते सूत्रकार कहते हैं. सो जगतकारण अल्पज्ञ, अल्प शक्ति-वाला, पराधीन वद्धचेतन नहि. किंतु अनंत आनंदमय वो पांचमा विज्ञानमयका भी शरीरी वाकेभी भीतर रहा है. ऐसा आनंदमय है. ज्यों अधिक शरीर त्यों अधिक आनंद, क्योंकि ईच्छासिद्ध उनका सव होता है. सव सर्वथा सर्वदा स्ववशहि है. ऐसे अनुकुल शरीर है. श-रीर कहो—राज्य कहो—वैभव कहो, भोग कहो. राजा दुर होके भोगता है. यहतो भीतर होके, राजाकोंतो ओर ठगभी सके, वो सर्वका संग भोग लेभी न सके. यहतो न ठगावे, न एककेभी भोग नियमन विना रहता है ! ऐसा अद्भूत विलक्षण आनंदमय शरीरी ये है. और वातेंहि वाकी गणनाका अभ्यास श्रुतिमें कीया है. वो स्मरण करके सूत्रकार यहां कहते है. जीव कोईभी वडा राजा देव सत्ताधीश हो. वो ऐसा आनंदमय नहि ठहर सकता. न वेदांतनें वहां जीवकों कहा है. क्यों ? देखीये.

सूत्रः—आनंदमयोऽभ्यासात्" ॥ १३ ॥

अर्थ—आनंदमय है अभ्यासतें.

विवेचन—कोन आनंदमय है ? जो ब्रह्म है वो—जो सत है—जा-के ईक्षणतें, और विना श्रम ! सव जगत होता है, वो सत्य संकल्पनें चाहा कि वैसा होहि जावे. यातें वडा आनंदहि कोनसा ! और वाको अन्य कोइ दावादार नहि, न समान, न अधिक—आप विना जो है वो सर्वका चितका और अचितका, ऐसा होयाहि करे एक चक्रवर्त्ति राजा. जाके सर्वज्ञ संकल्प पुर्ण वो कैसा हो, तव होवे ? प्रथम वाका

एक रुपक बांधके वाके आनंदका "नाप" करनेको आधार लेके श्रुति फीर उत्तरोत्तर जो चेतन अधिक अधिक पुण्य प्रताप अधिक उच्चतर योनिमें–अधिकारमें–जो अधिकाधिक आनंद पावते है उनकी गणना यहां वारंवार ब्रह्मके आनंदकेसाथ की है. वो गणनाका अभ्यास कीया है. जामें जीवोंमेंभी मनुष्य चक्रवर्त्तिके उपर देवलोकमें शतशत-गुण अधिक उत्तरोत्तर जीनका आनंद हैं वेसोंकी गीणती की है. फीर मुख्य देवोंतें इन्द्रका शतगुण; वातें ब्रहस्पतिका–वातें ब्रह्माका शत-गुण " आनंद " कहा है. यह सर्व वो ब्रह्मके आनंदके अंतर्गत वाका आनंद कीतनां सो कहनेको श्रुति प्रवर्त्त भयी है. परंतु आगे अब वा-णीकों शक्ति नहि क्या ! द्रष्टांत नहि ! क्यों नहि ! मनकी गति ब्र-ह्मांडमें स्थेवर्ते पिंड पर्यंत ! फीर वो कहांतक ? वोतो वातें बहुत है. वातें " वाणीभी जहां अब पीछी फीरती हैं ओर मन भी पहुंच नहि सकता "–तात्पर्यकी जाका कहे समुझे तो पार नाहि उतनां आनंद है. वो जगतकारण है. वो जीव कैसे होइ सके ! जीव तो वो आनंद की-तनां वो यह देह मनतें जानभी नहि सकते हैं फीर वोहि जगतका-रण होंगे. ऐसी शंका–भी केसे होइ सके ! यातें श्रुतिमें यह आनंदम-यका प्रकरण ओर वामें वाके आनंदमयका अभ्यास कीया है वो हेतु दिखाके ठहराते है कि जगतकारण जीव नहि होइ सकता. जीवतें अन्य वो है. ऐसा वहां कंठतेंहि कहा है. जीवकों. जो विज्ञानमय है वाको भी वाका शरीर और वाके भीतर यह तो है ऐसा स्पष्ट कहीके वातें वह जगत होता है करके वहांहि कथन है. यातें जगतकारण ऐसा आनंद निधान जीवतें अन्य विलक्षण विशेषहि है, यह प्रकरणमेंतेंहि और भी बहुत हेतु पायेजाते हैं. जातें जाव जगतकारण नहि यों सिद्ध होता है. वो आपहि कहेंगे. पहिले यह " आनंदमय " शब्दमेंहि शंका जो उठ सके वो उठाके निराकरण करलेते है.

सूत्र–विकार शब्दात् न इतिचेन्न प्राचुर्य्यात् ॥१४॥

अर्थ–विकार शब्दतें नहि, ऐसा कहे तो ! वो ठीक नहि. प्राचुर्य होनेंतें.

विवेचन—" आनंदमय " को जगतकारण कहेनेंतें जीव तो क्या ! प्रकृतिकों. क्योंहि न समझे ! क्योंकि जीवतो अविकारी है. और यहां तो आनंदके साथ " मय " प्रत्यय लगा है. वाका अर्थ विकारसूचक है. जैसे " सुवर्णमय " तैसे यह " आनंदमय" कहे तो विकारी ठहरा. वोहि सूत्रमें प्रश्न है. विकार शब्द "मय" है. वातें परमात्मा नहि. फीर उत्तर है कि ऐसा नहि. वो उत्तरमें हेतु कहेते है. "मय " प्रत्यय जहां बहुत्व बतावना हो वहां भी लगता है. आनंदका प्राचुर्य उत्तरोत्तर शतगुण कहांनेंसे वो बहुत आनंद होनेंतें आनंदमय कहा है. जैसे " शकटमयी यात्रा " वो प्रकृति तो क्यों होवे ! वो तो आप भोग्य है. वो स्वतः अकर्त्ता है. परंतु वाके भोक्ता जो जीव उनकों वो प्रकृतिमें आनंद–वाके विकारमें भोग्यत्व दीखता है. वाका भी हेतु यह सर्वेश्वर है. ऐसा वहां वो प्रकृति वा पुरुष तो नहि. परंतु उनका भी आनंदप्रदाता है. ऐसे वाकों खुद धन, वा, भीखारी तो नहि किंतु दाता वाकों कहा है. दोनों तें स्पष्ट भिन्न कहा है.

सूत्र–तद् हेतु व्यपदेशाच्च ॥ १५ ॥

अर्थ—वों हेतु कहा है. वातें " च. "

विवेचन—" च " एक हेतु अधिक. सो येहि की वो हेतु है. काहेका ? जगतके जीव मात्रकों भी आनंद देनेका. वहांहि ऐसा स्पष्ट वचन है कि यह नहोता तो काहुकों आनंदहि नहोता. येहि तो सर्व चेतनमात्रकों आनंद देता है. सबकों सत्र. देने वाला, तो फीर

परिणाम आनंदका देना भी भयाहि. राज देने वाला, राजा बनावने वाला; वोहि वाका वाकों आनंद देने वाला भयाहि. वोहि ब्रह्मा इन्द्र बृहस्पति, नरपति कोईभी हो. वो पद मीलेपरभी यह उनका आनंद न भोगनें देते तो वो भोग मीलेपे रोगी दुःखी रहे, वो भोग देता है, और भोगनेका योग भी वोहि करावे-तब उतना होता, रहता है. ऐसा चेतनोकों आनंदका देनेवाला सर्वप्रकार येहि है. ऐसी मुख्य बातमें भी चेतनमात्र जाके परतंत्र है. वैसा जगतकारण उनतें विशेष " आनंदमय " है. सो जीव कैसे ठहरे-जो वाके भीखारी बातें वो देवे तब उतना आनंदहि पाइ सकते है. तात्पर्यकी वो सर्व बातें आनंद पावनेवाले है. बातें जो आनंदमय कहा-वो जगतकारण जीवोंतें अन्य है.

सूत्र—मान्त्रवर्णिकेमव च गीयते. ॥ १६ ॥

अर्थ—और मंत्रके वर्णहि ऐसा गान करते हैं.

विवेचन—वहांके शब्दोंके अर्थ-वो श्रुतिमंत्रके वर्ण-अक्षरहि वैसा गाते हैं. श्रुतिमें कहते है की "ब्रह्मका-जाननेवाला परम पावता है" पूरा आनंद तबहि की ब्रह्मका साक्षातकार हो. क्योंकि वाहिको अनंत स्थिर फल कहा है. तबहि पूर्वके साथ उत्तरभागका मिमांसा भी यह कर रहे है. वो यहां " सत्यज्ञान अनंत ब्रह्म है " ऐसा येहि उपनिषदमें फीर वो आनंदमयकों कंठतः कहते है कि वो ब्रह्म है. वाके लक्षणपूर्वक सत्यज्ञान और फीर अनंत. " सो अनंत तो एकहि ठहर-सकता है. जीव नहि ठहर सके है.

सूत्र—नेतरोऽनु पपत्तेः ॥ १७ ॥

अर्थ—ईतर नहि वो नहि घटता है.

विवेचन—ईतर जीव वो नहि घटता है. वो मुक्त भया तब आनंद-

रुप हो. परंतु पूर्व दुःखी अनादितें रहा वो सदा आनंदमय केसें हो सके? जब वो अज्ञ बद्ध रहा तब जगतकारणकों न रहा! दुसराहि बद्ध नहिही ठहरते हैं. यह सत्य ज्ञान मंत्रमें वाका स्वाभाविक "विपश्चित्त्व" सर्वज्ञत्व कहा है. सदा सर्वज्ञ कोई जीवात्मा नहि ठहरते हैं. अनादि सर्वज्ञ वोहि है. ऐसें मंत्रोंके वर्णतें जीव नहि ठहरता वो प्रतीत नहि.

फीर वो ब्रह्महि होजाता हो तो पूर्वभी वो ब्रह्म हि होवे, उपाधीतें दुःखी भया होवे तो ऐसा वो है हि नाहि. दोनों तत्वहि भिन्न-शरीर शरीरीहि हैं. अनादितें विलक्षणहि हैं.

सूत्र—भेद-व्यपदेशाच्च ॥ १८ ॥

अर्थ—ओर भेद कहा है वातें.

विवेचन—श्रुतिमें "यातें अन्य आत्मा आनंदमय है" ऐसा विज्ञान मयतें. "अन्य" वो शरीर, यह शरीरी-मनके भी पीछे-विज्ञानमय कहीके वातें फीर वढके अन्य ऐसा वातें आनंदमयका भेद कहा है.

यहांहि याकों जगतका कारण ऐसी रीतितें कहा है कि वो कोईभी हमारे ब्रह्मांडके अंदरका जीव नहि ठहर सकता. जो जीव जगत करे तो वाकों साधन अवश्य चाहीये. कोईभी कृति करनेकों प्रथम देह पीछे इन्द्रियें, पीछे जगा, पीछे प्रकाश; ब्रह्माकों भी देह इन्द्रियें ब्रह्मांड मीला तब आगे काम वढासके है. ऐसे उनकों प्रकृतिके संगकी अपेक्षा रहती है. वो प्रकृतिका एक नाम "अनुमान" है. वो अनुमानतें समुझी जाती है. वातें वो शब्दप्रयोग करके ओर "काम" कहे तो ईच्छातेंहि—ईक्षणतेंहि वो सर्वेश्वरका जगतकर्तृत्व यहांहि कथन कीया है वाकों स्मरण कराईके कहते हैं.

सूत्र—काम्माच्च नानुमाना पेक्षा ॥ १९ ॥

अर्थ—कामतें अनुमानकी अपेक्षा . नहि. दो " च " कार कर
दोनों हेतु कहे हैं.

विवेचन—" वानें कामना की " और जगत भया. ऐसा
श्रुतिका कथन है. जैसे वहां " ईक्षण " शब्द है. " कामना " क
की " ईच्छा " कहो. सो वो करे ओर जगत संकल्पमात्रतें बन
शरु होजावे ऐसी शक्ति जीवोंकी नहि है. विना शरीर और करण
मात्र संकल्पतें कर सके ऐसा वो हम सर्व बद्ध चेतनोंतें विलक्षण
गतकारण यहां कह्या है. यो जैसा वानें चाह्या वैसा होने लगा. त्रिगु
साम्यकी मिश्रण होता है. अंड बनता है. वामें ब्रह्माका देह बनता
वो सब करनेमें वाको कोइ " अनुमान " प्राकृत पदार्थके संबंधकी
अपेक्षा नहि है. वो अकर्त्ता ओर कर्त्ता, वो हाथ नहि. और कर्त्ता
सो या प्रकार, हमतें विलक्षण न ग्रहण करे तो—हमतें न हो सके. ऐस
कोइ होवेहि नहि. यह मान्यताके आग्रहपें येहि ठरावपें आये कि
सत्य कर्त्ता और अकर्त्ता है. वो दोनो प्रकारकासहि ओर सूत्रका
वोहि हेतु करके सिद्ध करते हैं कि जीव सो जगतकारण नहि है. कर
होके अकर्त्ता सो वोहि है. अब अंतकी बात.

सूत्र—अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ २० ॥

अर्थ—यामें याका वो योगशास्त्र कहता है.

विवेचन—यामें " ब्रह्म " में " याका " जीवका " वो योग
आनंदका योग कहता है. श्रुतिवचन. है कि " वोहि रस है "
रसको मीलाके आनंदी होता है, रसरुप परब्रह्म वाकों मीलानेवार
वातें ओरहि होना चाहिये. जो वो रसकों मीलानेतें फीर वो रस

वाला आनंदवाला होता है. जैसे जलकों मीलावे वो गीला शीतल, सुगंध अत्तरकों मीलावे वो सुगंधी, एसे यह अनंत स्थिर फल रसरुप, जगत मात्रका आनंद जाका कोट्यांश, वो हमतें जीव मात्र तें अन्य अनंत परमानंदघन वाते हि परमप्राप्य भी है. ओर वोहि सत् ब्रह्म आत्माका वाचक जगतकारण है. वातें वो जीव तें याविधि भी अन्य-तत्व है श्रेष्ट है प्राप्य है. ऐसा यह आनंदवल्लीका सब प्रकरणहि विस्तारतें सिद्ध करता है

अंतराधि करण.

ब्रह्मका ज्ञान मीलानेकों वेदांतके आरंभमें वो जगत कारण है. यह प्रथम ज्ञान–फीर वो सर्व प्रकार वोहि कारण कर्त्ता भर्त्ता संहर्त्ता भी है, और वातें वो अकर्त्ता निर्गुण सो हमारे सरीख व करणों इन्द्रियों तेंहि करनेवाला नहि; किंतु संकल्पनें करनेवाला है ऐसा ईक्षति अधिकरणतें कहा. संग ये भी समुझायाकि वाके शिवाय और मिथ्याहि नहि. परंतु प्रधान तत्व अचित है. और वातें यह ईच्छा करनेवाला ओरें रहा है. दोनुं अनादि तत्व है. परंतु भिन्न लक्षणवाले ओर वो विरुद्ध–एक कुछ न कर सके ऐसा–अन्य सर्व कर सके ऐसा फीर वैसा ईच्छा करनेवाला तीसरा तत्व जीव चेतन है. परंतु वो भी जगतकारण–ब्रह्म नहि है क्योंकि जीव भी अनादि तें ईश्वर तें अन्य तत्व है. वो अल्पज्ञ दुःखी और यह जगतकारण सर्वज्ञ सुखी आनंद-मय और वो जीवके भीतर एक शरीर ओर दुसरा शरीरी एसा है. वातें ब्रह्मके शिवाय अनादि तें वातें विलक्षण ऐसे दो तत्व अचित ओर चित्त है परंतु वो एक भी जगतकारण नहि हो सकते है. जगत-कारण तो वो तिसराहि तत्व जो, सत्य संकल्प आनंदमय है. जो जी-

वकों प्रकृति तें मुक्त करके आपका-आनंद देनेवाला—ओर वा लीये जीव यत्न न करे वहां लों संकल्प तें जन्ममरण देनेवाला—वो सर्वका आत्मा है. सर्व के भीतरहि है. दो तत्व तें अलग पृथक ऐसा नहि. जैसे हम प्रकृति तें भिन्न देहतें अलग होवे. वैसा वो होइ नहि सकता है क्योंकि वो अनंत है—कहेतो—सर्वमें सर्वत्र सदा ऐसा है कि वस्तु मात्र चित अचित जो कही जाती है वो सर्वमें वो है. वाके बिना कोइ वस्तु है हि नहि. वो तो भीतर है हि. वो वैसे रुपतें भीतर रहा सो वाका निराकार रुप है जाकों न हाथ पाद नाक कान रुप रंग—यह ठीक है. परंतु जैसे वेसा वो रहे पर वामें सत्य संकल्पत्व आनंदमय त्वादि असंख्य गुण शक्ति है. वैसे वो वोहि स्वस्वरुप परभी खास आकार धरे एसी शक्ति भी वामें है. वो एसा साकार होता है जैसा दीव्य पदार्थ जो आप है वोहि द्रव्यका वो आकार है—वातें दिव्या कार है. यह एक प्रकारका शरीर वाकेहि लीये है. वाकों—दुसरा जगत शरीर है उभयमें वोहि एक आत्मा शरीरी है, क्योंकि वो अनंत है. जो जहां दीखे वामें वो तो है हि. या रीति वाकों दो प्रकारके शरीर है. एक यह जगतरुप चित अचित—क्योंकि उनमें आप रहा उनका नियमन करता उनकों धारता है. समस्त चित अचित वाका शरीर प्रत्येक वस्तुका वो शरीरी ऐसे रुप मात्र वाकेहि अंत है परंतु वामें वो तटस्थ सरीख कर्त्ता होके अकर्त्ता, चितशरीरकों उनके कर्म भोगावनेकों आचित शरीरमें विकार करता है. जाकी भली बुरी असर वो जीवोंकों होती है. आप असंग अलिप्त होके उनकी ईच्छा—यत्न कर्मफल सर्वमें सहायी रहता है. फीर वो उतनांहि एसाहि नहि. वाके लीये जाननेका बहुत है. अब यहां वाके खास रुपका प्रसंग आवता है. उपर कहा वैसे—ज्ञानानंदात्मक रुप भी वाके अनेक हैं. यह वेदांतका रहस्य है. उपासकोंकों हि उप-

योगी है. मुमुक्षुओंकेहि लीये विशेष है. वो रुप आकार मात्र मनुष्यमें नहि किंतु देवोंमें भी, उनके बडे शरीरोंमें भी वैसे दीव्य रुपसें रहता है. और जो योग्यता मीलावते हैं सो वाको देख सकते हैं. अपनीहि ज्ञान दृष्टीसें–वाकों अनुभवते हैं. वो कहते हैं कि वाकों हाथ पाद शीर्षादि सर्व होके वो पुरुषाकार है. वो प्राकृत नहि. अतिहि दीव्य–हमारेहि हितके लीये हितकर और रमणीय–वातेंहि वाको " हिरण्मय पुरुष " कहते है. श्रुतिमें छांदोग्यमें एक प्रकरण है. वहां वाके एक ऐसे रुपके लीये या प्रकार श्रुति वचन है.

" यह आदित्यके अंदर हिरण्मय पुरुष दीखता है. हिरण्यश्मश्रु हिरण्यकेश नखतें शिखा पर्यंत सर्व सुवर्णमय वाकों–जलमें रविकीरणतें विकसीत कमलके सरीख लोचन है. वाकों " उत " ऐसा नाम वो सर्व पापतें दुर है ईत्यादिकों विचारें तो प्राकृत आकृति नहि किंतु "हिरण्मय" वो " पुरुषाकार " ठहरता है. क्योंकि वहां " श्मश्रु" भी कहते हैं परंतु वाकों भी " हिरण्मय " येहि प्राकृततें विलक्षणता कि "केश भी" वेसे. सब कुछ सुंदरवर्णवाला एकहि द्रव्यका एक सरीख है. फीर वाकों नख सहित कहे तो हम पुरुष वाकी नकलहि है. वो ऐसा आकारवाला ठहरा—जैसा पुरुषका आकार है. फीर वामें जो खास ध्यान खींचे वेसा है सो वाका " लोचन " उत्तम स्थितिमें रहे. कमलकी उपमा वाकों देनेतें शीतल, मधुर, सुधा युक्त, प्रसन्न, आकर्षक लोचनवाला–वो पुरुष है. जो वातें दृष्टी जोडें उनके लीये–फीर वो ऐसा भी तो मोहक नहि कि जातें " स्नेह मूलानि दुःखानिं सरीख हो. वाका तो नामहि " उत " श्रेष्ट उंच दीया है, और सत्य प्रत्यक्ष श्रेष्टता वाकी येहि कि वो " सर्व पापतें दूर है. हमारी देह पाप–कर्मके फलमें बनी हैं तवहि क्षरण नश्वर है. यह पापतें " और दूर " वाका " प्रतिस्पर्द्धि " वानें " उत्कृष्ट " है. तवहि वाका ध्यान उ-

पासना ब्राह्मण मात्रकों क्या द्विज मात्रकों त्रिकाल संध्यामें आवश्यक ठहराया है. ब्रह्मकों जाने, सेवे, वोहि ब्राह्मण. वो रुप, वो आकार हमारे उद्धारके लीयेहि है. हमारा अर्घ, जल, नमस्कार स्वीकारके वो निमित्ततें हमकों शुची करनेकों हमारा भाव " आप " में लगा र-खनेकोहि वेसा मनोहारी है. वो सूर्यलों कहां जावे ! वो तो दिवस-कोंहि दीखता है. परंतु हमारी आंखमें भी वेसाहि पुरुप उपासना कीये तो दीख पडता है. एसे साकार रुप कीतने है ! सो अब विचारे ! और वहांहि प्रश्न उठता है कि यह क्या है ! कोन है ! साकार पुरुप आकार–हाथ पाद नख शीखा–कंह तो जीवहि ठहरे. फीर वो देव हो, सूर्यमें दीखता है. वो सूर्य हो, नेत्रमें दीखे सो वाका अभिमानी कोइ देव हो परंतु परमात्मा सर्व जगे व्यापक, सर्व रुपोंके भीतर रहनेवाला अरुप निराकार अपार है. वो साकार परिमित केसे होइ सके ! जो स्वीकार लेवेकी वाकी हजारों विशेपता, विलक्षणता है. सबहि शास्त्र-गम्य कही श्रुतियें कहती है तो माननांहि भया, तर्क निकाम है. के क्यों हो सके ? यह–कहेनां कहां चल सकता है ? जब वो भयाहि है दीख पड रहा है करके सत्य वक्ता सर्वज्ञ श्रुति कहहि तो रही है. वातें मांनाके वोहि वेसा भया है. वाके विपयमें नया नया इतनां जानने सरीख है. कि जाका पार नहि. निराकार आकाश तें वायु ! निराकार वायु तें अग्नी ! वेसे वातें कहां विरुद्ध धर्मी ठंडा जल ! वो प्रवाहीकी क्या स्थूल पृथ्वी ! वो मीट्टी मेंतें कहां अनेक प्रकार गंध रस वाली औपधी ! एक प्रकृति द्रव्यमें इतनी यो-

वातें यहांलों हम वाके उपरतें अनुमान कर सके की यह भी कोई वडे पुण्यशालीका उत्तम प्रकारका प्राकृत शरीर हो—जगतकारण सर्वेश्वर हि वाका क्यों माने ? प्रमाण तो ब्रह्मके विषयमें शास्त्र हि है. जो वचनसे ऐसा सूर्य नेत्रमें आकार है मानके कल्पते हो कि वो प्राकृत जीवका रुप है वोहि श्रुतिकों अधिक विचारों वहींतें जवाव समाधान मील जायगा वो स्पष्ट खोलके दीखानेंकों यह अधिकरण है. वो जो अंतर—अंदर—नेत्र वा सूर्यमें रुप दीखता है, वो परब्रह्म जगतकारणका है. जीवका नहि. क्यों ! वाके लक्षण धर्म यहां हि उपदेश कीये हैं.

सूत्र—अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ २१ ॥

अर्थ—भीतर वाके धर्म उपदेश करनेतें ॥

विवेचन—कोन धर्म ? वो, जो भीतर पुरुप कहा वामें जहां वैसे वाके धर्म कहे है. जैसेकिं " वोहि सर्व पापतें उपर है—दुर है. " "अपहत पाप्मा " है—जो लक्षण परमात्माकाहि ठहरता है. देहरुपवाला होके अपहत पाप्मत्व जीवका होहि नहि सकता. देवोंको देहवंधन—पापका फलहि है. वातें छुटनेकोंहि—वातें शुद्ध होनेकों हि—वो प्रयास कर रहे है—मुक्ति चहते हैं सो यह पापरुप—और पापोत्पादक—देहतें, और श्रुतितें यह अंतर रहा पुरुप—जाका पुरा नाम " अंतर्यामी " है—वाको " अपहत् पाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपास सत्यकाम—सत्य " संकल्प, " ऐसा " पापतें दुरहः " वातें हि " जरा मृत्यु शोक जीगुप्सा प्यास, " जो देह " वंधकों होवे ऐसे प्रकृतिके गुणके प्रभावसें जो जो हो सो यामें नहि—वातें हि वैसेहि वो निर्गुण—फीर वाहिकों " सत्यकाम—सत्यसंकल्प. " वोहि वाकी " उत " ना, क्या, " उत्त " "तर," था " उत्तमता "—और वाका पुरावाहि वाका यह दिव्य शरीर—वो कोन है ! समुद्रमें

तरंग उठे वो भी समुद्रहि तेसें जो "एषः सर्व भूतांतरात्माऽपहत पाप्मा दिव्यो देव एको नारायणः" "सोऽकामयत" करके "सर्वभूत के अंतर रहा जो एसे धर्मवाला वोहि देव–वोहि एक अद्वीतिय=जाकी कामना तें जगत होना है–जाका "नारायण" एसा नाम है सोहि यह सूर्य के भीतर उपासकोकों प्रत्यक्ष दिव्य रुपमें दीखते हैं. यह रहस्यके ज्ञाताने हि "सूर्यनारायण" एसा सूर्यका संपूर्ण नाम धरा है. सूर्यमें सूर्यदेव है यह ठीक है–जैसे यह देहमें हम जीव है–परंतु हमारे भीतर–तेसेंहि सूर्यके भीतर हमारा–वेसा सूर्यका फीर जो अंतर्यामी है वो साकार–अनेक दीव्यरुपमें रहता है. जो अनेक अरुप जीवोंकों रुप–शरीर दे सकता है–और फीर भी वामें संग रही सकता है. वाकों आपके लीये खास दिव्यरुप बनाके वामें रहेनां कोन बडी बात है! शरीर हो वाकों दुःखहि हो–यह नियम नहि–कर्म तें वाकों वातें दुःख होता है–और वो कर्म पूरे भये तो शरीर संबंध पुरा होता है. बना बनाया देह छोडके हमहु पलकमें चले जाते हैं सो कर्मकृत संबंध दुसरेके कराया रहा "वातें" कर्म हेतु है. शरीर नहि. वातें यह शंका नहि ठीक के वाकों शरीर कहा तो वो बद्ध जीवहि होगा. हम यहांहि यह श्रुतियोंतें वामें कहे जीवतें विलक्षण परमात्मा जगतकारणकेहि सर्व धर्म तें समुझ गये कि वो दिव्य देहमें वोहि जगतकारण दिव्य देहि है. न कोइ सामान्य–वो विशेष पुण्यवाला जीव वो है. न यह भी ठीक है कि परमात्मा अरुप निराकार रहाहि है जैसा वो निराकार रहा सत्य है वेसाहि यह भी सत्य है कों वो साकार भी रहा है. जो प्रमाणतें वो मांना है वोहि प्रमाण वहांहि यह समुझावतें हैं ऐसा खुलासा वाके दोनों प्रकार सत्य है ऐसा रहस्य सो कृपा करके भगवान व्यासजी हि सूत्र बनाके हमकों सुगम कर देते हैं. वाके आकार–यह–होनेका हेतु? विचारें तब–और आनंद

होता है." अरूप सर्वमें रहीके-फीर वो नियमन कर सकता है-करताहि है. वा लीये वाकों देह धारनां कुछ जरुर नहि. वो महत् कार्य वैसे वातें वन रह्याहि है. वा प्रकार तो वो असंग अलीप्त न्यायी ईश नियंता समुझा गयाहि है. परंतु यह रुपतों कही गये वैसे केवल हमकों पावन करके उद्धारनेकों यह प्राकृत मंडलमें प्रकट रखते हैं. प्रकृतिका निवारक द्रव्यादि वो "अप्राकृत दिव्य है." और वो नाम रुप आकारमें प्रकट गुण शक्तिवाल्या हो तवहि हम वाका लाभ-स्मरण, चिन्तवन, गुणकथन, ध्यान, उपासनतें, ले सकें. श्रवण मननका विपयहि ब्रह्म वहां है तवहि निदिध्यासन, तवहि अंतर्दर्शन-और तवहि मुक्तिभी हो सके-सारांश जो केवल हमारेहि उद्धारके लीये-की भयी कृपारुपहि-मूर्ती-साकार ब्रह्म-जो हमारा नाव-सीडी, दवाई, जीवन, भोग्य, वाहिका अनादर कीये तो, फीर वेदांतकोंहि विदागिरि देदी! हमारे उपयोगी उपाय-उपासना-जो ब्रह्मविद्यामेंतें ग्राह्य सोतो येहि रहस्य है. यामें जीतनां निश्चय-याका जीतनां अनुष्ठान-उतनां कल्याण है. वातें वोतो जीवका प्राकृत आकार है-ब्रह्मका आकार होताहि नहि-होवेहि नहि-ऐसा मानें वहांलों अभी वेदांत रीतितें वाका लाभ लेने सरीख हमारी मनकी शुचिता पापोंकी दूरता नहि भयी, येहि समझनां-और चाहांनांकि-हमारी श्रद्धा सर्वेश्वरके रुप है; वो दिव्य है; ऐसीहि सुदृढहि अडगहो. जातें हम वाका संपूर्ण लाभ लेवें-हमारा कल्याण तवहि है. यहांहि और हेतु खोलते है-वा लीये सूत्र है.

सूत्र-" भेद व्यपदेशाच्चान्य. " ॥ २२ ॥

अर्थ—और भेद कहनेतें अन्य है.

विवेचन—जो अंदर रहा है वाके धर्म जीव सरीख नहि. उतनांहि नहि-जीव वातें अन्य है. जीवका और वाका भेद है ऐसाभी तो स्पष्ट

वहांहि कहा है. "अंतर्यामी ब्राह्मण" करके प्रकरण उपनिषदोंमें दो जगे बडे विस्तारतें काण्व माध्यंदीनी दो पाठ है. वामें सर्वका अंतर्यामी जगतके कारणकों कहा है. वहां खास नाम निर्देश करके श्रुतियोंनें यों कहा है कि "यः आदित्ये तिष्ठन् आदित्या दंतरो यमादित्यो न वेद यस्यादित्यः शरीरं य आदित्य मंतरो यमयति." जो आदित्यमें रहा, आदित्यके भीतर, जाको आदित्य नहि जानता, आदित्य जाका–शरीर है जो आदित्यके भीतर नियमन करता है उतनांहि क्या ! वाहिकों फीर आगे श्रुति कहती है "जो आत्मामें रहा–आत्मा जाका शरीर है" इत्यादि वचनतें वोहि प्रकार देव क्या, देहधारी मात्र, देहोंके भीतर रहे आत्मा मात्र भी, वाके शरीर, वातें अन्य है. वो शरीरी है. जीव अज्ञ, यह सर्वज्ञ, वो नियाम्य; यह नियामक; वो वाके आधारतें रहे. यह उनका आधार. सो चेतनोंकाहि नहि. फीर वोहि वैसेहि प्रकृतिका भी, वामें भी फीर वाके स्थूल सूक्ष्म सर्वरूपका, अक्षर, और फीर मृत्युका कहींके कालका भी ऐसाहि शरीरी आत्मा अंतर्यामी श्रीमन्नारायण दिव्य एक देवको श्रुतियोंनें कहा है. तात्पर्यकी वाके विना दो तत्व अचित और चित, जीतने प्रकारके जहां, जो स्थितिमें जब हो तब, सबमें सर्वदा सर्वका, वो सबतें दुसरा श्रेष्ट सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वेश्वर एकहि दिव्य देव अद्वितीय सत्यशरीरी नारायण है. वो या प्रकार जगतका एक अद्वितीय कारण है. वातें जीव वो अंतर्यामी सूर्य नेत्रमें रहा सो नहि है. किंतु जीवका उद्धारक तारक सबका पति सबमें प्रोत, समान उदार वो देवाधिदेव दयासागर है वोहि ब्रह्म–और वोहि ब्रह्मज्ञान हमारे लीये वेदांतमें दीया है; जो एक एक अधिकरण स्पष्टतर करता है. उपनिषदोंको देखे तों वो वो प्रकरणमें अनेक एसे प्रसंग है. जहां अनेक हेतु करके परमात्मा ब्रह्म–जगतकारणके अनेक नाम देनेतें शंका उत्पन्न होती है वो स-

वेका समाधान करनेकों अब पाद शेष है ऐसे प्रकरण छांदोग्यमें वहुत है. अनेक गुणके उपरतें अनेक नामतें परब्रह्मकी उपासना वामें कही है. जामें " आकाश " नामभी है. प्रश्न है कि " यह लोककी कोन गति "—याके उत्तरमें " आकाश " कहीके फीर वाकी पहिचान यह भूत सर्व आकाशतें उत्पन्न होते है " इत्यादि जो जगतकारणत्वके " लिंग " चिन्ह—लक्षण—सो आकाशकों लगाये है. वातें ऐसी शंका होवेकी उपनिपदोंका ठीकानाहि नहि. कहीं आकाशतें जगत होता है कहते है. कहीं ब्रह्मतें कहीं सततें; कहीं आत्मातें; और शब्दों—कें अर्थ तो एकमें लगावे. परंतु " आकाश " कहने तें तो यह महाभूतहि सब समुझा जावे—वातें व्यासजी निर्णय करनेको सूत्र लीखते हैं.

आकाशाधिकरण.

सूत्र—आकाश स्तल्लिंगात्. " ॥ २२ ॥

अर्थ—आकाश वो लिंग होनेतें.

विवेचन—जगतका कारण जो हम ठहराई गये याकाहि नाम—आकाश—करके यहां दीया है. क्योंकि जो चिन्ह लिंग वो ब्रह्म—सत—आनंदमय—आदिक हैं. वोहि यहांभी है. सो यह भूतरुप आकाशमें नहि लग सकते है. क्योंकि यह आकाशतें " सर्वभूत " जो चेतन है वो कैसे उत्पन्न हो सके ! और वहां " जातें यह सर्वभूत उत्पन्न होते है " करके " जन्मादि " लक्षण ब्रह्मके कहे हैं वोहि रीति यहां आकाशके कहे हैं. वातें वो यहहि है—यहां औरभी " परायण " ऐसाभी कहा है. चेतनतें आकाश तो स्थूल है. वो चेतनका " अयन " कैसें हो सके ! यह आकाशकी इच्छातें यह जगत कैसें हो सके ! जो वहां कहा है कि

" वाकी ईच्छातें भया." वातें आकाश सो ब्रह्मकाहि वाचक है. आकाश शब्दका खास अर्थ–प्रकाशकरनां है. वो गुणपरमात्माका है. ज्ञानस्वरूप " प्रकाश " के बदल्ले " आकाश " कहा. " प्र "–" अ " दोनों उपसर्ग उचितहि है.

वैसेहि योहि उपनिषद्में " प्राण " शब्द–और वैसाहि वा लीये कथन है. बहुत स्थानमें प्राणकी तो उपासनाभी कही है–त्यों याकों इन्द्रियके स्थानेंमभी प्रयोग कीया है. और जब प्राण शब्द आवे तो जगतका–जीवन प्राणाधिन होनेंतें साधारण प्राणकोंहि जगतकारण कहा होगा. ऐसी शंका उठे, यातें.

प्राणाधिकरण.

सूत्र–॥ अत एव प्राणः ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसेहि प्राण.

विवेचन—परब्रह्मकाहि नाम वहां है. क्योंकि सर्वका जीवन–आधार प्राणहि ठहरे तो शीला–काष्ठ कहां प्राणाधिन, वा उनकी स्थिति प्राणतें है ? उनमें प्राण हैहि नहि–और यहां प्रकरणमें तो " सर्वमें जो रहा है वो " करके चराचर व्यापककों कहा है. सत्य जीवन तो वोहि है. वातें यहांभी शंका रूढ अर्थ करके नहि करनी.

अब वातें बडी शक्तिवाले शब्दके लीये सीपाहिको जमादार वा अंत सरकार कही सके वैसे जहां शंका उठती है वहां परमात्माकी विभूति विशेषवाचक शब्द होकेहि वैसे और दो स्थलके समाधान करते है.

ज्योतिरधिकरण.

सूत्र—ज्योतिश्चरणाभिधानात् ॥ २५ ॥

अर्थ—ज्योति–चरणके कथनतें.

विवेचन—श्रुतिमें ज्योति शब्द " सर्वमें रहा " आकाशमें रहा कही के " पुरुषके भीतर रहा " करके कहते हैं. सो ज्योति प्रसिद्ध तो सूर्य है. परंतु यहां ओर चिन्ह वाको हैं. जातें वो कथन परब्रह्म पुरुषोत्तमके लीये ठहरता है वो भी ज्योतिस्वरूप तो हैहि. परम ज्योति वोहि है. फीर यहां यह ब्रह्मांडको " यह विश्व वाका पाद है- चरण है ऐसा कहा है सो सूर्यका क्यों हो सके !

पुरुषके भीतर रहा वोभी कौक्षेय ज्योति नहि. किंतु विश्वानरके अंतर्यामी आप होके गीताजीमें " अहं वैश्वानरो भूत्वा " कही रीति सर्वेश्वरहि है. वातें ज्योति शब्दतें भी परब्रह्म समझनां. वहांहि पूर्व वाक्यमें " गायत्री शब्दका प्रयोग करके " गायत्री यह सर्व है इत्यादि कहा है. और वो प्रसिद्धिमें छंदका नाम है. वातें शंका स्थान है. वाके उपर सूत्र होनाहि चाहिये.

सूत्र—छंदोऽभिधान्नेतिचेन्न तथा चेतोर्पण निगमा त्तथाहि दर्शनम् ॥ २६ ॥

अर्थ—छंदका कथन होनेतें वो (ब्रह्म) नहि ऐसा कहे तो नहि–वैसे चितका अर्पक कहेनेतें तथा वैसा वचन होनेतें.

विवेचन—छंदकों कथन हो तव ब्रह्म न ठरेहे सो यहां नहि है ऐसा कहेनेमें वहांहि चित अर्पण करनेका कहा है सो छंदकों कैसे कहे ! फीर यह सर्व " गायत्री " कहा है. सो सर्वात्मक छंद नहि

ठहरता. सर्व तो ब्रह्मात्मकहि है. और " गायत्री " शब्द तें वाकों हि-यहां कहा है गायत्री चार पाद वाली और यहां ब्रह्मकों भी चार पाद कहा है. " त्रिपाद अमृतदिवि " और एक पाद यह भूत " वो सादृश्यताको लेके वो नामतें ब्रह्मकाहि यहां कथन है ऐसा "दर्शन " और जगे श्रुतिका याविध कथन है त्यों दृष्टांत भी है. जैसे एक स्थानपर " वामें दस रहे हैं " कहा-वहां ब्रह्मकों " विराट् " कहा है. वो भी छंदका भी नाम है. तैसा यहां भी वो नामतें ब्रह्मका निर्देश है.

सूत्र—भूतादि पादव्यपदेशोप पत्तेश्चैवम् ॥२७॥

अर्थ—भूत आदि पाद कहेतो घटीत है. ऐसाहि है.

विवेचन—गायत्री शब्द उपयोग कीया वहां भी चार पाद-ब्रह्म कहा है " १ भूत, २ पृथ्वी, ३ शरीर ४ हृदय" ऐसा ब्रह्मकी पहिचान करावनेकाहि प्रसंग है. और वाकों चार पाद गायत्रीमें कहे सो या रीति उचित है. सर्व वाके शरीर-अंग है हि. अभीभी या प्रकरणमें एकहिकों उद्देश माननेमें एक संशय रहता है. पूर्व वाक्यमें " आकाशमें " और अन्य स्थलमें " आकाशके उपर " ऐसा कथन है तो वो भिन्न भिन्नके लीये उपदेश क्यों न हो ? सूत्रकार समुझावते हैं. यह शंकाका यह समाधान है.

सूत्र—उपदेश भेदान्नेतिचेन्नो भयस्मिन्नप्य विरोधात् ॥ २८ ॥

अर्थ—उपदेश भेदतें नहि, ऐसा नहि. उभय कायामें-अविरोध होनेतें.

विवेचन—दोनो वाक्योंका तात्पर्य एक है. सार समझनेकों विरोध नहि आता है. दोनों वाक्योंतें एकहि समुझा जाता है. जैसे वृक्षके

उपरके भागमें वाज उडता है. " कहें; वा कहे–वृक्षके उपर वाज उ-
डता है. तैसे " दिविमें " जो कहा वोहि "दिविके उपर" वो ज्योति
सो प्राकृत नहि. ऐसा यहां " आदित्य वर्णतमसः परस्तात्. वेदाह
मेत पुरुषं महांतम् " आदित्य सरीख वर्ण; परंतु तम प्रकृतितें श्रेष्ठ
पंच महाभूतमय नहि. वो महान् पुरुपकों हम जानते है " ऐसे दिव्य
ज्योतिमय परम पुरुपकाहि सर्व प्रकरणमें कथन है. ऐसा समझनां–तत्व
विपयमें जगतकारणके अनेक नाम श्रुतिमें कहे हैं यातें यह शंका उटती
है. उनका इतनां समाधान कीया. अब उपायभी तो वोहि है वा लीये
भी वैसेहि नाम आवते हैं. जैसे वोहि इन्द्रप्राण नामकी उपासना क-
रनां करके कहा है. यातें वहांभी वैसेहि शंका उठे. यातें या लीये भी
सूत्र यहां है.

इन्द्रप्राणाधिकरण.

सूत्र–प्राणस्तथा अनुगमात् " ॥ २९ ॥

अर्थ—प्राण तेसेंहि पीछे कहेनें तें.

विवेचन–प्राणकों परम पुरुप हि समझनां पीछेका कथन देखे तो
शंका दूर होती है. यह प्रसंग कौशितकि उपनिपदका है. इन्द्रके पास
दीवोदास प्रतर्दननें जाके " वर " मांगे ओर फीर यह प्रश्न कीया है
कि " जो मनुष्योंका हित तम हो सो कहो " हित " कोंभी " तम "
प्रत्यय लगाये तो यातें बढके फीर परम फल जाका न हो वोहि
" ब्रह्मविद्या " वानें कही. जामें श्रुति हैं " प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मातं मामा
युंर मृत मित्यु पासस्व " मैं प्राण हौं प्रज्ञात्मा ऐसे मोंको आयु अमृत
कहके तु उपासना कर. " प्राण " शब्द स्पष्ट–ओर " मेरी " उपा-
सना कर " करके इन्द्र कहता है. तो वो इन्द्र जीवकी उपासना ठहरी

ईन्द्रके प्राणकी कहें तो भी ईन्द्रके जीवकीहि भयी. शरीर शरीरीके एक निर्देशतें. परंतु जीवकी उपासनातें हीततम होहि नहि सकता. वातें यह ठीक समझ नहि. " प्राण " ओर " मेरी " कहेनेमें वो उभय जाके शरीर है वैसे उनके अंतरात्माकोंहि समझनां चाहीये. यहां हि प्रज्ञात्मा-आनंद अजर अमृत एसे जाकी उपासना करनी. वाहिके लीये फीर विशेषण है " सो न प्राणके न जीवके एकके भी होई सके. वातें प्राण सो परमात्मा एसे पीछेके कथनतें ठहरा. फीर कहते हैं प्राण की मेरी. फीर वो कहेने वालेका आत्मा क्यों नहि ? वहां ओर भी इन्द्रके चिन्हभी है. " वृत्रासुरकों मारने वाला " ईत्यादि वातें शंका रहती है. वोहि करके समाधान करते हैं. वो अति उपयोगी है क्योंकि यहांहि नहि. बहुत श्रुतिमें-तेसे इतिहास पुराणमें भी ईन्द्रकी नांई ओर देवभी हम ब्रह्म हैं. कर्त्ता-भर्त्ता संहर्त्ता है " ऐसा आपभी कहेते हैं. ओर वातेंहि सर्व देव एक हैं परब्रह्मके समानरुप ओर वातें सर्व देव समान एसा सार बहुत खींचते हैं. वोहि शंका, वैसा हि प्रसंग यहां है. जो एकका खुलासा वो सर्वका. जो भारत पुराणके ओर वेदांतके समझावने वाले एकहि हैं सो कहते है—

सूत्र—नवक्तुरात्मोपदेशान्नेति चेदध्यात्म संबंध भूमाह्यस्मिन् ॥ ३० ॥

अर्थ—नहि वक्ताका आत्मा उपदेश होनेतें एसा कहे तो—यहां अध्यात्म संबंध बहुत है. "

विवेचनः—ईन्द्र वक्ता है. वो आपकी उपासना करनेको कहता है. वातें " न "—ब्रह्म नहि एसी शंकाका समाधान यहां अध्यात्म अर्थ करनां " कहेनेवाला ईन्द्र-लौकीक रीतितें नहि बोलता है. अध्यात्म ज्ञानका जो भूमा-बाहुल्य-पराकाष्ठा; जीनकों हो, वो एसाहि बोलते

है. क्योंकि तत्व एकमें तीन है. पिंडमें जड देह, जीव; और तीसरा वाका शरीरी ईन्द्र कहे तो तीन समझें. वामें उपासना तीसरेकी अज्ञानी–देहकों " मैं " कहे, सामान्य ज्ञानी देह विशिष्ट चित–जीव–कों,– और पूरे ज्ञानी वेदांती अचित्त चित्त विशिष्ट ब्रह्मकों " मैं " कहते है. " तुं " कहते हैं " यह सर्व जगत " कहते है. और वोहि यथार्थ पूरा वस्तुका दर्शन है. उपास्य वोहि शरीरी–वोहि अजर अमृत है. यहां वो सर्वके शरीरीकों ठीक समुझाया है. " जैसे रथ के आरेमें चाक– और नाभीमें आरे–अर्पीत है. तैसे यह भूत मात्र प्रज्ञा मात्रमें अर्पीत, प्रज्ञा मात्र प्राणमें, सो वोहि प्राण–जो प्रज्ञात्मा आनंद अजर अमृत है. " भूत मात्र " अचेतन " " प्रज्ञा " चेतन, वाका भी आधार " प्राण " कहे तो–और फीर वाहिके लीये " आनंद अजर अमृत " कहे तो स्पष्टहि हो जाता है कि वो न प्राण, न ईन्द्रका जीव, किंतु– " ब्रह्म "–वो सर्वका आधार–शरीरी नियामक हे हि.

वहांहि अध्यात्म संबंधी भूमा कहे तो वहुत कथन है. जैसे " वोहि लोकका अधिपति वोहि सर्वका ईश " वो न इन्द्र होहि सके न प्राण; कही गयेकि लौकिक दृष्टीतें " अहंवं का परिमितमें ज्ञान रुकता है. शास्त्र दृष्टी भयी तब सर्व ब्रह्म सर्व वाका शरीर और वो सर्वमें शरीरी एककोहि सर्वत्र देखने वारे आपकों भी ब्रह्म कहेते हैं. औरकोंभी वोहि " तुम सोहिमें " और " सर्व सोभी में " मेंहि चंद्र सूर्य पृथ्वी देव रूपी वो परमात्म दृष्टीतें शरीरीके भावसेंहि कहे तो सुसंगत है. ऐसा शास्त्रमें कहा जाता है. यह उपनिषदोंकाहि दृष्टांत यहां देते हैं और कहते हैं " उपदेश भी इन्द्रनें वैसी दृष्टीतें दीया है जैसे वाम देवके नामसें उपनिषदमें कथन है. "

सूत्र–शास्त्र दृष्टया तूपदेशो वामदेववत् ॥ ३१ ॥

अर्थ–शास्त्रदृष्टी करके तो है उपदेश वामदेव सरीख.

ईन्द्रके प्राणकी कहे तो भी ईन्द्रके जीवकीहि भयी. शरीर शरीरीके एक निर्देशतें. परंतु जीवकी उपासनातें हीततम होहि नहि सकता. वातें यह ठीक समझ नहि. "प्राण" ओर "मेरी" कहेनेमें वो उभय जाके शरीर है वैसे उनके अंतरात्माकोंहि समझनां चाहीये. यहां हि प्रज्ञात्मा-आनंद अजर अमृत एसे जाकी उपासना करनी. वाहिके लीये फीर विशेपण है "सो न प्राणके न जीवके एकके भी होई सके. वातें प्राण सो परमात्मा एसे पीछेके कथनतें ठहरा. फीर कहते हैं प्राण की मेरी. फीर वो कहेने वालेका आत्मा क्यों नहि? वहां ओर भी इन्द्रके चिन्हभी है. "वृत्रासुरकों मारने वाला" ईत्यादि वातें शंका रहती है. वोहि करके समाधान करते हैं. वो अति उपयोगी है क्योंकि यहांहि नहि. वहुत श्रुतिमें-तेसे इतिहास पुराणमें भी ईन्द्रकी नांई ओर देवभी हम ब्रह्म हैं. कर्त्ता-भर्त्ता संहर्त्ता है" ऐसा आपभी कहेते है. ओर वातेंहि सर्व देव एक हैं परब्रह्मके समानरुप ओर वातें सर्व देव समान एसा सार वहुत खींचते हैं. वोहि शंका, वैसा हि प्रसंग यहां है. जो एकका खुलासा वो सर्वका. जो भारत पुराणके और वेदांतके समुझावने वाले एकहि है सो कहते हैं—

सूत्र—नवक्तुरात्मोपदेशान्नेति चेदध्यात्म संबंध भूमाह्यस्मिन् ॥ ३० ॥

अर्थ—नहि वक्ताका आत्मा उपदेश होनेतें एसा कहे तो—यहां अध्यात्म संबंध वहुत है."

विवेचनः—ईन्द्र वक्ता है. वो आपकी उपासना करनेको कहता है. वातें "न"—ब्रह्म नहि एसी शंकाका समाधान यहां अध्यात्म अर्थ करनां "कहेनेवाला ईन्द्र-लौकीक रीतितें नहि वोलता है. अध्यात्म ज्ञानका जो भूमा-वाहुल्य-पराकाष्टा; जीनकों हो, वो एसाहि वोलते

है. क्योंकि तत्व एकमें तीन है. पिंडमें जड देह, जीव, और तीसरा वाका शरीरी ईन्द्र कहे तो तीन समझें. वामें उपासना तीसरेकी अज्ञानी-देहकों " मैं " कहें, सामान्य ज्ञानी देह विशिष्ट चित-जीव-कों,- और पूरे ज्ञानी वेदांती अचित्त चित्त विशिष्ट ब्रह्मकों " मैं " कहते है. " तुं " कहते है " यह सर्व जगत " कहते है. और वोहि यथार्थ पूरा वस्तुका दर्शन है. उपास्य वोहि शरीरी-वोहि अजर अमृत है. यहां वो सर्वके शरीरीकों ठीक समुझाया है. " जैसे रथ के आरेमें चाक- और नाभीमें आरे-अर्पीत है. तैसे यह भूत मात्र प्रज्ञा मात्रमें अर्पीत, प्रज्ञा मात्र प्राणमें, सो वोहि प्राण-जो प्रज्ञात्मा आनंद अजर अमृत हैं. " भूत मात्र " अचेतन " " प्रज्ञा " चेतन, वाका भी आधार " प्राण " कहे तो-और फीर वाहिके लीये " आनंद अजर अमृत " कहे तो स्पष्टहि हो जाता हैं कि वो न प्राण, न ईन्द्रका जीव, किंतु- " ब्रह्म "-वो सर्वका आधार-शरीरी नियामक है हि.

वहांहि अध्यात्म संबंधी भूमा कहे तो वहुत कथन हैं. जैसे " वोहि लोकका अधिपति वोहि सर्वका ईश " वो न इन्द्र होहि सके न प्राण; कहीं गयेकि लौकिक दृष्टीतें " अहंवं का परिमितमें ज्ञान रुकता है. शास्त्र दृष्टी भयी तब सर्व ब्रह्म सर्व वाका शरीर और वो सर्वमें शरीरी एककोहि सर्वत्र देखने वारे आपकों भी ब्रह्म कहते हैं. औरकोंभी वोहि " तुम सोहिमें " और " सर्व सोभी में " मेंहि चंद्र सूर्य पृथ्वी देव रूपी वो परमात्म दृष्टीतें शरीरीके भावसेंहि कहे तो सुसंगत है. ऐसा शास्त्रमें कहा जाता है. यह उपनिषदोंकाहि दृष्टांत यहां देते हैं और कहते हैं " उपदेश भी इन्द्रनें वैसी दृष्टीतें दीया है जैसे वाम देवके नामसें उपनिषदमें कथन है. "

सूत्र—शास्त्र दृष्टया तूपदेशो वामदेववत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—शास्त्रदृष्टी करके तो हैं उपदेश वामदेव सरीख.

विवेचन—वो देखा, ऋषी वामदेवने कि में मनु सूर्य ऋषी विम यह लोकदृष्टीसें नहि दीख सके त्यों सर्व छोडके एकहि तो मनु सूर्य ऋषी विम मेरा देह नहि. वोहि ब्रह्म है. एक है. अैसा नहि कहते है परंतु सर्व विविध आकार और वाके अभिमानी जीव विशिष्टकों आप अहंभी कहेते है. सो ज्ञानदृष्टीसें येहि रीति ठहरती है. जैसा तत्वकों अभीलों समुझाया गया है कि वाका अचित भी शरीर और आत्मा भी शरीर वो उभयका, सर्वका शरीरी-एकहि सर्व जगतरुप है. वातें सर्व जगत ब्रह्म-वातें सर्व भिन्नभी ठीक. देह जीव कर्मफल; और वो सर्व विशिष्ट एक भी ठीक और वाकोहि देखने उपासनेवाले तो वाकों हि-शरीरी कोंहि देखते है और अजर अमृत आनंद विशेषणभी तो वाकोहि लगे. न देहकों, न जीवोंकों ऐसे "सर्व भूतोंका अंतरात्मा जो दिव्य देव एक नारायण " वो जैसा वेदांतमें अनेक नामरुप गुण शक्तितें वेद्य जगतकारण तैसेंहि उपास्य-कहा है-ऐसा सार अंतलाके समझा देते हैं. यह उपासना विषयीक वचनोंकी भी चावी दे देते हैं कि तीन प्रकार उपासना हो सके-शरीर विशिष्ट ब्रह्मकी; जीव विशिष्टकी; और खुद स्वरुपकी. और वातें उपनिषदोंमें ऐसे तीनो प्रकारके वचन उपासनाके विषयमें आवेंगे. जो जो और दो तत्वके नामसें आये तोभी वाकोंहि नहि समझना-यहांकाहि दृष्टांत लेके शंका उठाके समाधान कर देते हैं. क्योंकि यहां अचितके लीये प्राण ओर जीवके लीये इन्द्र शब्द होके उनकी भी उपासना कही है वातें कहा है.

सूत्रः—जीव मुख्य प्राण लिङ्गान्नेति चेन्नोपासा त्रै विध्या दाश्रितत्वादिह तद्योगात् ॥ ३२ ॥

अर्थः—जीव और मुख्य प्राणके लिंग होनेतें-ऐसा कहे तो नहि, उपासा त्रिविध आश्रीत होनेतें और यहां वाका योग है वातें ॥

विवेचन—इन्द्र कहेनेवाला " जीव "–" प्राण " शब्द सो मुख्य प्राण ऐसा स्पष्ट—वो लिंग रहेनेतें शंका उठे. वातें वाका निषेध है कि त्रिविध उपासना वो वो शब्दतें कही सो वा करके—अनुसंधान सकल जगतका जो एक कारण है, वाकाहि करनां. तीन विधमें आप, भोक्त वर्ग, और प्राण, तीनो. आप विना दो औरभी तो आपहिके शरीर हैं. शरीरीकी उपासना शरीरमेंहि होवे. वो दो वाके आश्रीत है. और उनका योग भी यहां है भी सही. वातें तीनोंकी उपासना हो सके. श्रुती तीनों प्रकार ब्रह्मकों कहती हैं–एक स्थानमें " सत्य ज्ञानमनंतं ब्रह्म " " आनंद ब्रह्म " करके वाका स्वरुपहि कहती है " सृष्ट्वा तदेवा नुप्राविशत् " वो श्रजीके आपहि भीतर पेठा. ऐसा जीव शरीर कहती है. फीर वोहि " सत्य भया—असत्यभया " ऐसे अचित भी कहती है. क्योंकि सबका शरीरक वोहि है–भया हैहि, विशिष्ट ब्रह्महि जगत कारण–और विशिष्ट ब्रह्महि जगत कार्य है. येहि तो शास्त्रदृष्टी, वोहि होनेकों तो वेदांत पढना है. वातें वेदांतने कहां भी, कोन नाम कोन रुपतें, उपासना आये तो, गुण चरित्र वर्णन आये तो, वो वोहिका समझावनेकों है. न मात्र अचितके लीये. न मात्र जीव—वो देव भी हो तो क्या–न वो देवके लीये. जैसे यहां कहा सो न प्राणके लीये है. न इन्द्रके लीये. यह रहस्य सद्य सहज सर्व नहि समझ सकते है. लौकीकदृष्टीतें दोष दीखते हैं तवहि तो सूत्र है. वाका यथार्थ उपयोग करे.

इति प्रथम अध्याय. प्रथमपादः

अथ प्रथम अध्याय द्वितीय पादः

तत्व तीन है. अचित चित–और इश्वर दो शरीर और तीसरा वो दो शरीरवाला शरीरी. तीन मीलके एक. वोहि जगत–जामें तीनों संग है. वामें जो मुख्य एक है वो " ब्रह्म " वडा सो सर्व प्रकार वडा. प्रथम तो स्वरुपतें वडा जो सर्वके अंदर और बाहिर है. फीर स्वभाव तें वडा कि जीवकों ज्ञानका संकोच विकाश, देहसंबंध तें सुख दुःख हो–सो वाकों नहि होता–फिर शक्तितें वडा–की विना कारण सर्व कर सके. सामर्थ्यतें वडाकि–वो जो चाहे सो सर्वका कर सके. और वैभवसें वडा है हि कि वाके परतंत्र सर्व अन्यके स्वरुप स्थिति और उनकी प्रवृत्ति है. वो जो है सो वाकीहि वस्तु शेष है. वो सर्वका निरंकुश नियंता है. चाहता है कि संकल्प मात्रमें सर्वका प्रलय और प्रलयमेंतें श्रृष्टी करता है. फीर वो करनेमें श्रम तो कहां–और लीला-रुप वो क्रृति है. मोज है. जगतमें चेतन मात्रकों स्वतंत्र छोड उनकी इच्छानुगुण कर्म कराइ फल भोगाइ रहा है. परंतु वामें उतनी वाकी और वडाइ है कि सर्वका स्वतंत्र स्वामी होवेपर भी सर्वकों आप ज-गाइके आपकाहि सर्व सामन सोंपके वाकी व्यवस्थाभी उनकी ईच्छानु-गुण आपहि कर देता है. उतनांहि नहि. उनकों क्या कैसें कीये तो क्या फल मीलेगा–वो भी शास्त्र देके समुझाया है. फीर वामें परम फल क्या, सो भी समुझाया–और वो भी उनकों दे देनेमें यहांलों वो उदार है कि वा लीये जो चेतन इच्छा करे, वाकों सर्व प्रकार स-हायभूत आप अंतलों वना रहता है. घडी घडी क्या करना न क-रना हम वो न समझ सकें. वा लीये वाकों नित्य सहायक " शास्त्र दीये है. और उनकों भी उत्तरोत्तर मंदबुद्धि न समझे तो, उनकों और शास्त्रोंतें स्पष्ट करके समुझाते हैं यामें भी चेतन शंका करें तो वाके समाधान आप आपके क्रुपापात्र द्वारा करावते हैं. श्रुति दीये

पर सूत्र वेसेहि करवाये है और उनकेहि प्रताप महा गंभीर वेद वाणीकी शंकाओंके समाधानपूर्वक समझ सूत्रोंतें कैसी दी गइ वो कुछ हमने भी देखी. अब यह अध्याय भरमें तीनों पादमें ऐसेहि शंकास्पदस्थानोंके समाधानवाले सूत्र है. अध्यायका मुख्य विषय ब्रह्मकी पहिचान करावनेका है. ब्रह्म जगतकारण है. वा लीये उपनिषदोंमें अनेक नाम रुपतें समुझाया गया है. वो नाम शब्दमें कोइ–जीवलिंगक कोइ प्रधानलिंगक है–नाम परतें यह भ्रम हो कि यह ब्रह्म विषयीक प्रकरणहि नहि–जीव वा प्रधान–तत्व विषयीक है, वातें तीन पादमें भी द्वितीयमें " अस्पष्ट जीवलिंगक "–तृतीयमें " स्पष्ट जीवलिंगक " और चोथेमें " बाकी छायानुसारी " ऐसे जहां जहां वेदांत–श्रुतियोंमें वचन है सो ब्रह्म परहि है; उपनिषदतें प्रति पाद्य एकहि तत्व; और वो अभीलों समुझा वो ब्रह्महि है–वो धारणाकों सुदृढ करते है. प्रायः छांदोग्यमें बहुत ऐसे प्रसंग है. वामें हमकों परभवके लीये क्या करनां चाहिये वा लीये प्रसंगमें समझाया है कि " जाका यहां सेवन करोगे वाकों मरे पीछे पाओगे " तो चाहियेकि वो प्रथमतें समझकेहि करनां जाका बीज होगा वो फल मीलेगा. मात्र श्रद्धा नहि काम लगे न श्रम साधन. वातेंहि प्रथम सत्य परमेश्वर कोन कैसा है वो समझनां. फीर वाका उपाय प्रथम दो अध्यायमें वो वातेंहि प्रथम समुझाया है. यह पादके आरंभके प्रकरणको लेके सूत्र है वामें जाकी उपासना करनेकों कहा है. वाकों " मनोमय प्राण शरीर प्रकाशरुप " इत्यादि विशेषणवाला पुरुष कहा है. सो परमात्माकों तो मन प्राणवाला शरीर नहि है. वो वैसा शरीर तो जीवका–और वाकों ज्ञान स्वरुप वहां कहा है तो वो तो हमहि है फीर वैसेकों उपासीके वैसे होनां यह कैसे श्रुति कहे ? यहां यह शब्दोंके अर्थ समझनेमेंहि भूल है क्योंकि वो परमात्माकाहि प्रकरण है. परंतु उनका अर्थ जो हम समझे

सो नहि है. सर्वत्र वेदांतमें प्रसिद्ध जो हैं वा लीये यह शब्द है और.

सर्वत्र प्रसिद्ध्यधिकरणम्.

सूत्र—॥ सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ १ ॥

अर्थः—सर्वत्र प्रसिद्ध उपदेश होनेतें.

विवेचन—वो परमात्माके लक्षण ठहरते हैं. क्या रीति ? " मनोमय "—मन करके ग्राह्य—बुझा जावे—वो भी सबके मनतें सत्र नहि—वो ग्रहण करनेके योग्य भये होवे वेसे—विशुद्ध मनसें वो ग्राह्य है. " प्राणशरीर " तो वाका है हि. प्राणोंकों चलावनेवाला वोहि है—हम सो रहते हैं और प्राणतो अचित हैं. फीर कोन चलाता है ! जाकों वो शरीर है सो " भारुप " प्रकाश स्वरुप तो प्रसिद्ध है. मन विशुद्ध हो तबहि वाकी उपासना हो सकती है. वातें वहांहि अधिक कहा है कि " शांत रहिके उपासना करनां. " फीर वो ब्रह्मके ज्ञान भक्तितें मनकी विशुद्धताकी पूर्ती है. वातें वहांहि कहा है "सर्वं खल्वीदं ब्रह्म—तज्जला निति शांत मुपासीत " यह सर्व ब्रह्म निकी है. " क्या जडभी ब्रह्म—जीव भी ब्रह्म—और ब्रह्म भी ब्रह्म ! सो कैसें ? " तज्जलान् " वातें " ज " उत्पन्न भया—वामें " ल " लीन होता है. वातें " अन् " स्थिति है. वो सबका शरीरी—आपतें आप, कारणरुपतें कार्यरुप, श्रष्टीदशामें तें जगतदशामें—यह सबरुप भया है. सूक्ष्म चित अचितवाला रहा सो स्थूल चित अचितवाला भया है. ऐसे होनेका वामें सामर्थ्य और सामग्री है. और वातें वाकोंहि ऐसा पुरा चित अचित विशिष्ट सर्वत्र देखें तो फीर रागद्वेषका कहां अवकाश ! ऐसी मनकी विशुद्धि जीनकों भयी उनतें वो ग्राह्य होता है. वाका या प्रकार "तज्जलान्" करके जगत कारणत्व सर्वत्र प्रसिद्ध है. वेदांत मात्र जगतकारण समझावनेकों येहि हेतु दीखावते हैं. और वा लीयेहि—

नोमयादि शब्द हैं. वो मनोमय है हि. उतनांहि क्यों–वहां जो जो गुण प्रसिद्ध कहे वो सर्व वामें हे. होनेंहि चाहिये. तबहि वो जगतकारण परम पुरुष उपासनाका विषय ठहर सके. वो गुणपूर्वक वाका अनुसंधान करकेहि हम शांत उपासना कर सके. वो हमारा मनोमय हो सके. वातें सूत्रहि कहता हैं.

३४ सूत्र—॥ विवक्षित गुणोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

अर्थः—कहे गुण वामें घटीत हैं. एक मनोमय गुणहि कहां कहा हैं.

विवेचन–जो वो शब्दतें आत्मापर ले जावें ! वहांहि और वहुत गुण कहे हैं. जैसे कि "सत्य संकल्प आकाश आत्मा; सर्व कर्मा, सर्व कामः सर्व गंध, सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः" ॥ जो चाहे सो होवें; आकाश सरीख निर्मल आत्मा, वा प्रकाशरुप और प्रकाशवान आत्मा, यह जगत आदि जाकी दृत्तिका परिणाम ऐसा, सर्व कर्म जाके हैं वो सर्वका कर्तृत्व वाका–वातें सर्वकामः प्राकृत गुण गंध रस नहि; वैसे आपके स्वरुपगत–सर्वगंध सर्वरस–जाको दिव्य कहेते हैं, वो भी स्वरुपसिद्ध गुण हैं जैसे अग्निमें उष्णता, कमलमें रुप और गंध–तैसें "सर्व यह स्वीकृत कीया है." आपकों अनुकुल होनेतें. फीर "अवाकी" नहि बोलनेवाला "महाराजाधिराज वडवड नहि करते हैं. वेसेहि "अनादर"–बे परवा. ऐसे गुणवाला जो पुरुष है. वाकोंहि "मनोमय" कहा है. मन करके वो एसे कल्याण गुणगण युक्त प्राकृत–गुणरहित जगतकारण होके पुरुषाकार है. ऐसा वाका यहां उपासन कीये तो वहां भी वैसा पुरुष प्राप्त होवे. तात्पर्यकी वोहि सर्व जगत भया है–आदि कहे सर्व गुण जीवमें ज्यों नहि हो सकते हैं त्यों सर्वेश्वरमें घटीतहि हैं वातें वो सर्वेश्वरकाहि प्रकरण है.

सूत्र—अनुपपत्तेस्तु न शारीर ॥ ३ ॥

अर्थः— नहि हि घटीत है–शरीर धारी नहि हैं.

विवेचन—यहां दिव्य कल्याण गुणगणसो कंगाल दुःखी देहके केदी जीवमें घटीत नहि है. वांतितो "शरीरधारीके नहि. त्यों वो प्राकृत शरीरवाला मन प्राणवाला नहि. और दोनोंका भेद कहेते है.

सूत्र—कर्म कर्तृव्यपदेशाच्च ॥ ४ ॥

अर्थः—कर्म कर्ताके कथनसें यह "च" ओरभी "हेतु" के लीये है.

विवेचन—हमकों वानें जन्म दीया. ऐसा वो हमारा "कर्त्ता" है. ओर हमतो वाकी कृतिका परिणाम "कर्म" है. ऐसा श्रुतिनें कहा हि है कि वो भूतोंका कर्ता है. भूत उनके कर्म है. जीवतो उपासनवाला ओर वो तो उपास्य है. पुरुष दोनो है परंतु इतनां वडा तारतम्य है ओरभी हेतु.

सूत्र—शब्दविशेषात् ॥ ५ ॥

अर्थः—शब्द विशेष होनेसें.

विवेचन—परब्रह्मके लीये वहां "एप मे आत्माऽन्त हृदये" ऐसे शब्द है. जांमे "मेरा" करके सो "जीव" ओर हृदयके भीतर रहा जो आत्मा वो तो अन्य "जीवका जीवन" हिरण्मय पुरुष" वाकी उपासना करनी कही है. जीवको नहि वासें वो जीवसें अन्य है. जीव ओर ईश्वर आत्मा ओर परमात्माका भेदहि है. ब्रह्म सो जीव है हि नहि न कभी होगा. वेदांतके कोइ भी वचनसें यह शंका उठाये तो वो ठीक नहि. ऐसा व्यासजी सिद्धांत कहेते हैं. श्रुतिका वोहि अर्थ है क्या ! सूत्र "स्मृतेश्च" "स्मृति भी" आप यह अर्थ वेदके हि अवलंबनसें नहि कहेते हैं. वाकों स्मृतिकी भी पुष्टी है कि आत्मा परमात्मा भिन्न है. हमारे भीतर वो अन्य है. गीताजीमें भगवान आप कहेते हैं "सर्वस्य चाहंहृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृति ज्ञान मपोहनं च"

सर्वके हृदयमें में विराजमान हीं. मोतें उनकों स्मरण और विस्मरण" ऐसे दो चेतन एक नियंता और दुसरा नियाम्य सर्वमें एकहि रहा नियंता. और प्रतिशरीर भिन्न है सो जीव है तबहि तो कोइ सोता कोइ जागता—कोइ स्वप्नमें— कोइ क्या स्मरता—कोइ क्या सर्व भिन्न भिन्न एक दुसरेतें अज्ञात अनुभव करते दीखहि पडते है. वो करा-वनेवाला उनमें उनतें और—तेसें फीर वो सर्वमें एकहि, वो श्री हरि है. वोहि " ईश्वरः सर्व भुतानां " आदि वचनसें सर्व भुतोंका तो वो भमा-वनेवाला करके भिन्न कहा है. यद्यपि वोभी है. सर्वके हृदयकेहि भीतर, जहां जीवभी है. परंतु वो एक सर्वके हृदयमें वो का वोहि और नियमन करनेवाला और हम सर्व चेतन प्रथक् प्रतिशरीर भिन्न वाके परतंत्र है. ऐसा वाका हम चेतन मात्रतें अन्य श्रेष्ट कल्याण गण जानके वाकी उपासना करनी ऐसा भी "यो मामेव म संमुढो जानाति पुरुषोत्तम " आदि वचनसें कहे हैं. यातें ये अर्थ और सुदृढ होता है. जीव इश्वर आत्मा परमात्माके विषयमें और प्रकारका सर्व कथन ठीक नहि—यह " असंमूढ सर्व वित् " करके गीताजीमें भी कही के " यो सर्व भाव करके मोकों भजते हैं " करके कहा है सो ठीक है—याद र-खनां, काममें लेनां—ज्ञानीका कृत्य तो वोहि होनां—ऐसा श्री हरिके व-चनसें सिद्ध है—और वो महाप्रभुकी परम दयालुताकों देखे कि पूर्व कही गये वैसे सूर्य अक्षीमें तेसे यह विद्यामें कहा है. वैसे हृदयमें भी वो दिव्याकार पुरुषाकार मन करके दीखे पडते हैं. वाके वो रुपकों " अंगुष्टमात्र " करके बहुत श्रुति कहती है. यह सिद्ध भया तब फीर वो वचनको पकडते हैं कि " हृदयमें बैठा है. " हृदयमें रहके इश्वर भमाता है कहे तो, हृदयमें तो मोटा होहि नहि सकता तो वोहि फीर सर्वात्मा कैसे ? वो शंका आप उठाके दृष्टांतके साथ हेतु दी-खाके समाधान करते है,

सूत्र-अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—छोटा स्थान होनेतें और वैसा कहनेतें नहि वैसा नहि. देखनेके लीये होनेतें ऐसा. जैसे की आकाश.

विवेचन—हृदय तो वाका स्थान. वो छोटा. फीर वाकों भी यहां तो व्रीही-यव जीतनां वहुत छोटाभी कहा है. तो वो अणु ठहरा. वातें जीवहि भया. ऐसी शंका ठीक नहि. वो सर्वशक्तिमान अपार दयातें हम देख सके, उपास सके. वा लीये हमारी शक्ति दृष्टीकों लेके उतनां भया है. उतनां दीखता है. वातें वो उतनांहि है ऐसा नहि ठहरता. जैसे आकाश सुईके नाकेमें भी रहे तो क्या उतनां होई गया! अथवा क्या उतनांहिं आकाश है! नहि तैसें वहांहि श्रुति आगे वाकोंहि "सर्वतें वडा पृथ्वी आकाश यह लोक सर्व लोकतें वडा करके कहती है. और उपासककों भी "तज्जलान्" करके वोहि जगतकारण समझके वोहि गुणवाला याकोहि समझके उपासना करनेकी आज्ञा करती है. अर्थात् यह साकारत्व वाहिका वोहि स्वरूप शक्ति.स्वभाव सामर्थ्य गुणयुक्त हि, अन्य नहि ऐसा वो वेदांत प्रतिपादक हमारेहि लीये केवल कृपारूपहि यह भया है. हमारे कामकी लाभकी येहि वार्ता येहि सत्य रहस्य है. येहि उपादेय अनुष्ठेय उपाय फलप्रापक प्राप्य यहां और वहां है.

अभीभी एक शंका रही जाती है वो आपहि उठाके शमाते है कि वो सर्वेश्वरभी हमारे सरीखं शरीरी भया. शरीरमें आया तो वाको देहके त्रिताप आदि भोगोंकी भी प्राप्ती होनी चाहीये. वा लीये कुछ कही चुके है. यहां सूत्रकारके शब्दोंमेंहि उत्तर देते है.

सूत्र—संभोग प्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ८

अर्थः—संभोगकी प्राप्ति कहे तो नहि विशेष होनेतें.

विवेचन—वोहि दृष्टांत जेलमें दारोगा और केदी रहे पर, जेलके संभोगकी प्राप्ती दरोगा विशेष होनेतें वाको नहि. वो जेलमें बुरे कर्मके फलतें नहि आया. बुरे कर्म करनेवालोंको वामें भोगावने कों आया है ऐसाहि और श्रुति भी समुझाती है " द्वो पक्षी पीपलमें रहे " यह दृष्टांततें तात्पर्यकि जंगतकारण सर्वेश्वर परब्रह्म जीवतें विशेष है. जीव वो या प्रकार कभी नहि होइ सकता. ऐसा सिद्ध करके यह प्रकरण पूर्ण कीया.

परंतु यामेंतेंहि प्रश्न उठ सकता है कि परमात्मा तो भोगावनेवाला हि है. भोक्ता नहि है. तो फीर कठवल्लीका प्रकरण स्मरण करावते है. वामें कहा है कि जाका " ब्राह्मण और क्षत्री यह चावल है और मृत्यु इचार है " तो वो " भोक्ता " भोग पावनेवाला (खानेवाला) वाको " अत्ता " कहेते है. सो भया यहां क्षत्री ब्राह्मण कहे तो सर्व जगत चर अचर ठहरा वाका वो भोक्ता, खानेवाला " अत्ता " फीर कोइ और जीव है क्या ! नहि तो फीर " अत्ता " भया तो भोक्ता क्यों नहि ? होने द्यो वैसा भोक्ता वो है. जैसे अकर्त्ता होके कर्त्ता कहे तो कर्त्ताहि सहि. परंतु वो हमारी नांइ नहि तेंसेहि " अत्ता " भी हमारी नांइ नहि. वास्तविक तो वोहि सर्व चर अचर जो जगतमय दीखता है वाका ग्रहण अंतमें वो आपमेंहि कर जाता है. वोहि तो सत्य संहर्त्ता है. ऐसे अत्ता हेहि वैसे भोक्ता भले कहो.

॥ अत्त्रधिकरणम् ॥

सूत्र—अत्ताचराचर ग्रहणात् ॥ ९ ॥

अर्थः—खानेवाला चर अचर के ग्रहणतें.

विवेचन—यह खानां ऐसा जबर है कि वो मृत्युकोंभी ईचार की नांई गीटक जाता है. संहर्त्ताकाभी संहर्त्ता कहे तो फीर वाके ऊपर मृत्यु नहि यह समुझा गया. प्रलय कीया तब भी आपतो रहता है. वो चर अचरको सूक्ष्म अवस्थामें आपहिमें ग्रहण करीके रहता है तबहि अत्ता कहनां ठीक हैं. वो आपतें प्रथक् तब नहि दीख पडते है. जैसे हम कुछ पागये तो वो भोग सूक्ष्म होके हमारे भीतर रहताहि है वो- हमनें ग्रहण कीया. परंतु " हमारेमें " ग्रहण कीया है. वातें हमतें भिन्न नहि दीखता ऐसा परब्रह्मको लय करके आपमें रखता है. वो रीति वो भोक्त है हि. परंतु वानें वो जीव नहि ठहर सकता. अणुसर्व- कों ग्रहण कहां करे ? सर्व प्राकृत देह क्या वो जामेंतें बनती हैं वैसे पंच महाभूतादि भी नहि रहते है. तब वो रहता है. अर्थात् वो " अत्ता " परमात्माहि है. और वोभी मात्र यह वचनतें नहि वहां हि

सूत्र—" प्रकरणाच्च " ॥ १० ॥

अर्थः—और प्रकरण तें.

विवेचन—परमात्माहि वो " अत्ता " समुझा जाता है " महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति " वो महान विभु आत्माका मनन करके धीर नहि शोचता है " ऐसा वाकों विभु और वाकी उपासना- तें " शोचतें छुटनां " होता है करके श्रुतिनें कहा है. फीर आगे " नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यं " ईत्यादि वचनतें वोहि (जाके उपर कृपा करे) जाका वरण करे, वाकों वो प्राप्त होवे-ऐसाभी कहेनेतें वो स्वतंत्र सर्वेश्वरहि भोक्ता ठहरता है. जो हमकों मुक्ति परमानंद प्राप्ति भी देनेवाला है. वो देनां जाके वश है. मात्र लय करनां नहि. मारनां वैसेहि तारनां भी जाके वश सो वो है. वातें वो जीव नहि ठहर सकता.

अब यहां एक श्रुति शंकास्पद है. " ऋतं पिबंतौ सुकृतस्य

ोके गुहां प्रविष्टौ परमेपरार्द्धे छाया तपौ ब्रह्मविदो वदंति " लोकमें
ृतका फल भोगनेवाले गुहामें दो पेठे हैं. वीलकुल भीतर उनकों
ह्मविद छाया ओर प्रकाश कहेते हें. ऐसे गुहामें कहे तो हृदयमें देहमें
ो कर्म फल भोगनेवाले कहे हे तो परमात्मा कर्मका फल तो भोगता
ाहि वो भोगनेवाला तो जीव हे. फीर दोनोंको भोगनेवाले कहे तो वो
ुसरा परमात्मा नहि वातें यह प्रकरणहि परमात्माका नहि होनां चाहीये.
ीर दो कहे हे. सो एक जीव–ओर दुसरी बुद्धिकों समुझे. सूत्रकार
हते हे " गुहामें जो प्रविष्ट हे वो दोनों " आत्मा " कहे तो दोनों
ेतन हैं. वो जीव ओर ईश्वर समझे–वैसा वहां कथन है. सूत्रके शब्दमें.

सूत्रः—गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ११

अर्थः—गुहामें प्रविष्ट दोनों आत्मा " हि " कहे तो निकी वैसा
र्शन श्रुतितें देखा जाता हैं.

विवेचन—वहां हि आगे एक सो जीव–ओर दुसरी बुद्धि करके
ो नहि कहा किंतु स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि " तंदुर्दर्शं गुढमनु प्रविष्टं
हाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं अध्यात्म योगाधिगमे न देव मत्वाधीरो हर्पशोकौ
हाति " वो देखना कठीन ऐसा " गुढ " भीतर उंडी गुहामें पेठा
ुपा हुवा जो पुराणा हे " अध्यात्मयोगमें " वो " देव " कों उपास-
े धीर हर्ष शोककों छोडते हे ऐसे अंदर दुसरा " देव " जाका अ-
यात्म योगमें दर्शन, वातें हर्ष शोकका छुटनां कहते हैं. तो दुसरी
ुद्धि नहि किंतु परमात्मा हि ठहरता हे. ओर " या प्राणेन " आदि
ुति वैसाहि वहां जीवका भी विवेचन करती हे. अर्थात् दोनो भीतर
ात्मा हि कहे हें. वामें एक परमात्मा हि हैं. जातें यह वाहिका प्रकरण
ऐसी ओर वहांकी हि श्रुतियोंके दर्शनतें सिद्ध होता हे. दोनों भो-
नेवाले सो तो जैसे " वो छत्रीवाले के साथ जाता हे " कहे तें-

सा वो भोगता है. तब भी परमात्मा संग सहायी रहता है. परमात्मा विना तो जीव होहि नहि सकता न भोग भी सकता है-त्यों वाकी हाजरीतें वाको दोष नहि लगता. जैसे सूर्यको, आकाशकों; फीर येहि प्रकरणमें और वचनतें भी यह स्फुट होता है—

सूत्रः—"विशेषणाच्च" ॥ १२ ॥

अर्थ—ओर विशेषण होनेतें.

विवेचनः "ब्रह्मयज्ञ" देव मीड्यं विदित्वा"-"ब्रह्मयज्ञ" कहे तो "जीव" ब्रह्मतें उत्पन्न भया जाना गया है. वो "ईड्य" देवकों उपासिके शांति पावता है ऐसे जीवका उपास्य करके वाको कहा है. वहां हि "सेतु" ब्रह्म यत्परमं अभयं" इत्यादि वहुत विशेषण है. जातें वो परमात्मा ओर आत्माकाहि प्रकरण सिद्ध होता है, आत्मा रथी—शरीर रथ-यह सर्व उपासककाहि विवेचन है. फीर जाको विज्ञान सारथी है मन लगाम वश है-वो नर संसार मार्गतें पार विष्णुके परमपदकों पावता है" ऐसा जीव परमात्माका संपूर्ण प्रसंग सुस्पष्ट अंत प्राप्ती पर्यंत दीखाया है-क्या यहां भी "ब्रह्मविद" छाया ओर आ तप" ऐसा तारतम्य "छाया" ते प्रकाशका विशेषत्व कहते हि है. वातें वो जीवका प्रकरण नहि. जीव बुद्धिका नहि-दोनों चेतन् छोटा वडा, उपासक उपास्य, मापक माप्य, तवहि शासन कर्त्ता और वो पालनेवाला वाके लीये शास्त्र है. वेदांतका सार येहि घंटाघोषवत् सिद्ध है.

परमात्मा अन्य है हम अन्य है. परमात्मा सर्वत्र निराकार होके हमारेहि लीये यह ब्रह्मांडमें भी कीतनीहि जगे साकार होही रहा है. और वो आकारसो प्राकृत नहि वा भ्रांतितें दीख पडता हो यों नहि. दिव्य ओर पूर्ण पवित्र दिव्य दृष्टी हो तवहि दीख पडे वो हमारा

अज्ञान समूल नाश करनेको कोन कोन रीति कृपा कीतनी कर रहा है. सो हम जानतेंहि नहि. जानेंपें मानते नहि. मानेंपें वाका लाभ लेतेहि नहि यह वडा शोचनीय है. ब्रह्मकी जिज्ञासा कीये तो ब्रह्म कहां दूर है ? एक हमेंमें भीतरहि मात्र हैं कया ? नहि छांदोग्यतें पाया गया कि अक्षमें भी है ओर वो जीव वा कोई ईन्द्रिय अभिमानी देव नहि वोहि क्यों कि वो श्रुतिके शब्द देखे तो भीतर वो परमात्मा हो येहि घटीत है.

॥ अन्तराधिकरणम् ॥

सूत्रः—अंतर उपपत्तेः ॥ १३ ॥

अर्थ—अंदर घटीत है.

विवेचन—श्रुति कहती है " य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति हो वाच. एतद् मृतमेतद् भयमेतद्ब्रह्मेति " यह जो अक्षीमें पुरुष दीखता है, वानें कहा वो आत्मा है–वो अमृत है–वो अभय है–वो ब्रह्म है. श्रुतिकों तो साक्षातकार भी होता है: अथवा सदा दीख पडता है. जब देखनेकी योग्यता पाये तब वो तो–तैयारहि है. वो परमात्माहि है. ऐसे वहांहि विशेषण है. उतनांहि नहि वाकी उपासना करने वालेकों वामें "सुखप्रद" "प्रकाशप्रद" ऐसे गुण है. यों अनुसंधान करनां करके श्रुति समुझावती है. फीर वहां कहती है "सर्वकों ये सुख पहोंचता है. सर्व लोकको ये प्रकाशता है. तो वो अंतर परमात्मा है यों कहेनांहि घटीत है: फीर ओर भी प्रमाण है परमात्माको रहेने के जो जो स्थानों काव्यपदेश है वामें चक्षुकाभी है.

सूत्रः—॥ स्थानादि व्यपदेशाच्च ॥ १४ ॥

अर्थः—ओर स्थान आदिके कथनतें;

सा वो भोगता है. तव भी परमात्मा संग सहायी रहता है. परमात्मा विना तो जीव होहि नहि सकता न भोग भी सकता है–त्यों वाकी हाजरीतें याको दोप नहि लगता. जैसे सूर्यको, आकाशकों; फीर येहि प्रकरणमें और वचनतें भी यह स्फूट होता है—

सूत्रः—"विशेपणाश्च" ॥ १२ ॥

अर्थ—और विशेपण होनेतें.

विवेचनः "ब्रह्मयज्ञ" देव मीडयं विदित्वा "–" ब्रह्मयज्ञ" कहे तो "जीव" ब्रह्मतें उत्पन्न भया जाना गया है. वो "ईडय" देवकों उपासीके शांति पावता है ऐसे जीवका उपास्य करके वाको कहा है. वहां हि "सेतु" ब्रह्म यत्परमं अभयं" इत्यादि बहुत विशेपण हैं. जातें वो परमात्मा ओर आत्माकाहि प्रकरण सिद्ध होता है, आत्मा रथी–शरीर रथ–यह सर्व उपासककाहि विवेचन है. फीर जाको विज्ञान सारथी है मन लगाम वश है–वो नर संसार मार्गतें पार विश्नुके परमपदकों पावता है" ऐसा जीव परमात्माका संपूर्ण प्रसंग सुस्पष्ट अंत प्राप्ती पर्यंत दीखाया है–क्या यहां भी "ब्रह्मविद" छाया ओर आ तप" ऐसा तारतम्य "छाया" ते प्रकाशका विशेपत्व कहते हि हैं. यातें वो जीवका प्रकरण नहि. जीव बुद्धिका नहि–दोनों चेतन छोटा बडा, उपासक उपास्य, प्रापक प्राप्य, तवहि शासन कर्ता और वो पालनेवाला वाके लीये शास्त्र हैं. वेदांतका सार येहि घंटाघोपवत् सिद्ध है.

परमात्मा अन्य है हम अन्य हैं. परमात्मा सर्वत्र निराकार होके हमारेहि लीये यह ब्रह्मांडमें भी कीतनीहि जगे साकार होही रहा है, और वो आकारसो प्राकृत नहि वा भ्रांतितें दीख पडता हो यों नहि. दिव्य ओर पूर्ण पवित्र दिव्य दृष्टी हो तवहि दीख पडे वो हमारा

अज्ञान समूल नाश करनेको कोन कोन रीति कृपा कीतनी कर रहा है. सो हम जानतेंहि नहि. जानेपें मानते नहि. मानेपें वाका लाभ लेतेहि नहि यह बडा शोचनीय है. ब्रह्मकी जिज्ञासा कीये तो ब्रह्म कहां दूर है? एक हममें भीतरहि मात्र है कया? नहि छांदोग्यतें पाया गया कि अक्षमें भी है ओर वो जीव वा कोई ईन्द्रिय अभिमानी देव नहि वोहि क्यों कि वो श्रुतिके शब्द देखे तो भीतर वो परमात्मा होयेहि घटीत है.

॥ अन्तराधिकरणम् ॥

सूत्रः—अंतर उपपत्तेः ॥ १३ ॥

अर्थ—अंदर घटीत है.

विवेचन—श्रुति कहती है "य एपोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एप आत्मेति हो वाच. एतद मृतमेतद भयमेतद्ब्रह्मेति" यह जो अक्षीमें पुरुष दीखता है, वानें कहा वो आत्मा है–वो अमृत है–वो अभय है–वो ब्रह्म है. श्रुतिकों तो साक्षातकार भी होता है. अथवा सदा दीख पडता है. जब देखनेकी योग्यता पाये तब वो तो–तैयारहि है. वो परमात्माहि है. ऐसे वहांहि विशेषण है. उतनांहि नहि वाकी उपासना करनेवालेकों वामें "सुखप्रद" "प्रकाशप्रद" ऐसे गुण है. यों अनुसंधान करनां करके श्रुति समुझावती है. फीर वहां कहती है "सर्वकों ये सुख पहोंचता है. सर्व लोकको ये प्रकाशता है. तो वो अंतर परमात्मा है यों कहेनांहि घटीत है. फीर ओर भी प्रमाण है परमात्माको रहेने के जो जो स्थानों काव्यपदेश है वामें चक्षुकाभी है.

सूत्रः—॥ स्थानादि व्यपदेशाच्च ॥ १४ ॥

अर्थः—ओर स्थान आदिके कथनतें.

विवेचनः—"य चक्षुपितिष्टन्" जो चक्षुमें रहा है. ईत्यादि श्रुति-वचन है. ओर भी हेतु.

सूत्रः—॥ सुखविशिष्टाभिधाना देव च ॥ १५ ॥

अर्थः—ओंर सुख विशिष्ट कहेनेतें हि.

विवेचनः—'कं ब्रह्म खं ब्रह्म' ऐसा जो "सुख" जो "प्रकाश." सो ब्रह्म ऐसा कहीके सूत्र कहते हैं. सुख आनंद प्रकाशरुप मात्र नहि. सुखविशिष्ट श्रुतिमें कहा है. ओर वो येहि अक्षीमें दीखते पुरुषकों.

सूत्रः—अत एव च स ब्रह्म ॥ १६ ॥

अर्थः—ओंर वातें वो ब्रह्म.

विवेचनः—जो सुख विशिष्ट अक्षीमें दीखता है वो ब्रह्म है यह सिद्ध भया. श्रुतिमें "कँ" "खँ" जो कहा है वो वाकेहि नाम है. यॉ वहां भी समझ जानां शंका न रहे वा लीये वाके उपासककों अंत गति भी वहांहि श्रुतिमें हि कहा है.

सूत्रः—श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च " ॥ १७ ॥

अर्थ—श्रुतितें उपासना करनेवालोंको गति कही है.

विवेचन—याकी उपासना करनेवालोंको जो गति कही है सो अर्चीरादि है. जहां अंत कहा है " एपदेव पथोब्रह्मपथ एते न प्रतिपद्य माना इमं मानवं मावर्तना वर्ततें " येहि देवपथ ब्रह्मपथ या करके पाये वो मनुष्य याकों पाके फीर पीछे नहि फीरते है. वो पथ जातें मीले वो परमात्मा भया हि.

सूत्रः—अनवस्थितेरसंभवाच्चनेतरः ॥ १८ ॥

अर्थ—अनवस्थित होनेतें असंभवीत है—ईतर नहि. जीवकी स्थि-

ति आंखमें नहि होनेतें वो अक्षीपुरुष तो परमात्माहि ईतर नहि. वो अक्षीमें रहता है. वा लीये बडा प्रकरण है.

" अंतर्यामी ब्राह्मण " नामतें दो जगे है. वा लीये कछुक प्रथम पादमें कही आये है. यहां " हृदयमें भीतर " —अक्षीके भीतर ऐसा प्रसंग आयेतें वा लीये स्पष्ट—सूत्रहि प्रथक भी कहेते हैं. सुस्पष्ट करते हैं कि परमात्मा सर्वत्र सर्वमें रहीके उनमें आपके सकल गुण सामर्थ्य-युक्त रह सकता है. ऐसा वेदांतका घोष है. वो स्वाभाविक गुण शक्ति वालेकों यह प्राकृत वस्तुका संग बाध क्यों करे. उनमें बाध करनेकी योग्यतादिभी तो वो करे तवहि होती है. प्रकृतिहि दुःखरुप, ऐसा नहि. अनुकुल रहे तो सुखरुप और प्रतिकुल रहे तो दुःखरुप होती है. स्वतः तो वो अचित है. कैसी कब कोनकों होनां, वोहि नियंताका-खास काम है. वाकी इच्छाका अमलहि सर्वत्र वो प्रकृतितें कर रहा है. ऐसा वाकी लीलाका वो प्रबल परिकर वाकेहि सर्वथा सर्वदा परतं-त्र है. वाकी इच्छाकी साधक है. वो इच्छा आप वामें रहीके वाकों धारके आपके सत्य संकल्पत्वतें पूर्ण करता है. वोहि बात चेतनोंकी भी. वोभी तो सर्व वाके शरीर, लीलाके परिकर है. प्रकृतिके स्वरुपमें विकार होनां स्वभाव है. जो परमात्मा करता है त्यों जीवकों ज्ञान र-म्मीयं है उनका संकोच विकाश होइ सकता है तो वो करके उनके उपर परमात्मा अमल चलाय रहा है. वोभी भीतर रही धारके संकल्प-तें ऐसे परम सुखरुप स्वतः सदा पूर्ण परब्रह्म सो आपहिकी परम अद्भूत आल्हादक शक्तियोंतें असंख्य चेतन और अपार अचित पदा-र्थरुप परिकरतें लीला कररहा है. सोभी कहीं दूर रहीकेहि नहि आपकेहि वो शरीर होनेतें आपहि भीतर रहीके कररहा है. उनका कोनभीरुप अधिभूत अधिदैव बनो वो अंदर हैहि. अंतरमें रहीके नियमन करनेतेंहि वाका प्रसिद्ध नाम " अंतर्यामी " करके है. सामान्य वो

परब्रह्म परमेश्वर सब कहते हैं. परंतु कोनके अंतरमें कोनका "यामी" वो सब कोइ पूरा विचार नहि करते हैं. वो शब्द जहांतें पायेहैं–वहां हैं. वेदमें है. वेदांतमें है. वो सूत्र–सहायतें यहां कीया है.

अन्तर्याम्यधिकरणम्

सूत्र—अंतर्याम्यधिदैवाधि लोकादिषुतद्धर्म व्यपदेशात् ॥ १९ ॥

अर्थः—अंतर्यामी है. अधिदैव अधिलोक आदिमें वाके धर्मके कथनतें.

विवेचन—काण्व माध्यंदीनी शाखा यजुर्वेदकी है, वामें जो अधिदैव और अधिलोकादि, जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, अंतरिक्ष, वायु, आदित्य, दीशा, चंद्र, तारे, आकाश, तेज, आदि उनके उनके नाम लेके जैसे "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यां अंतरो यः पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरंयः पृथिवी मंतरो यमयति एषत आत्मा अंतर्याम्यमृत" जो पृथ्वीमें रहा है पृथ्वीके भीतर जाकों पृथ्वी नहि जानती है. पृथिवी जाका शरीर है, जो पृथिवीके भीतर यमन करता है वो तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृत, ऐसा पृथ्वीके लीये कहा है. तैसे सर्व देवत और सर्व भूतोंके लीये कहा है. वो फीर प्राण, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन, त्वक्, विज्ञान, रेत, आदि आत्मा, और आत्माका जो है वाके लीयें भी याहिप्रकार कहाहै कि "वो सर्वमें रहा है. वो सर्व वाके शरीर हैं. आप उनका शरीरी नियामक और फीर अमृत वोहि "एष आत्मान्तर्याम्यमृत" वोहि तेरा आत्मा अंतर्यामी अमृत ऐसा देवोंका, भूतोंका, मनुष्योंका, चित अचित सर्वका सर्वमें सर्व अवस्थामें जो हमारा अंतर्यामी वोहि सर्वका है. वो अंतर्यामी नाहि. वो हमारा आत्मा कहे तो जीव नहि ठहरता, न जीव सोहि वो ठहरता है. क्योंकि यह सर्वतें भिन्न सबके शरीरी और सर्वतो वाके शरीर, यह नियामक, वो नियाम्य,

यह आधार, वो आधेय, यह ज्ञाता, वो अज्ञ, यह स्वतंत्र, वो परतंत्र, ऐसे सर्व हेतु–वो दो अन्य हैं करके इतनें और वाके ऐसे स्पष्ट है कि शंकाकों अवकाश नहि रहेनां चाहिये " तेरा आत्मा कहे तो " तेरे आत्माका आत्माहि " समझनां. क्योंकि हमाराहि जीवात्मा तो सर्व जगतमें कहां रहा है. वामें यह सर्व लक्षण कहा है. हमारे आत्मासेंहि इश्वर अन्य रहे है अनेक और श्रुतिमेंभी वो तो हमारे जीवात्मामें प्रवेशीके रहनेवाला करकेहि कहते आवते हैं. फीर याको अंत अक्षर मूलकाभी शरीरी नियामक कहा है. वैतो हम कंगले कहां हो सके ?" परंतु फीर वो कोन है सो स्पष्ट नामके साथ "दिव्यो देव एको नारायणः " करकेभी समुझा दीया है. जाकी नाभीतें ब्रह्मा जो वाकोंभी वेदका प्रदाता है. अर्थात् वोहि श्रीपति सर्वेश्वर हमारा शरीरी, स्वामी, शेषी, अंतर्यामी, अमृत है. जब जीव वो नहि ठहरता तो प्रकृति जाका और नाम स्मार्तभी है वो तो कहांसे होहि सके !

सूत्रः–न च स्मार्तमत द्धर्माभिलापाच्छारीरश्च ॥२०॥

अर्थः—प्रकृति नहि वो धर्म नहि कहेनेतें और न शारीर जीव.

विवेचनः—वाके शिवायके दो तत्त्वोमेंतें एकभी नहि–न शरीर–न शरीरवाला–अथवा न प्रकृति तत्व–न जीव बद्ध; न मुक्त वा नित्य. यह शंकाकों अवकाश नहि तोभी जब " विज्ञान " " आत्मा " ऐसे शब्द जो बद्धात्माकों नहि परंतु मुक्तात्माकों और परमात्माको उभयकों लग सकते है. ऐसे श्रुतिमें प्रयोग कीये है वहां शंका ऊठे वा लीये दोनों शब्दोंका दो पाठमें प्रयोग करके दोका एकहि वाचक समुझावनेके साथ वो अंतर्यामी नहि है ऐसा श्रुतियोंने निर्णय करके समुझाया है. वो सूत्र यहां है कि.

सूत्र—उभयेऽपिहि भेदेनैन मधीयते" ॥२१॥

अर्थ—उभयमें भी याकों भेद करके अध्ययन कीया है.

विवेचन—उभय काण्व शाखा एक, और माध्यंदीनी दुसरी. दोनोंमें यह ठाठसें अंतर्यामीका वर्णन है. परंतु वाके पाठमें और सब समान शब्दभूत इन्द्री आदिके लीये धरके, आत्माके लीये एकमें " विज्ञान " और एकमें " आत्मा " धरा है परंतु उभयका यह अंतर्यामीतें स्पष्ट भेद. जैसा पृथ्वीका मंत्र अभी लीख चूके वैसाहि " यो विज्ञाने तिष्ठन् " और वैसाहि वो " आत्मनि तिष्ठन् " करकेभी है हि, यातें मत्यगात्माका शरीरी मत्यगात्मातें विलक्षण और अपहत पाप्मा दिव्य देव नारायण अन्यहि अंतर्यामी परब्रह्म है.

भीतर रहेपर " अमृत " माकृत गुणोंके भोगतें अस्पर्शीत रहता है करके कही गये हैं. फीरभी स्वरुपशोधन प्रसंगसें प्रकृतिमें रहेपर प्रकृतिसंबंधतें जीवमें आवते है एसा एकभी गुणधर्म वामें नहि. ऐसाहि श्रुति स्पष्ट वाकों वो लक्षण धर्मतें कहती है वाका स्मरण करावते है. परमात्माके क्या क्या खास गुण. वामें दो मकार एक तो माकृत नहि. और दुसरा दिव्य गुणमय सो है वैसा वाका स्वरुप है. माकृत गुण नहि. वो भी तो वाहिके धर्म—लक्षण है. जामें दिव्य गुण है. ऐसा श्रुतितें सिद्ध होता है या पर सूत्र है.

(अदृश्यत्वाधिकरणम्)

सूत्र—अदृश्यत्वादि गुणको धर्मोक्तेः ॥२२॥

अर्थ—अदृश्यत्वादि गुणवाला वाके धर्म कहेनेते ॥

विवेचन—छांदोग्यमें श्रुति है ॥ अथ परा यया—तदक्षर मधिगम्यते

यत्तद्द्रेश्य मम ग्राह्य मगोत्र मवर्ण मचक्षुः श्रोत्र तद् पाणि पाद नित्यं विभुं सर्व गतं सुसूक्ष्म तद् व्ययं यद्भूत योनि परिपश्यंति धीरा " अथ परा (विद्या) जा करके अक्षर जाना जाता है " वो अक्षर कैसा है ? जो अदृश्य अग्राह्य गोत्र नहि, वर्ण नहि; चक्षु श्रोत्र हाथ पाद नहि. जाकों वैसा वो नित्य विभु सर्वगत अति सूक्ष्म वो अव्यय. जो भूतकी योनि है वाकों बुद्धिमान देखते हैं " यह अतर्यामीके स्वरुपका वर्णन है. हाथ हमारा वामें रहे. हम जीव वाकेभी भीतर वो तो है यह जो दृश्य ग्राह्य वर्ण कुल हाथ पादादिक वोतो जीवके, जीवकों वाकी अपेक्षा है. परमात्मतत्व वैसा नहि. वोतो वाके भीतर वातें अन्य. अर्थात् यह सर्व विनाका ऐसा वो यह अद्रष्यत्वादि गुणक कहे तो वो हमारे सरीख देहधारी नहि. हम जीव सो नहि. वोतो नित्य विभु सर्वकें भीतर रहा वातें सर्वतें " सूक्ष्म " परंतु वोहि सर्वका कारण "भूतयोनी " है. ऐसा धीर जानते हैं. वो शंका नहि करते हैं. वो देखते हैं कि सर्व करने, जानने, पकडनेका वाको ऐसे हाथ पादादिकी अपेक्षा नहि. फीर वाके विशेष खास जो ओर में नहि वोभी धर्म वहांहि कहे हैं कि वो " सर्वज्ञ, सर्ववित् " सत्य संकल्प है " आपतेंहि विना आंख देखे, विना कान सूने, विना हाथ पकडे, ऐसे वाके गुण कहे हैं. वो विलक्षण है. प्रत्यक्ष अनुमानतें नहि समझ सकते हैं तवहि श्रुतिप्रमाण है. तवहि वो शब्दप्रमाणतें " शास्त्रयोनीतें जाना जाता है करके कहा है. ओर वातें वो अक्षर सो मुक्तात्मा वो नित्यात्मा भी नहि. किंतु परमात्माहि है वामें हमारे सरीख गुण नहि. यह भी वाके एक प्रकार विशेषण ओर. फीर वामें स्वाभाविक ज्ञान वल क्रीया है. वोभी वाके गुण विना शरीरके–स्वरुपमेंहि है. वो पर विद्यातें ऐसा जाना जाता है. वाका वैसा साक्षातकार धीरकों होता है. जगत कारण जो ब्रह्म निराकारकों कहा सो ऐसा विलक्षण निर्गुण होके,

वोहि दिव्य गुणगण है. यह सत्य ज्ञानीके अनुभवसिद्ध है. और या प्रकार यद्यपि है तीनों तत्व वो उभय विशिष्ट तिसरा परब्रह्म है. परंतु वो उभयतें श्रेष्ट या प्रकार वो उनमें रहीके उनतें अन्य है एसा और वचनोसें कहे गये परभी यहां ठीक समुझाया है. विशेपण अनेक प्रकार एक विशेष के अविरुद्ध हो सकते है. यहां दो प्रकार कहे है. एकतें वो जीव सरीख नहि यों बोध होता है. अन्यतें बाकी खास विशेपता क्या सो समुझी जाती है. यह उभय प्रकार विशेपण विशिष्ट जो अखिल हेयतें प्रत्यनीक और कल्याणवाला सो येहि ठहरता है. वो दोनोंका यह निर्णय है. सूत्रकारके वचनमें

सूत्र—विशेपण भेद व्यपदेशा भ्यांच नेतरौ ॥२३॥

अर्थ—विशेपणके भेदके कथनतें और दो नहि है.

विवेचन—अक्षरात् " संभर्वाह विश्वत् " अक्षरतें यह विश्व होता है " यः सर्वज्ञः सर्वे वित् " वो न प्रकृतिका नाम अक्षर है वो होइ सके नहीं तो " अक्षर " करके जो जीवका मुक्तावस्थाका नाम भी है वोभी होइ सके. बद्ध वा मुक्त एकभी जगतकर्त्ता सर्वज्ञ नहि हो सकते हैं और वाके विशेपण तो एकहि वचनतें देखे—" दिव्योह्य मूर्त्तः पुरुष स्सबाह्याभ्यांतरोह्यजः " दिव्य—अमूर्त प्राकृत आकार नहि " अप्राणोह्यमनाश्शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः कोहेके फीर वाकोंहि (दिव्य) पुरुष" भी कहा. वोहि बाहिर भीतर अज प्राण मनवाला नहि; ज्योतिरुप ऐसा, अक्षर मूलप्रकृति वोतो नहि; वातें पर जीव मुक्त नित्य शोभा नहि; वातेंभी पर श्रेष्ट उत्कृष्ट है. ऐसा स्वरुपतें है. वो स्वतः दिव्य स्वतः दिव्य गुण शक्तिवाला, दिव्य रुपवाला, फीर वोहि उनके उपरांत स्वरुपके उपरांत विभूतिरुप और प्रकार शरीरवालाभी है कहे तो चित अचित शरीर शक्तिरुप—वाला ऐसा वोहि जगत शरीरवाला है. जगतकों वाका "वि-

स्वरुप " " पुरुषरुप " श्रुतियोंमें कहा है. और वो चित अचित वाके शरीर होनेतें वाकों " रुप " कहेतो एकहि वात है. रुप रुपी सो भिन्न भी सहि त्यों वो न जूदे पड सके ऐसेहि होते है वैसाभी वाको हि श्रुतिनें कहा है जातें वो जीव नहि ठहर सकता.

सूत्र—" रुपोपन्यासाच्च " ॥२४॥

अर्थ—और रुपका उपन्यास करनें तें.

विवेचन—कोन प्रकार सो श्रुतितें देखे " अग्नि शीर, चंद्र, सूर्य, नेत्र, दीशा, कांन, और विस्तार पाई वाणी सो वेद, वायु, प्राण—हृदय यह विश्व, पृथ्वी पदमें—यहि सर्व भूतका " अंतरात्मा " जगतका वो अंतरात्मा होनेतें वाको ऐसा रुपक दीया है. वो एक भूत जीव प्राणी कैसे हो सके ! यातें जगतकारण वो नहि है. किंतु परमात्माकोंहि यहां भी कहा है. यह अधिकरण पूरा भया. परंतु यह रुप जामें कहा है ऐसी और विद्या यह रुपके स्मरणतें स्मरण करावते है. वाका नाम विश्वानर विद्या है. वाका प्रसंग भी छांदोग्यमें है. वहां आत्माकों वैश्वानर कहाहे. और वाकी उपासना करनेंकों कहा है. वहां कहे लक्षणतें देखे तो " अग्नि " जो महाभूतमें एक है वो जठरामें रहा सो भी समुझा जावे और वाका अभिमानी अग्नि देवता भी समुझा जावे. वातें संदेह उठे वाकी निवृत्ति अर्थ अधिकरण है वामें आरंभहि वो नामतें है कि.

(वैश्वानराधिकरणम्)

सूत्र—वैश्वानरः साधारण शब्द विशेषात् ॥२५॥

अर्थः—वैश्वानर साधारण, शब्द विशेष होनेतें.

विवेचन—साधारण वो शब्दका भूत वा देव अर्थ हो. वातें यहां

विशेष कहा है: यातें समुझा जाता है कि यह उपासना उनकी नहि कही गइ है. जैसे परमात्माके अनेक गुण शक्ति तैसें अनेक नामरुप भी वेदांतमें है. वो सर्व उपास्य है यातें उनकी उपासना भेदतें विद्या भेद कही गइ है. यहां विशेष यह है कि आत्मा कोन, ब्रह्म कोन, यह समझनेंको पांच महर्षी विचार करके इकठे होके. आपतें न बन पडी, तब औरके पास गये. और वो फीर और, ऐसे छे मील्के केकयके पास गये वाकों कोन ब्रह्म " " कोन आत्मा " ऐसा पूछा. वाके उत्तरमें कहा कि " वैश्वानर आत्मा है " और वाके ज्ञानका इतनां महात्म्य कहाकि "जेसे आगमें घास, तेसें वाकें सर्व पाप जल जाते हैं. तो वैसातो परब्रह्मकाहि महात्म्य है. यातें वो परमात्मा है.

सूत्र—स्मर्यमाण मनुमानंस्यादिति ॥२६॥

अर्थः—स्मरण करनेंतें अनुमान होता है.

विवेचन—जो रुप यहां कहा है वोहिरुप श्रुति स्मृतिमें और जगे भी ऐसाहि परमात्माका कहा है. वाका स्मरण होनेंतें यह अनुमान करनां भी ठीक है कि वो परमात्मा है. या प्रकार अभी प्रकरण देखेतो शंका रहती है कि यहरुप भूतका वा देवका नहि ठरता. परंतु यहांहि और शब्द है. वामें वो " पुरुषके भीतर रहा है वाका अग्निहोत्र कल्पन कीया है. वो देखे तो " जाठराग्नि समुझा जाता है. वाको आहुतीयें देनेका कहा है. वो प्राणाहुतीयें है सो जाठराग्निमें हि दी जाती है. यह शंका उठाके

सूत्र—शब्दादिभ्योऽन्तः प्रतिष्ठानाच्च नेतिचेन्न तथा दृष्ट्युपदेशाद संभवात् पुरुषमपि चैन मधीयते ॥२७॥

अर्थ—शब्दादितें भीतर प्रतिष्ठा कही है वो है ऐसा. नहि. वैसी दृष्टी करनेको उपदेश है. असंभव है. और याकों पुरुष भी कहा है—

विवेचनः—प्रथम शंका तो समुझे है कि अंदर रहे जठराग्निको कहा क्यों न हो! वेसे शब्द हैं सहि, वाको उत्तर—वामें परमात्मा दृष्टी करनेको उपदेश है, क्योंकि सर्व भूत, देव, परमात्माके शरीर होके उनके द्वारा परमात्माकी उपासना बहु जगे कही है. वैसे यहां केवल जाठराग्नि नहि, क्यों? और हेतु देखे " असंभव है क्या! वहां जो और विशेषण वाकोंहि लगाया है कि " त्रिलोक वाका शरीर " सो जठराका नहि होसकता है परंतु जठरा विशिष्ट जो परमात्मा है वाका होहि सकता है. और वैश्वानर भी वाका शरीर हैहि " अहं वैश्वानरो " आदि वचन हैं. यातें वैसे जठरा विशिष्ट ब्रह्मकीहि उपासना है. फीर पुरुषभीयाको वहां कहेते हैं जो परमब्रह्मका लक्षण है " विश्वानरो यत्पुरुष " " पुरुषसुक्त " कहतेहि पुरुष नाम परमात्माका जानाजाता हैहि " पुरुष ए वेदं " ऐसा श्रुतिमें पुरुष शब्द परमात्माकाहि वाचक है सो याकों कहते हैं.

सूत्र—अत एव न देवता भूतं च ॥ २८ ॥

अर्थः—न यातेहि देवता न भूत.

विवेचन—वो हेतुओंको लेके वो " वैश्वानर " अग्नि देवता नहि त्यों " तेजतत्व " महाभूत भी नहि—अर्थात् परमात्माहि है जाकी उपासना कहा है. और वो देव, भूत, तो वाके शरीर—वाके रुप—वातें भिन्न होके वो द्वारा आप शरीरी होनेतें सेवा लेता है वाका उपासन कहा है. ऐसा वाका वोभी एकरुप एक प्रबल शक्ति हैहि वातें वो गुणरुपवाला वो परब्रह्महि ठहरता है. और बढके जैमिनिनें ठहराया है कि वो नामतें हि ब्रह्मका अर्थ होता है फीर वो वाके

शरीर और ब्रह्म शरीरी उतनां दुर क्यों जानां ?

सूत्र—साक्षादप्य विरोधं जैमिनिः ॥ २९ ॥

अर्थः—साक्षात भी जैमिनी.

विवेचन—वो कहते हैं साक्षात वाका अर्थ परब्रह्महि होता है. वैश्वका नेता सो विश्वानर—वो परमात्मा हिहि. " अग्नि " आगे नयन करता है. सोभी वोहि परंतु यहां " प्रादेश मात्र " की उपासना करनेका कहा है. अंगुष्ठका एक भाग उतना वडारुप ध्यानमें लावना. परंतु यह क्यों संभवे? अपरिछिन्नका परिछीन्नत्व केसामानें ! वा लीये पूर्व कही चूके वेसाहि अन्य रुपीमतभी है कि यह सत्य वार्ता हैं कि जैसे निराकार अनंत परमात्मा यह सत्य तेसे वोहिदिव्यरुपतें साकार परिमित होता है वोभी सत्य है. वो मानें तो वाकी विशेषता जो सर्व शक्ति अचिंत्य शक्तिं करके है. वातें भी विशेष वाकी हमारे लीये उदारता है कि हम वाकों ध्यायी सके ! और वातें अंत वाकों पाइ सके. यहां सर्व अंत कोनकोन पावे तो अनंतकों केसे कहां सेवे.

सूत्र—अभिव्यक्ते रित्याश्म रथ्यः ॥ ३० ॥

अर्थ—अभिव्यक्तिके लीये ऐसा आश्मरथ्य आचार्यका मत है.

विवेचन—उपासक देख सके–वा लीये " प्रादेश मात्र " उपासकोंकों वाकि अभि व्यक्ति होनेकेहि लीये वो होते है उतनेहि हैं वो नहि.—

ऐसा उनका खुलासा है. फीर वाकोंहि विश्वं रुपमें " पुरुष " रुप क्यों कहा !

सूत्र—अनुस्मृते र्वादरिः ॥ ३१ ॥

अर्थ—अनुस्मरणके लीये ऐसा बादरी मत है.

विवेचन—यह शंकाका उत्तर वो, और बादरि स्वामी भी वो आचार्यके मतकों, वानें बताये हेतुकों पसंद करके देतेंहे कि प्रादेश मात्र सो कोन ! जो सर्व विश्वमें व्यापक–जाकी ऐसी प्रबल शक्तियें हे वो उपासककों अनुस्मरण करनेकों वो भी उपयोगी हे. फीर वाके लीये "प्राणाय स्वाहादि" आहुतीयें देनां कहा हे. या लीये फीर जैमिनीमत पसंद करके धरतेंहे कि.

सूत्र—संपत्तेरिति जैमिनिस्तथाहि दर्शयति ३२

अर्थ—संपतिके लीये ऐसा जैमिनि कहते हें. वैसेहि श्रुति दीखावती हे.

विवेचन—विश्वमें उपासक कहां उपासना करनेको जावे ! वातें शास्त्रनें उपकार करके हमारे भीतरहि आहुती दीये तो, वो सविधि कीये तो, वाकोंहि पहुंचेगी. ऐसा यज्ञ संपत्तिके लीये ठहराया हे. वो कीये तो अग्निहोत्रका फल मीले तेसा भगवान दयालु–दयातें शास्त्रमें सुगम उपाय आपकी सेवा उपासना करनेको ठहरा रखते हे. वो समझके सविधि कीये तो सफल हे. वाकेहि फलमें " आगमें घासकी नांइ पापका नाश होता हे करके कहा हे, श्रुतिवचन हे. तात्पर्य अग्नि होत्र, प्राणाहुति, भी वाकीहि वोहि देव देवकी हे.

सूत्र—आमनंति चैनमस्मिन् ॥ ३३ ॥

अर्थ—या (उपासकके शरीरमें) याकों (परमपुरुषको) कहते हें.

विवेचनः—"वेदमें श्रुति कहती हे कि प्राणाहुति दीये तो सो यह परमात्माकों पहुंचती हे. वो परमात्मा, याके शरीरमें हेहि. वाकीहि पुरुषविध कल्पना कीये तो ठीक हे. प्रादेशमात्र वाका आकार, वोहि त्रिलोकका

व्यापक ऐसे वैश्वानरकी उपासना कहना होनेको वातें वो परब्रह्मकी प्राप्ती. वाके अंगमें यह प्राणाहुती अग्निहोत्र यह सर्व वेदमेंहि कहते हैं. फीर और भी हैकि वो उपासकके शरीरकों ब्रह्मांडका न्याय विश्वरुपका पुरुषकी यह देहको लगाया जाता है. वो उपासकका शरीर भी तो परमात्माकाहि शरीर है. कोइ औरकी बनावट नाहि. जीवकों उपासना करनेकों वामें रहने दीये तो क्या ? स्वामी स्वामीहै हि. वो देहका, जठराका, अग्निका, और आत्माका–सर्वका शरीरि स्वामी सर्वतें श्रेष्ठ वोहि उपास्य वातें वोहि वैश्वानर पुरुष परब्रह्महि पुरुषोत्तम है. ऐसा यहां भी सिद्ध भया है.

—यहां द्वितीय पाद पूर्णभया—

॥ प्रथम अध्याय–तृतीयपादः ॥

अचिततत्वकी व्यवस्था करनेवाले अनेक चेतन हैं और उन्हींमें फीर परम चेतन भी होनेंतें जहां जाका विशेपत्व–वहां वाका कर्तृत्वादि कहा जावे–वातें कभी आत्मा अकर्त्ता–और परमात्मा कर्त्ता; और कही वातें विरुद्ध, देख पडनेंतें कब कोन कहता है–यह विवेक करनां पडता है. दोनोंकों एक, वा एक कर्त्ता, वा एकभी कर्त्ता नहि, कहे तो प्रकृतिहि कारण है ऐसा वाद उठता है–सो तो ठीक नहि. कर्त्ता तो चेतनहि होहि सके. वामें भी अंत सत्ता सर्वेश्वरकीहि सिद्ध होती है जैसें अभी "अंत वैश्वानर" के प्रकरणमेंहि जठराग्निका वाके अभिमानी देवका, और वो जाकी शक्ति है वो देवाधिदेवका कर्तृत्व है. मनुष्यमात्रकी स्थितिकों लेके देखाकि वो केसे परमात्मा यत्न है ! यातें वाकोंहि आहुतीयें देवे सो उचित है–यह शरीर वाकाहि रुप,

यह हृदय वाके लीयेहि अग्निहोत्रस्थान, और हम वाके सेवक पुजारी माननां-वोहि फीर सत्य वाचक है. या प्रकार वोहि सत्यपालके है. वैसेहि सर्व देहकी स्थितिका सर्व ब्रह्मांडकी स्थितिका कारण भी वोहि मुख्य है. क्या आकाश, क्या पृथ्वि, क्या औरका ! जैसे पालक तैसे धारक चेतनका पालक अचेतनका धारक कोन कोनका ! क्या कहे ?

द्युभ्वाद्याधिकरणम्

सूत्र—द्युभ्वाद्यायतनं स्व शब्दात् ॥ १ ॥

अर्थ—आकाश भू आदिका आयतन है. स्व शब्द होनेते.

विवेचन—कोन आयतन है ! " स्व " शब्द कोनका वाचक है ! जीवका वा परमात्माका. "द्यु" "भू" आदि तो अचित है. आयतन दुसरा तत्वहि होहि सके. वो दो है. श्रुति कहती है—यस्मिन्द्यौः पृथिवी चांतरिक्ष मोतं मन सह प्राणैश्च सर्वैस्तमे वैकं जानथात्मान मन्या वाचोविमुंच थ अमृतस्यैष सेतुः ॥ यह आथर्वणिक श्रुति है. वाका अर्थ—जामें आकाश पृथ्वि और अंतरीक्ष मोत है. मनके साथ इन्द्रीयें सर्व युक्त है वो एकको जान—आत्माकों अन्यवाचा छोड दे. अमृतका वो सेतु है. " एक आतमा सो और वडे तत्व जो मन इन्द्रीयें उनका धारक तो जीव भी होहि सके. परंतु समग्र पृथिवी अंतरीक्ष वामें नहि मोत हो सके. त्यों वो आयतनकों आत्मा कहे तो परमात्मा हि है. वो सूत्रकार ठीक समुझावते हैं कि " स्व " जो परमात्माके लीये खास शब्द है. वातें वोहि ठहरता है वो शब्द " अमृतका सेतु " परलोक मीलनेका साधन जो जीव होहि नहि सकता. ऐसा जो जगतकों तत्वोंकों इन्द्रीयोंको धार रहा है. वाकों जानों वो एक आत्मा व्यापककों जोजाने सो संसार तीर जावे. वाका वैसा प्रभाव प्रताप है. तबहि तो वाका वो नाम " स्व " शब्द-

तें हि (वो " खुद " शब्दतें हि) समुझा जाता है. वातें सिद्ध भया कि वो परमात्मा है. जीव नहि. हमतो क्या, जामें हमसें करोडन है, वो सर्वका और जो हमारे भी करण है धारक है उनका भी सत्य आयतन वो है सर्वाधार सर्वेश्वरहि ठहरता है. वातें वाकीही वात, विचार, सेवा, करनां और छोडनां " और जो करतें हैं सो ठीक नहि है " ब्रह्मकी जिज्ञासा " सो एसेकी, या प्रकार ऐसा समुझे तो हमारा मद कहां रेहे ? हम क्या और वातें कर सकें! वो यहां आधार है पास है वातें जाननां ठीक है फीर वो नावरुप हैं, उपाय होता है तब तो सेवना ठीक है, फिर मुक्त होनेके पीछे तो वाकी अगत्य नहि रहती होगी ! वो बात नहि. वाकों जाननां सो वाकों पावनेकों है. संसार-वंध छुटे वोतो वाके दर्शनका प्रथम फलहि अनिष्ट निवृत्ति तो है. परंतु परमफल अनंत स्थीर फल भी तो वो है. वाकीहि प्राप्ति है. उभय लोकका स्वामी उभय लोक साकारभी है. दिव्य पुरुषाकार जो यहां होता है वोहि वहांभी मीलता है. या प्रकार वो मुक्तोंके लीये. मुक्त भये पीछेभी प्राप्य है. सो कहते है.

सूत्र—मुक्तोपसृप्य व्यपदेशाच्च ॥ २ ॥

अर्थः—और मुक्त वांतें है ऐसा कथन होनेतें.

विवेचन—श्रुति है "यदा पश्यः पश्यते रुक्म वर्णं कर्तार मीशं पुरुषं ब्रह्म योनिं तदा विद्वान् पुण्य पापे विधूय निरंजनः परमं साम्य मुपैति "—जब देखता है देखनेवाला कनकवर्ण; कर्त्ता, ईश, पुरुष, ब्रह्मयोनिकों—तदा विद्वान् पुण्य पापकों विधूय करके अंजनरहित परम समानताको पावता हैं. उपासक उपास्यका साक्षात्कार करता है—वो कैसा है ? पुरुष आकार, सुंदर वर्णवाला, वोहि जगकर्त्ता, नियंता, जगतका कारण फीर वाको वैसा जाननेवाला—विद्वान्—ज्ञाता—दृष्टाका वाके प्रतापतें क्या होता है ? वाके कर्म भले हो वा बुरे; सबतें वो विशुद्ध होके,

वाके मलमात्र हठ जाके, वो स्वामीके परम समान होता है. कनककों कनक आप समान बना देते है. एसा नहिकि वो आपहि रहे-वा वो आपहि हो जाता है " मुक्त परम पुरुषको पावता है " तब वो ऐसा वाके समानं होता है. ऐसा स्पष्ट श्रुतिमेंहि कथन होनेतें आत्मा कभी परमात्मा न है, न होहि सकता है. वातें यहां भी जो कहासो परमात्माहि है वो द्यु आदिका आयतन वैसेहि प्राणीयोंकाभी उभय तत्वका आयतन है.

सूत्र—नानु मानमतच्छब्दात् प्राणभृच्च ॥ ३ ॥

अर्थ—अनुमान नहि वा लीये शब्द न होनेतें-और प्राणका धारक भी.

विवेचन—अनुमान कहे तो " प्रकृति " प्रधान तत्व, वा लीये तो यहां शब्द हैहि नहि. फीरवो तो कैसे ठहरे तैसेंहि वैसे वो प्राणका धारण करनेवाला जीव भी नहि ठहरता है क्यों ठहरे ? यहांहि जैसे प्रकृतिके लीये शब्द नहि. तैसे प्राणभृत्-जीवका वातें भेद कहा है.

सूत्र—भेद व्यपदेशात् ॥ ४ ॥

अर्थ—भेदके कथनतें.

विवेचन—श्रुति है " समान वृक्षे पुरुषो निमग्न अनीश या शोचाति मुह्यमानः ॥ जुष्टं यदा पश्यत्यन्य मीश मस्य महिमान मिति वीत शोकः ॥

एक वृक्ष शरीर उभयकों समान है वामें पुरुष जो अनीश-करके प्रकृतिमें मोह पाइके निमग्न है वो शोक-करता है वो जब प्रीतिसें अन्य इश और वाके महिमाकों देखता है तब शोकरहित होता है. ऐसे सेवक स्वामी एककें स्वरुप रुपके प्रेमपूर्वक स्मरणतें इतरका शोक जाता है ऐसा उभयका भेद कहा है.

सूत्रः—प्रकरणात् ॥ ५ ॥

अर्थः—प्रकरणतें. ॥

विवेचन—सब प्रकरणहि ऐसा उभयका है–जैसे.

सूत्रः—स्थित्य दनाभ्यां च ॥ ६ ॥

अर्थः—स्थिति अदनतें ॥

विवेचन—एककी स्थिति एकका अदन कहेनेतें.

श्रुतिः—द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानवृक्षे परिष स्वजाते ॥ तयोरन्य. पिप्पलस्वाद्वत्य नश्नन्न्योऽभि चाकशीति ॥

दो सुपर्ण संग लगे सखा समान वृक्षकों वी लगके बढे है. वामें एक पीपलके फलकों पावता है अन्य न पाइके प्रकाशता है.

ऐसे एक शरीरमें दो. एक कर्मफल भोगता है " अदन " करता है, एक नहि भोगता है. बाकी " स्थिति " मात्र है. वो प्रसन्न प्रकाशीत है. ऐसे जीव इश्वरका भेदहि है. वातें जीव कंगाल, इश्वर प्रतिपाल वोहि सर्वाधार है. ऐसा सिद्ध है.

वाकों पावनेमें क्या फल है ? वाके समान भये तो दुःखतें दूर भयेः फीर सुख क्या कीतनां ? जो गीनो सो जीतनां मानो उतनां क्योंकि सुखहि वो है. वातें सीमा है. ब्रह्म " वडा "–" बहुत "–सो " सुखरुप " वा लीये " भूमा " शब्द छांदोग्यमें है. वाका अनुभव भयाकि वेडा पार ! फीर अन्य सर्व असार कहां रस, कहां छील हे ! कहां दीप कहां प्रभा ! सर्वमे वोहि रहेने तें वाकाहि प्रकाश वाकाहि आनंदांश है. औरका है क्या ! वातें जो वाका द्रष्टा होता है वो ऐसेहि औरकों वा औरकों देखताहि नहि-सो जीव नहि होसकता है वातें " भूमा " सो जीव नहि यह तो वाका प्रसाद. "संप्रसाद"

शब्द वाके लीये है. वो तो अनुभव करनेवाला है. वो संप्रादसें " भूमा " को सुखरूपकों अधिक करके कहा है.

(भूमाधिकरणम्)

सूत्रः—भूमा संप्रसादादध्यु पदेशात् ॥ ७ ॥

अर्थ—भूमा संप्रसादतें अधिक कहेनें तें.

विवेचन—भूमाकों देखनेवाला—वो सुखसागरको अनुभव करनेवाला सर्वत्र वाकों वातें वाका एकत्व देखनेवाला; सर्वत्र जो आनंदघन है. वाका साक्षातकार करनेवाला है. वामें ऐसा लुब्ध होता है कि छांदोग्यमें वचन है कि " यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा " अथ यत्रान्यत्पश्यति अन्यत्छृणोति अन्य द्विजानाति तदल्पम् ॥

जहां अन्य करके न देखता न सुनता न जानता है वो भूमा. और जहां अन्य करके देखता, जानता, सुनता है वो अल्प है. भीतरके, अंत—तीसरे तत्व पर्यंत न पहुंचाहो वो धन, वा धनी, भूमि, वा भूमिपति, यह उभय शरीर, परमात्माके रहे पर वातें उनकों अन्य स्वतंत्र करके देखता है. वो " अल्प " सुख है. परंतु जब वामें रहा परम तत्वयुक्त उनकों देखता है—वो एककोंहि एककाहि सर्व सर्वत्र देखता है तब—वो एकतेंहि सर्व होनेतें वो एक अनंत आनंदघनहि होनेतें, फीर न औरकों चाहता है. न औरकों स्वतंत्र करके देखता है. यह—अवस्था ब्रह्मानुभव वालेकी है. वो परमानंद तत्वका वाके गुण शक्ति स्वरुप रुप पूर्वक जहां देखो वहां अनुभव कर रहे है वो आत्मवित् आत्मक्रीड आत्म रत है. वो शोककों तरता है—वाकों फीर न रोग न दुःख, वो सर्व पावता है. जो चाहता है सो होता है मीलता है

ईत्यादि वडे विस्तारतें यह भूमा (वहु)का प्रकरण वहु विस्तारतें कहा है वोहि सुख है—अन्य अल्प, दुःख है.

न धनकी परवा न धनीकी न भूमिकी न भूमिपतिकी वो जो उनकों परमात्माकाहि शरीर परमात्माकाहि वैभव देखता है वातें वाको परमात्माकाहि विचार वाकी प्रभुताकाहि विचार आवता है वो विशिष्ट देखे वा उनकों न लक्ष करके वो स्वरुप आनंदघनमेंहि खुंच जावे, डुब जावे तोभी वो वस है. अनंत है. अपूर्व है. फीर वाकों औंर जीतनें अधिकरुण शक्ति शरीर विशिष्ट देखे सो वाकोहि देखे तो औंरका क्यों लक्ष करे. औंर कहां है कोनके है ! कोनमें है ! वोहि वाहिके वाहिको लेके है यह सार है यह परमज्ञान है, परम सुखानुभव है. यह उपनिषद्का निर्णय है और वो संप्रसाद आत्मा नहि. वाकों यहां प्राणशब्दसें कहीके वाके उपर सत्य सुखभूमाकों अधिक कहा है. वातें वो जीव प्राणी नहि ठहर सकता. वो याका उपर कही रीति भोक्ता, वाकोहि देखने जाननेवाला, अन्य नहि पसंद करनेवाला ऐसा भिन्न याका भेद अधिक भयाहि, वैसाहि यह भूमाविद्यामें वडे विस्तारतें उपदेश कीया है.

सूत्र—धर्मोपपत्तेश्च ॥ ८ ॥

अर्थः—औंर धर्म घटते है.

विवेचन—यहां जो भूमाके धर्म कहे है वो परमात्मामेंहि घटते हैं. प्रत्यगात्मामें नहि. जेसे वोहि उपर नीचे चारुं दीशमें वोहि " अमृत " सो विभु परमात्माहिके धर्म है.

यह परमसुखरुप परमफल अनंत स्थीर फलरुप भूमा, वोहि हमारा यह ब्रह्मांडका नियंता, वोहि सर्वेश्वर जैसे जो इक्षते वोहि आनंदमय तैसे यहां जो यह भूमा सोहि प्रकाशिता है. वो रुप अन्य और

यह अन्य नहि. जो प्रज्ञान-आनंद अक्षरब्रह्म वोहि इश है भिन्न नहि है. एकहि आपहि जो पूर्व अंडरुपत्वादितें निराकार कहा-निर्गुण कहा वोहि.

(अक्षराधिकरणम्)

सूत्र—अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ ९ ॥

अर्थः—अक्षर अंबरके अंतकों धारनेवाला सर्व कोनमें रहे है !

विवेचन—ऐसा प्रश्न वाजसनेयीमें चला वहां फीर अक्षर शब्द आया वो प्रकृतिके मूलरुपकाभी नाम है. परंतु वहांतो आकाशका कहा के फीर आकाश कोनमें ओतप्रोत है ! ऐसा पूछा तो वो तो प्रधान ठहरे, परंतु यहां प्रश्न वातेंभी आगे अंतलों पहोंच गया. वातें अव्याकृत प्रकृति आ गइ. वाकाभी धारक करनेतें अंतधारक परमात्माहि ठहरता है. श्रष्टीदशामें तेसें प्रलयमें त्यों नियंता करके भी वोहि.

सूत्र—सा च प्रशासनात् ॥ १० ॥

अर्थः—वो प्रशासनतें.

विवेचन—वोहि अक्षरके प्रशासनमें सूर्य चंद्र दिवस रात्री इत्यादि सर्व वहांहि कहे हैं. वातें शंकाका निरसन हो जाता है. सर्वका अंतधारक वोहि प्रशासिता है. प्रलयमें भी प्रकृति और जीवोंधारक, सो वोहि प्रशासिता है.

बस वो मात्र शास्ताहि क्या. वातें फीर सर्व द्रष्टा श्रोता जो जानो सो वोहि. वा समान भी वोहि, और और जो है सोभी वाकों लेकेहि वाके विना अन्यभाव हैहि नहि.

सूत्र—अन्यभाव व्यावृत्तेश्च ॥ ११ ॥

अर्थः—अन्यभाव व्यावृत कीये है.

विवेचन—न प्राकृत भाव जामें है–न जीवगत दोष है ऐसा वहां स्पष्ट कीया है. जातें वो–अक्षर–न प्रकृति न प्रत्यगात्मा किंतु परमात्माहि ठहरता है. वाके समान वोहि है. ऐसा भाव अन्यका होहि नहि सकता–अन्यका भाव वामें नहि है वो अद्वीतियही है–प्रकरण पुरा देखे तो वो सर्वेश्वरहि सब कुछ है ऐसा सुदृढ होता है. यह सत्यका यथार्थ उपासन कीये तो साक्षातकार होता है और तब अनुभवसिद्ध होता है कि हम वाका ईक्षण करनेवाले सेवक उपासक–और वो हमारे ईक्षणका " कर्म " सेव्य स्वामी है. ऐसा कहाहि है.

(इक्षतिकर्माधिकरण)

सूत्रः—ईक्षति कर्म व्यपदेशात्सः ॥ १२ ॥

अर्थः—ईक्षतिका कर्म कहेनेतें वो है.

विवेचनः—यह अथर्वण उपनिषदमें–प्रणवकी तीनें मात्राका ॥ ॐ ॥ ऐसा उच्चार करके जो परम पुरुषका ध्यान करता है वो सूर्य मंडलद्वारा अर्चिरादि मार्गद्वारा यह बंधनकों–सर्प कंचुकीका त्याग करे वैसा–त्याग करके पापतें निर्मुक्त होता है और वाकों साम ब्रह्मलोक विष्णुके परमपदमें ले जाते है ॥ ऐसा कथन है–वहां यह प्रत्यगात्मा–वो प्रकृतितें पर जो आत्म तत्व वामें भी मुक्त नित्य उनतेंभी श्रेष्ट ऐसे उत्तम " पुरुषोत्तम " पुरुषको देखता है. वो कोन ? जो यहां हृदयमें दीखाता रहा वोहि. मुक्तावस्थामें परमपदमें जानेके पीछे भी देखनेवालेका वो द्रश्य–कर्म–वोहि है. ऐसा श्रुति कहती है. वातें वो प्रत्यगात्मातें सर्वदा भिन्न श्रेष्ट है. वहांहि " शांत अजर अमृत अभयं " आदि अनेक विशेषण सुस्पष्ट करते है. तात्पर्य जैसें बद्धोंकी स्थिति प्रवृत्ति वातें वैसे मुक्तोंकी भी गति भासी वोहि है.

जो मुक्त होवे परमपदलों यह पंचाशत-कोटी ब्रह्मांडको पार करके वाके सप्तावरणको भेद करके पहुंचे, वो परम ब्रह्मकों पावे. परंतु वहां जाइ सके कैसे! यदि वो सर्वेश्वर हमारी सहायकों यह मंडलमें न आवे-कहोकि हम यहांहि गृहण कर सके ऐसा रुप वो न बनावे! हमकों न दीखावे, तो हम प्रथम तो वो "हेहि" ऐसी प्रतीतीहि कैसें लावें! फीर न आपतें विशुद्ध बनके वहां जानेकी योग्यता मीलावे! यातें कहीचूके हेंकि वो दयासिंधु हम सर्वके भीतर प्रकाशता है-हमारे भीतरहि प्रकाश करता है. और वो वहां हि जहां हम आप अंधे बाहिके अपेक्षित भी रहे है. वो प्रदेश येहि पुरमें हृदय प्रदेश, जाका आकार कमलसा कहा गया है. वाके बीच जो "आकाश" अवकाश है-वहांहि वाका प्रकाश होता है. और वो मात्र प्रकाश नहि किंतु वामें जो विशेष-हमकों अभी अति उपयोगी गुण, जाके विचार ध्यान-अनुसंधान-सहवासतें-हमहुं वैसा बननां चाहे, बन सके, बनते हैं-वैसे गुणोंके युक्त वो सर्व वामें है. वाके स्वाभाविक गुण है वाके स्वरुपका विचार करके-वोभी वामें रहे हैं-वो ऐसे गुणवाला है. यों विचारनेका है यह ध्यान-मात्र काल वीतानेकों नहि है, किंतु येहि उपाय ब्रह्मविद्या-उपासना है. ऐसी एक विद्या छांदोग्यमें दहर विद्याके नामतें प्रसिद्ध है. "दहर" कहे तो "आकाश" वो हृदयके भीतरका अवकाशहि नहि किंतु वाके भीतर वसा हुवा दिव्य प्रकाश ज्ञानानंद-स्वरुप-और वो वाके गुणयुक्त वाकी उपासना करनां याको ढुंढनां ऐसा वहां श्रुति आज्ञा देती है. वो श्रुति यह है "अथ यदिद मस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुंडरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नंत राकाश स्तस्मिन्य दन्तस्त दन्वेष्टव्यंतद्वाव विजिज्ञासितव्यम् ॥ अध्यायके विषयानुगुण कहे तो ब्रह्मकी जिज्ञासा करनी-सो ऐसे की यहां श्रुति कहती है कि "अथ जो यह ब्रह्मपुरमें आकाश कमल गृह वाके भीतरकों

आकाश हैं—वाके भीतर जो है सो ढुढनां, वाकोहि जाननां दो वातें है. एक हृदयकमलके—भीतरका "दहर"—सो तो वोहि प्रकाश ज्ञानस्वरुप—और दुसरे वाके जो भीतर सो वाके वोहि प्रकरणमें हि के दिव्य कल्याण गुणगण,—उभयका अनुसंधान करनां—वो गुणवाले गुणीकों हमारेहि देहके भीतर हृदयकमलमें हमहि वाके गुण उपकार स्मरके प्रेमतें ध्यावे, और वहां, अंत अति आतुरता आग्रह अभ्यासतें, वाकों पावें—ग्रुझे परंतु यहां दहर शब्द है और वाका अर्थ प्रकाश क्यों समुझा जावे ? वा लीये सूत्रकार सूचना करतेहै कि

[दहराधिकरण]

सूत्रः—दहर उत्तरेभ्यः ॥ १३ ॥

अर्थः "दहर" उत्तर वाक्यतें.

विवेचन—दहर कहे तो परब्रह्म उत्तर वाक्य देखे तो स्पष्ट होगा वो वाक्य यह है "एष आत्माऽपहत पाप्मा विजरोविमृत्यु विशोको विजिघित्सोऽपिपास, सत्य काम सत्य संकल्प ऐसा निर्गुण, समस्त हेय जो पाप जरा मृत्यु शोक जीगुप्सा प्यास वातें रहित और सत्य काम—सत्य कल्याण गुणगणवाला कहा है सो भूताकाश वा अन्य कोई होहि नहि सकता है और ऐसे स्वरुपमें ऐसे दिव्यगुण है वातें वो वेसे स्वरुप गुण वालेकी उपासना करनी कही है. ओर वोहि ब्रह्मज्ञान हैं. उपासना हैं. वातेंहि वो परमपद नाथ हमकों मीले ऐसे हम वहां होहि सकते हैं—ऐसा भी येहि उत्तर वाक्योंमें कहा है. जैसे कि "अथ य इहात्मा न मनुविद्यव्रजंनत्येतांश्च सत्यान् कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु काम चारो भवति यंकाम कामयते सोस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति " तेन संपन्नो महीयते " इत्यादि कहे हैं. जाका अर्थ " अथ वह

आत्माकों अच्छा जानके जो जाते हैं (मरके जाते हैं) वो सत्य काम होते है. सर्व लोकमें उनकी यथेच्छ गति होती है. वो जो जो कामना करे सो उनके संकल्पमेंहि उनके सामने खडी हो जाती है. या करके वो युक्त होके महीमा पावते हैं. ऐसे सत्य काम सत्य संकल्पके चिंतवन ध्यान अनुसंधानतें वाका यहां साक्षातकार कर लीये और पीछे देह छोडके वाके धाममें गये तो वाके समान–सत्य काम–सत्य संकल्प होते है–फीर यह हृदयाकाश परमात्माहि है ऐसा उत्तर वाक्योंमें भी है " जीतना वडा यह आकाश उतना वडा वो हृदयके भीतरका आकाश " कहे तो भूताकाशकी उपमा हृदयके आकाशकों–वों परमात्मा समुझानेकोंहि दी गई है की वाकों उतनाहि न समझे. फीर पृथ्वीतें वडा अंतरीक्षमें सर्वतें वडा कहीके सुस्पष्ट कर दीया है. और " अस्मिन् कामाः समाहिताः " आदि वचनोंतें यामें कल्याण गुण रहे है करके गुणोंके लीये भी कहा है और वाका उपासन कीये तो वो हमारेमें भी प्रकट होते है करके कहा है. यातें दहर उत्तर वाक्यतें परब्रह्म हि सिद्ध है. हृदयमें वोहि विराजमान है. अति भी सुदृढ करते हैं.

सूत्र—गति शब्दाभ्यां तथा हि दृष्टंलिंगं च॥१४॥

अर्थः—"गतिके शब्दोंतें तैसेहि देख पडता है. और चिन्ह भी है.

विवेचन—श्रुति है कि " तद्यथा हिरण्य निधिं निहितम् क्षेत्रज्ञा-उपर्युपरि संचरंतो नविंदेयुरेवे मे वेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्यएतं ब्रह्मलोकं न विंदन्त्य नृते न हि प्रत्यूढाः" वो जेसे सोनेका खजाना गडा हुआ हो, और वाको नहि जाननेवाले खेतके लोक वाके उपर उपरतें संचार करते है. वो नहि जानते है. तैसे यह सर्व प्रजा दीन दीन वाके पास जाती है. परंतु यह " ब्रह्मलोक " को नहि जानता है.

अनृत करके ढपे हुवेतें "ब्रह्मलोक" सो येहि "दहराकाश" सर्व लोक जब सो जाते है तब वहां जाते है. और ऐसा श्रुतिमेंहि देखा है कि ब्रह्म सतके पास सर्व जीव सुषुप्तीमें जाते हैं वाके साथ लगके पडे रहते है. और पीछे नित्य उठीके बहिरमुख कहे तो बाहिर आते हैं वो विचारे कब जानने हैंकि हम ब्रह्मके पास गये रहे ! सर्व हिरण्य-निधिका भी निधि हमारे भीतर हमारेहि खेतमें गडा है !! क्यों नहि जानेते ? तब परमशांति पावते हैं. ऐसा लिंग चिन्ह तो सबके अनुभवमें है परंतु हमारा स्वरुप अभी वो देख भी पडे. ऐसा नहि है अनृत करके ढपा है. मायाका परदा है सो वो हठावे जब हठे यह भीतर आत्मामें वो है ऐसे "दर्शन" "चिन्ह" शास्त्रमें बहुत जगे है. त्यों वहां गति होती है. शुषुप्तीमें वहांहि जाते है ऐसी भी श्रुतियें बहुत है. वातें सुदृढ हैकि भीतरहि परब्रह्म है. त्यों यह प्रकरणमें–फीर याका महिमा समुझावनेकों–याकी अधिक पाहिचान करावनेकों–आगे जो वचन है वामें सर्वका धारक सर्व वाकाहि महिमा वाके महात्म्यतें है महात्म्यतें है करके कहा है वो भी स्मरण करावते है.

सूत्रः—धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ॥१५॥

अर्थः—धारक है और याका महिमा यामें पाया जाता है.

विवेचनः—"अथ य आत्मा" ऐसा दहराकाशकों कहीके वो सेतुधारक यह लोकका संकर न हो जावे वा लीये है. "ऐसा जगत-कों व्यवस्थामें रखनेको वो धारी रहा है. सब ग्रह अपनी गतिमेंहि फीरे, अटके नहि, सर्व देव मनुष्य अपनी मर्यादामें रहे ईत्यादि यह "विधृति" धृतिके विषयमें बहुत कथन है–तैसे "महिमाके लीये" एष सर्वेश्वर एष सर्व भूताधिपति एष भूतपाल ईत्यादि बहुत है. वातें दहराकाश परब्रह्महि सिद्ध है–उतनांभी क्यों.

सूत्रः—प्रसिद्धेश्च ॥ १६ ॥

अर्थ—और प्रसिद्ध है.

विवेचन—आकाश दहर शब्दहि श्रुतिमें बहुत-स्थलमें परब्रह्म-केहि लीये है. ऐसा प्रयोग कीया है कि जातें शंकाहि न रहे-वो वाका एक नामहि है. जैसे "ब्रह्म" "सत" नाम है. "आकाशतें उत्पन्न होता है" आकाश आनंद न होतो, तो कोन यह होहि सकता!" इत्यादि वातें यह सर्व, कहा है सो अपहत पाप्मत्वादि गुणवाला भूता-काश तो होहि नहि सकता. किंतु जीवभी नहि होहि सकता वो सर्वे-श्वर परब्रह्महि है. परंतु वो प्रत्यगात्माभी क्यों न हो. वा लीये अभी एक बडी शंका रहती है. वो यह है कि यह "अपहत पाप्मा विजरो" आदि जो अष्टगुण परमात्माके कहे सोहि आत्माकेभी है. बद्धावस्थामें वो तिरोभूत है मुक्तावस्थामें आविर्भाव होते है. बहुवेर कही गये है कि आत्मा परमात्मा ब्रह्म परमब्रह्म उभय तत्व एकजाति है. चेतन है. ज्ञानस्वरूप है. वेशक फीर उनमें परस्पर अणु विभु शरीर शरीरी आदि भेदभी बहुप्रकार है. परंतु जाति एक होके यह अष्टगुणवालेभी उभय है. तो फीर यहां कहा है सो "दहराकाश" प्रत्यगात्मा" क्यों न ठहरे? आपहि शंका उठाके समाधान कहते है.

सूत्र—इतरपरामर्शात्स इतिचेन्नासंभवात्॥१७॥

अर्थ—ईतरका परामर्श करनेतें है. वो है ऐसा करे तो वो ठीक नहि. असंभवीत है.

विवेचन—इतर जीव वाका यहां परामर्श है. कैसे. अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरूप संपद्य स्वेनरूपेणा-भिनिष्पद्यते "यह संप्रसाद यह शरीरतें निकलके परंज्योतिरूपको पाई-

के आपके रुपमें खुलता है " यहभी वचन है. सो वो क्यों जीवहि ब्रह्म नहि भया हों ! यह नहि संभवीत. जीव दशामें वामें अष्टगुण कहां प्रकट है ? और यह वो हृदयकमलमें रहेंमें अष्टगुण प्रकट है करकेहि कहा है. हृदयमें दोनों है. दोनोंमें अष्टगुण है. परंतु जहांका कथन है यह ब्रह्मपुरमें तो अष्टगुण प्रकाशित एकहि है, जीव कहे तो असंभवीत है. इतरका कथन संप्रसाद सो परमात्मा नहि. (परंज्योतिको) पावनेवाला सो प्राप्य ! कैसें हो सके ! हां यह ठीक है कि वो जब यह शरीरमेंतें निकलनेके पीछे वाकों पाइ जाता है तब पुरा खुलता है अष्टगुणवाला होता है ऐसा वहांहि कहा है वातें वाकोहि शरीरके भीतरहि तो अष्टगुणवालाभी समझनां ठीक नहि. जीवकों वैसा जो कहा है वोतो मुक्तावस्थाकी स्थितिके लीये है. जब वाका स्वरुप आविर्भाव होता है तब के लीये है. अभी ब्रह्मपुरमेंतो वाका तीरोभाव है. वोहि बात शंकासमाधानसें कहते है.

सूत्र—उत्तराच्चे दाविर्भूत स्वरुपस्तु ॥ १८ ॥

अर्थ—उत्तरतेंहं कहे तो आविर्भूत स्वरुपका वो तो कथन है.

विवेचन—प्रजापति वाक्यमें जीवका अपहत पाप्मत्वादिक कहा है. परंतु वहांहि वाकी जाग्रत स्वप्न सुशुप्ती अवस्था बताके फीर जब शुद्धात्मस्वरुप होगा तब वाका ऐसा स्वरुप खुलेगा करके जैसे उत्तर वाक्योंमें वो कहा है. ऐसा वहांहि संग वाका खुलासाभी कह दीया है. और वातें, जैसे संप्रसादके साथ परंज्योति तेसे यहां " उत्तम पुरुष " कहीके " वाके " साथ आनंद पावता है करके कहा है. फीर वो यह जन और यह शरीरका स्मरण फीर नहि करता है " करके जैसे ज्योतिके संग परमज्योति तैसे " पुरुष " के संग " पुरुषोत्तम " का स्पष्टतर कथन है. वातें अष्टगुणवाला उतनेंहि लक्षणतें

जीव सों परमात्मा नहि ठहरता. यातें उतनाहि युक्तितें यहां दहरा काशकों प्रत्यगात्मा ठहरावे सो नहि बनता. वो मुक्तावस्थामें भी भिन्नहि है और भिन्न रहीकेहि वो ब्रह्मलोकके आनंदकों भोगता है ऐसे वहांहि उत्तर वाक्योंमेंहि बहुत वचन है "स वा एप एतेन दिव्येन चक्षुपा मन सैतान् कामान् पश्यन् रमते य एते ब्रह्मलोके" और वो यह दिव्य चक्षु करके मनतें वो कामोंकों देखके रमता है वो यह ब्रह्मलोक है. यातें पाया जाता है कि प्राकृत चक्षुका वो व्यापार नहि. दिव्य चक्षु मनोमय सरीखे व्यापार है और उनतें पराकाष्ठा है "तं वा ए तं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेपां सर्वे च लोका आप्ताः सर्वेच कामा इति" वो देव आत्माकों उपासते हैं. यातें उनकों सर्व लोक और काम मील चुके. "परब्रह्म प्राप्तीमें सर्व फल आयहि जाते हैं. सो फल पावनेवाला उपासक आत्मा जाकों यहांसें याकों जानकें जाना है सो वो आपहि नहि होहि सकता. जीवके वो गुण पूर्व अनृततें तिरोहित रहे सो याकी उपासनातें पीछे आविर्भूत होते है. यामें फीर यह सर्व बातें और लोकपाल आदि महिमाके वाक्य मीलाये तो वो दहराकाश प्रत्यगात्मा नेहि हि संभवित ऐसा सुदृढ होता है, और वहां जीवका कथन क्यों कियां है वो भी व्यासजी समुझा देते है.

सूत्र—अन्यार्थश्च परामर्शः ॥ १९ ॥

अर्थ—अन्य अर्थके लींये कथन है.

विवेचन—यह अष्टगुण इममें भी है. वो याका उपासन कीये तो प्रकट होंगे यह समुझावनेंकों अन्यके अर्थलाभके लींये याका परामर्श है. वो येहि है ऐसा समुझावनेंकों नहि. याकों फीर अल्प अणु क्यों कहा ! ऐसी शंका उठे परंतु याका समाधान बहुत बेर कर चूके है वो संगहि कही देते है.

धर्म्य मागताः. सर्गेपि नोपजायंते प्रलयं न.व्यथंतिच " यह ज्ञा-
को आश्रय करनेतें मेरे समान धर्मवाले हो गये (बहुत) कबकोन ?
े फीर सर्गमें न जन्मते हैं. न प्रलयमें व्यथा पावते–मरते है, मुक्त
ये सो परब्रह्मके अनुकारको पाइ गये है. वातें वाका अवलंबन लेनां
। दहराकाश दिव्य कल्याण गुण हमारेहि संग हमारेहि देह पुरमें
. वो न आकाश हैं. न जीव है. ऐसा सिद्ध भया. और वातें वाका
रत्व सरीखहि परम सुलभत्व समुझा गया. जो ज्ञान हमकों खास
पयोगी है और वाकोंहि हमसें वे उपासे वा लीये वो ब्रह्मकी और वो
ई रीति अधीक पहिचान कराये जाते है. जैसे वाकों निर्गुण होके रु-
णकों सुस्थिर बहुत स्थानपे कीया है (वैसेहि) निराकार होके सा-
ारके लीये अधिक कहेते हैं की वो दहराकाश सो क्या ? आकार !
ीतनां बडा ! ज्योतिप्रकाश भी तो छोटा बडा लंबा चोडा होता है.
ीतर है. कल्याण गुणगण युक्त है. वाकी उपासना करनां यह कहा
से अब वाका आकार " अंगुष्ट मात्र " सुस्पष्ट करते हैं. ब्रह्म; वैसा
ी हैहि वेदांत साकार वो न हो तो हम कहां और ब्रह्म कहां !

सूत्र—अल्पश्रुतेरिति चेत्तदुक्तम् ॥ २० ॥

अर्थ—श्रुति अल्प कहती है–ऐसा कहे तो वो कही चुके हैं.

विवेचन—खुलासा दे चुके हैं कि केवल अन्य अर्थ वोभी है. हमारेहि उपर अनुग्रह करके हमकों यह खड्डेमेंसें स्वच्छकर निकाल उपर लेजानेकों वो अति उदार पिता यह कुपमें हमारे योग्यरुपमें होके छोटा बनके रहा देख पडता है परंतु वो उतनी कृपा हमारेहि लीये असाधारण उदारतातें करे, और हमहि वाकों वैसा निर्गुण सोहि सगुण, निराकार सोहि साकार, अपार सोहि परिमित, हमतें भिन्न, हमारा त्राता–समझके–वाका संपूर्ण श्रद्धा और कही विधिसें–प्रेमसें–उपकारसें–बलीहार जाके लाभ लेवे तबहि सब ठीक है. येहि वेदांतका घोष ब्रह्मज्ञानका सार है. जो हमको–पिता श्रम लीये तो–पुत्रकोभी जो कर्तव्य है सो बजानां, तो वो लाभ मीलेगाहि–वैसे होवेंगे.

सूत्र—अनुकृते स्तस्य च ॥ २१ ॥

अर्थ—वाका अनुकार यह है.

विवेचन—वाके समान धर्मकों धर्मी पावता है. संगका महात्म्य, है कि जोन हो–वो गुण आई जावे–तो येते हममें रहे हैं. परंतु अभी सो खो दीये हैं. अभी तो हम दहराकाशके कहे अष्ट गुणवाले नहि हैं. दहराकाशकों ऐसा मांने तो सेवे तो वो खुलेंगे. क्योंकि वाके माननें पीछे ध्यान उपासन सेवन अंत साक्षातकार भया कि अनुकृति आइ निरंजन परम साम्यता अंत याकी होती है. श्रुति सरीखहि.

सूत्र—अपि स्मर्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—स्मृति भी कहती है.

विवेचन—गीताजीमें आपहिका वचन ' इदं ज्ञान मुपाश्रित्य मम

वो विचारे क्या ? वातें व्यासजी आपका नाम धरके कहते हैं कि देवोंकोभी अधिकार है. उनके हृदयमेंभी अंगुष्ठमात्र दीखते हैं. यद्यपि वो मनुष्यके उपर है तोभी वो बद्धहि है.

देवता धिकरण.

सूत्र—तदुपर्य पि बादरायणः संभवात् ॥ २५ ॥

अर्थ—वाके उपर भी बादरायण संभव होनेते.

विवेचन—बादरायण "वचन प्रमाण" वो कहते हैं. मनुष्यके उपर जो कोटी है उनकों भी ब्रह्मविद्याका अधिकार है. वामें मुक्ति है. वो माननां संभवित है क्यों कि उनकों देह है. वो प्राकृत होनेतें उनमें वो बद्ध है- वातें छुटनेंकों उपाय करनां चाहिये तो छोडनेवाला उनपें कृपाभी क्यों न करे ? जो हमतेंभी उत्तम कर्म करके उत्तम देह पाये हैं. देह है तो हृदय है. और वामें वो उनके अंगुष्ट प्रमित है. या प्रकार वो सर्वेश्वर ब्रह्म देवोंका भी देव–देवभी वाके दास उपासक और उनकाभी मुक्ति प्रदाता है. यह अर्थात् सिद्ध हो गया. सर्व देव अणु है विभुतो वो एक, सर्व शरीर शरीरी एकहि यह नहि भूलनां.

अधिकारके दो लक्षण है " अर्थीत्व " मतलबी. सो वो है. और "सामर्थ्य " सो हममें है तो उनमें क्यों न हो ! देवोंकी देहोतेंतो उपरके लोक भरे हैं. उनके संसारी झगडोंके इतिहास पुराण भरे हैं. और यह उपनिषदमें भी इन्द्र विरोचन, ब्रह्माके पास ब्रह्मविद्या लेनेको गये. इन्द्रने सो वर्ष ब्रह्मचर्य पालन कीया. तब वो ब्रह्मविद्या पाया. ऐसी आख्यायिका है. अर्थात् बादरायणमतसो वेदमत, वेदांतका निश्चयहि है. देवोंके आकार है. क्या वो मूर्तिमें भी आवते हैं. तबहि तो यज्ञयागमें उनके यहां भाग देनेतें उनकों पहुंचते हैं.

जल अग्नि भूमी कुश पिंड आदिमें प्रवेश करके वो ग्रहण करते हैं वेद ऐसीहि क्रियाओंतें तो भरा है. और वो यद्यपि इन्द्र वरुण सूर्य

है. वो जीवभी होइ सके. वा लीये कही दीया. भूत भविष्यका नियंता वो है. वाकीं जीगुप्सा अनादर नहि करनां. ऐसा हृदय स्थानमें अंगुष्ट प्रमाणतें पुरुष सो " आकार " सदा निवास करता है. देहके साथ वो न भया है. न नाश पावेगा. " भूत " काभी हमारा नियंता और भविष्यकी भी वाके हाथ है यातें वाका अनादर नहि करनेकों श्रुति चेतावती है. और श्रुति वाकों आकाश–प्रकाश–रुप कहती है. नहि तो शरीरकों भीतरका भाग हृदय वहां अंधकारमें वो रहा तो क्या, न रहा तो क्या, कैसे दीखे ? वहां सूर्य चंद्रकी रश्मी कैसे पहुचे ? यातें फीर कहते हैं श्रुति है.

" अंगुष्ट मात्रः पुरुषो ज्योतिरिवा धूमकः " " वो अंगुष्टमात्र पुरुष वीना धुंआका ज्योति " ऐसा स्वयं प्रकाश झगमगा रहा है. वो प्राकृत पर प्रकाश नहि है. दिव्य प्रकाश स्वरुपहि वाका वो आकारभी है और वो हमारेहि लीये उतनां भया है.

सूत्र—हृद्यपेक्षयास्तु मनुष्याधिकारत्वात् ॥२५॥

अर्थ—हृदयकी अपेक्षातें मनुष्यका अधिकार होनेतें.

विवेचनः—मनुष्य देहमें कर लीये सो ध्यान उपासन बनेगा–फीर पशु देहमें नहि हो सकता है. शास्त्रमें मनुष्यकों अधिकार है. विधि-निषेध उन्हीके लीये है. यातें उनका जीतनां बडा हृदय उतनां बडारुप परमात्मा वहां दीखा देता है. यह मनुष्यकाहि देव है ऐसा नहि. देवों-काभी देव वोहि सर्वांतरात्मा " दिव्यो देवो एको नारायण है " यह प्रसंगसें समझा देते हैं कि उपासना हमकोंहि करनी चाहिये–ऐसा नहि. देवोंकोभी कर्तव्य है. वोभी करते हैं. वो पूर्ण करेंगे तबहि छुटेंगे. हमतें बडे हैं तो क्या भया ? जैसे हम पशुसें उंच योनीमें रहीके प्रकृतिमें कदी त्रिताप भोगे, वैसेहि वो हमतें उंचे,–समझो. सर्वेश्वरके पास

है. और तबहि तो वेदमें कर्मोंकी आज्ञा है. विधि मात्र तबहि सफल है. जब मूर्तिपुजा सफल है. यह निश्चय भी युक्तिसें रहस्यमें कह दीया. प्रत्यक्ष तो चले वोहि प्रकरणमें–अधिकारके वामें फीर यहां बीचमें बातमें करामात और भी कर लेते हैं. फीर प्रकरण मीला देवेंगे. अधिकारके प्रकरणतें देव आये. अब उनके प्रसंगतें "वेद" कों लावते हैं कि कर्ममें विरोध न होवे. परंतु "शब्द" "वेदमें" विरोध आवेगा–क्योंकि वेदके मंत्रोंकों पढीके वो वो देवोंकों बुलाये जाते हैं. मूर्तिमें आवाहन करना, वहां उनका भाग देनां मंत्रोंतें होता है. वामें "इन्द्र" "वरुण" नाम है. वो साकार है तो वो प्रथम पेदा भये. उनके नाम धरे जाय. पीछे उनके भाग ठहरे, तब उनके मंत्र बने, और फीर विधि ठहराई गई होगी, की वो वो विधिसें उन उनकों भाग वो वो मीले, फीर वो मंत्र विधि और फीर वातें वेसे फल मील्ते होंगे. या प्रकार वो जो बने होंगे. वेद तो अनादि केसे होहि सके? वाका समाधान है शंकाके साथ.

सूत्र—शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ २७ ॥

अर्थ—शब्द, ऐसा कहे तो नहि. यातें होनेतें प्रत्यक्ष अनुमानतें.

विवेचन—"शब्द" की नित्यतामें विरोध आवेगा? कहेतो नहि. वो देवहि यह वेदतें भये है. ऐसा प्रत्यक्ष अनुमानतें सिद्ध है. देवके पीछे मंत्रविधि अर्थ वादरुप वेद बने है ऐसा नहि है किंतु वेदतें वो देव उनके नाम कर्म विधिफल सब निकी कीये गये है. जेसे कायदा बनाये पीछे म्युनिसिपालिटी वा पोल्सि तेसे कीतने इन्द्र हो गये. और होवेंगे. वो कोइ देव विशेषके नामरुप नहि है "फोजदार" "न्यायाधिश" "सिपाहि" की नांइ वो होदेके नाम है. वाका

अग्नि प्रजापति एक एक रुप रहें पर एक कालमें हजारों स्थानमें हजारों मनुष्य होम तर्पण वैश्वदेव पुजनादि कीये तोभी वो कर्मोमें विरोध नहि आवता है. उनमें उतनां सामर्थ्य है कि एक साथ हजारों शरीरमें आपकी धर्मभूत ज्ञानरश्मीद्वारा प्रवेश करके वो भाग गृहण करले. शंकापूर्वक येहि समाधान यहां हैकि

सूत्र—विरोधः कर्मणीतिचेन्नानेक प्रति प्रपत्ते दर्शनात् ॥ २६ ॥

अर्थ—कर्ममें विरोध आवेगा ऐसा कहे तो नहि. अनेकमें रहेते हैं. ऐसा देख पडनें ते.

विवेचन—शास्त्र—वेद—वाहितें भरा है. मूर्तिपुजा कहो कि यज्ञ कहो. तर्पण कहो—वैश्व देव कहो, संध्या कहो—उपासना कहो—वेद वेदांतमें उपायहि वो विना होहि नहि सकता, वातें नहि कहा. यजन सेवन सो साकारकाहि और अभीभी इस सर्वते बने, इसकों लभ्य हो वैसे तो प्राकृत द्रव्यमेंहि इस देवोंकों सुधा—कहांसें पान करावे. इस तो घृत मधु होमें तो हद हो गइ वोहि हिसाव सव—समझ लेनां—और वैसेहि कर्म मात्र कीये जाते हैं वो एकहि देव निमित्त अनेक कर्त्ता एकहि वेर करे तो भी, वो अनेकमें प्रवेश कर सकते हैं ऐसा शास्त्र कहता है. तबहि तो सर्वकों प्रातःकालमें पुंजा तर्पण संध्या वोहि मंत्र वोहि देवोंकी कही है. वो अनेक शरीर ले सकते हैं. वा उनमें प्रवेश करके आपका भाग ले सकते हैं. आवाहन विसर्जन विधि सर्व जानते हैं. अधिक क्या कहे ! वेद वेदांत मुर्तिपुजनतें भरा है. और जीनका भाग जो प्रकारकी मूर्तिमें देनां ठहरा है वामें दीये तो उनकों वो वरावर पहुंचता है. वो वो मूर्ति आग पानी—पृथ्वी—दर्भ—पींड—पाषाण धातु कुछ भी हो. वामें वो देव प्रवेश कर सकते हैं. वो भाग गृहण करते

है. और तबहि तो वेदमें कर्मोंकी आज्ञा है. विधि मात्र तबहि सफल है. जब मूर्तिपुजा सफल है. यह निश्चय भी युक्तिसें रहस्यमें कह दीया. प्रत्यक्ष तो चले वोहि प्रकरणमें-अधिकारके वामें फीर यहां बीचमें बातमें करामात और भी कर लेते हैं. फीर प्रकरण मीला देवेंगे. अधिकारके प्रकरणतें देव आये. अब उनके प्रसंगतें "वेद" कों लावते हैं कि कर्ममें विरोध न होवे. परंतु "शब्द" "वेदमें" विरोध आवेगा-क्योंकि वेदके मंत्रोंकों पढीके वो वो देवोंकों बुलाये जाते है. मूर्तिमें आवाहन करना, वहां उनका भाग देनां मंत्रोंतें होता है. वामें "इन्द्र" "वरुण" नाम है. वो साकार है तो वो प्रथम पेदा भये. उनके नाम धरे जाय. पीछे उनके भाग ठहरे, तब उनके मंत्र बने, और फीर विधि ठहराई गई होगी, की वो वो विधिसें उन उनकों भाग वो वो मीले, फीर वो मंत्र विधि और फीर वातें "वेसे फल मीलते होंगे. या प्रकार वो जो बने होंगे. वेद तो अनादि केसे होहि सके? वाका समाधान है शंकाके साथ.

सूत्र—शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ २७ ॥

अर्थ—शब्द, ऐसा कहे तो नहि. यातें होनेतें प्रत्यक्ष अनुमानतें.

विवेचन—"शब्द" की नित्यतामें विरोध आवेगा? कहेतो नहि. वो देवहि यह वेदतें भये है. ऐसा प्रत्यक्ष अनुमानतें सिद्ध है. देवके पीछे मंत्रविधि अर्थ वादरुप वेद बने है ऐसा नहि है किंतु वेदतें वो देव उनके नाम कर्म विधिफल सब निकी कीये गये है. जेसे कायदा बनाये पीछे म्युनिसिपालिटी वा पोलिस तेसे कीतनें इन्द्र हो गये. और होवेंगे. वो कोइ देव विशेषके नामरुप नहि है "फोजदार" "न्यायाधिश" "सिपाहि" की नांइ वो होदेके नाम है. वाका

क्या वेश, क्या कर्म, क्या अधिकार, विधि, सर्व वेदमें है. जब ब्रह्मा नामका अधिकारी प्रथम श्रीहरि खडा करता है तब वाको पूर्व कल्पमें श्रष्टीके जो जो नियम रहे वो सर्व स्मरण कराते है वाकों वो याद आते हैं. जैसे हमकों पूर्वजन्म याद आये तो वामें पढे रहे शास्त्रभी स्फुरे तेसे सर्व वेद नियम. भगवान वाके स्मरणमें लाते हैं वो फीर तदनुसार देव यज्ञकर्म ठहराते हैं. जैसे समग्र वेदका स्मरण. और वाका उच्चारण स्वतः कर सके ऐसे सामर्थ्ययुक्त एक व्यक्ति सर्वेश्वर उत्पन्न कर्ता है. (अब तो फोनेग्राफ वा ग्राफोफोनभी वाकी गवाहि देवेंगे) तेसें वो फीर आपकों मीली भयी शक्तिसें आप ऐसी ऋषीयोंकी आकृति बनाता है कि जो अमुक अमुक भागके वक्ता होके औरोंको वो सुनादेवे वो वेद ऐसे तो नियमित है कि वाके ह्रस्वदीर्घमेंभी तफावत नहि. फीर आगे पीछे शब्दतो क्यों हो सके ! जैसे जब श्रष्टी होवे तब वामें सूर्य चंद्र पृथ्वी पाणी बीज रुतु भरती और ग्रहण आदि नियम एकसेंहि होते है. वैसेहि यह वो सर्व प्रकारके नियमोंके सारमें शब्दरूपें संग्रह समझो. जैसे यथा पूर्व श्रष्टी तेसेहि वेद ब्रह्मा ऋपी वाके वक्ता यह सर्व नित्य या प्रकार वेदका नित्यत्व है. अर्थात् देवतें वेद नहि, वेदतें देव बने हैं सूत्रकार कहते हैं.

सूत्र—अत एव च नित्यत्वम् ॥ २८ ॥

अर्थ—या हेतु करके वेदका नित्यत्व है.

विवेचन—और वामें कही चुकेकी ह्रस्व दीर्घका तफावत अभी भी आर्यावर्त मात्रमें हजारों वर्षतें नहि पडा. यद्यपि बोलनेवाले कई हो गये परंतु वेदके बोलनेवाले तो सांचेके नमुनेकी नांइ जब ब्रह्मा ऋपी बनाये जाते है तब पूर्व रहे वैसेहि नामरुपवाले बनाये जाते है. घट-माल–प्रवाह–संसार कहावता है सो सर्व प्रकार एकसीहि बनावट वोहि अंड चौदलोक, ब्रह्मा, इन्द्र ब्रहस्पति आदि आकृत्ति, अविरोधसें चलीहि

आती, चलीहि जाती है; जावेगी, ऐसा श्रुति स्मृतिसें सिद्ध है. येहि अर्थसूचक.

सूत्र—समान नाम रुपत्वा चावृत्तावप्य विरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च ॥ २९ ॥

अर्थ—नामरुप समान होनेतें और वैसी आवृत्तिमें विरोध नहि ऐसा श्रुति स्मृति कहती है.

विवेचन—कभी तो नहि होके नयी श्रष्टी भयी होगी ! यह कल्पनाहि, बीजांकुर न्यायतें देखोके असंभवित दीख पडेगी. हो सो प्रलयमें कही जावे ? नहितो श्रष्टीसमय कहांसें आवे ! वातें जीतनां है सो हेहि, रहेगाहि. फेरफार वो मुलतत्व रहीके उनमेंहि होता है. कही चूके हैकि ऐसा मूल–त्रिगुणी प्रकृति और असंख्य चेतनोका (उनतें अनादितें संबंध, कहोकि उनकी वासना कर्म–कहो) वो उभयका शरीरी नियंता, फीर वो वो तत्वके नियत स्वभाव–तैसे श्रष्टके नियम–यह सर्व अनादि है–मूल है. त्यों फिर अंत भी है हि नहि. काहुमेंतें नहि भया. ऐसा ठहरे वाका नाम " अनादि. " जहां फीर वो कोनमेंतें ! यह प्रश्न नहि. वो अंत " कोन !" जामें ते भया पूछते हो जो कभी न भया हो सो–वो–ऐसी विविधतावाला जो एक चित अचित विशीष्ट सर्वेश्वर सो सर्वको पाइके सर्व आपमें समाइके नीगल जाइके जो " सत " एक अद्वितीय रहता है वाको प्रलय कहेते हैं. वोहि श्रीमन्नारायण है. " यो ब्रह्माणंविदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च महिणोति " ऐसे वो आपमेंते प्रकृति निकालके वाके त्रिगुण मिश्रण करके–वामेंतें अंड, वामें ब्रह्मा बनाके–वाके स्मरणमें वेद देता है. वो फीर आगे अधिक जगत करता है सूर्य चंद्र यथा पूर्व धातानें कीये " एकसाहि सदा होया करता है यों श्रुति कहती है. श्रष्टीप्रलयवर्णन

सर्व वेद इतिहास पुराणोंमें प्रसिद्ध है वामें वो सर्व व्यवहार–वाके क-र्ताका नित्यत्व तैसे यह वाके नियम शास्त्र, कानुन–सर्वका उपयोग क्या कैसे होता है वो समुझावनेवाला ज्ञानभंडार शब्दभंडार भी नित्य है. वो भी यथाकाल यथापात्र मकट होता है. या–रीति वेदका नित्यत्व सिद्ध है मसिद्ध है. देवके मसंगतें वेदका नित्यत्व सिद्ध कीया. अब वाके मसंगसे वेदांतमें कही मधुविद्या. जामें देवकीहि उ-पासना है. सो आपकी उपासना आप कैसे और क्यों करे ! ऐसा विचार लाइके मथम जैमीनि स्वामीका मत कहते हैं कि.

मध्वाधिकरणम्.

सूत्र—मध्वादिष्व संभवात् अनधिकारं जैमिनिः ॥ ३० ॥

अर्थ—मधु आदिमें असंभव होनेतें अधिकार नहि ऐसा जै-मिनीका मत है.

विवेचन—वो उपासनातें जो बने सो देव–सो तो आप हैहि. और वातें जो उपासना करनेकी सोभी वोहि वसु–आदि देवोंकि. सो आपकी आप करे–यह असंभवित समझाके जैमिनिनें मांनाकि वो वि-द्यामें उनका अधिकार नहि होगा. वो ऐसा तो मानते रहे कि देवोंको भी उपासना करनी चाहिये. परंतु वो साक्षात ब्रह्मकी करनी–उनकों वो संभवित है.

सूत्र—ज्योतिषि भावाच्च ॥ ३१ ॥

अर्थ—ज्योतिषमें भाव होनेतें

विवेचन—"च" करके मथमके जैमिनि मतकीही पुष्टीका यह सूत्र

है श्रुतिमें कहा है "तंदेवा ज्योतिषां ज्योतिरायु र्होपासतेअमृत्तम्" ज्योतियोंका जो ज्योति आयु अमृत है-वाकी उपासना देव करते है. वा तें वसुआदिकों मधुविद्यामें अधिकार नहि है. आप स्वमत, विरुद्ध प्रकट करते हैं. जो संमत होता तो चले जाते-अधिक न बोलते.

सूत्र—भावंतु बादरायणोऽस्तिहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—भावहि बादरायण कहते हैं-और है हि.

विवेचन—अभाव नहि ऐसा बादरायण मत और अधिकार है हि. यह ठीक भी है. क्योंकि वो सकाम भावतें कीये तो जैसे यह जन्ममें है वैसे फीरभी वसु होवे. कर्मविना फिर जन्ममें देवत्व भी कहां ! और ब्रह्मदृष्टीतें कीये तो " यज्ञार्थ कर्म " जैसे संसारीकों आपका गृह कर्म आपकी मुक्ति हेतु भी सेवा समझके कीये तो होता है, वैसेहि ब्रह्मभावनातें कीये तो बनता है. तात्पर्य देवोंकों भी उपासना करनी चाहिए.

मनुष्यके उपर देवोंकों सही, और नीचे पशु आदिकों नहि. उतनांहि अधिकार विषयमें है कि कुछ और विशेष भी है ! क्यों होवे. अर्थीत्व और सामर्थ्य, दो अधिकारीके लक्षण है. सो तो सर्वकों छुटनेका भाव और उनमें प्रभुका प्रभाव हो तो फीर शंका कहां ? है. वो बडा प्रश्न है. वो मनुष्योंमेंहि है. शूद्रके लीये यामें अधिकार नहि है तो भी पश्चिम देश मात्र और यह देशमें भी सब जातिवाले त्यों कोइ स्त्रीये भी वेदांती बनके बैठते हैं. वो वोहि शास्त्रविरुद्ध है. और शास्त्र विरुद्धाचरणका फल जो हो सो वाका भि परिणाम वैसाहि होनां चाहिये. कहेते सुनते आवनां एक बात है, और विद्या सफल होनां दुसरी बात है. " शास्त्रयोनी " शब्दहि प्रमाण है वाके विरुद्ध युक्ति तर्क नहि. सो तर्क भी यहां करके वेदका वचन दीखाके व्यासजी निर्णय देते हैं. और या प्रकरणमें सर्व आचार्य एकमत है. सो मा-

ननांहि चाहिये-शास्त्रकों माने, और वामें हमारेहि लीये कहा हो सो न मांने तो हम शास्त्रकों नहि मानते हैं ठहरा, उतनांहि जो वातकी वो नाहि कहे सोहि हम करे तो फीर यदि शास्त्रमें वल है तो फल क्या ! नहि वल है तो फल क्या ! वो भी छांदोग्यमें प्रकरण है कि एक वडा दानी राजा लोकोपकारके कृत्य वहुत करता रहा. परंतु ब्रह्म-विद्या नहि जानता रहा वातें एकनें वाके पुण्यके तेजकों तुच्छ कहा. रैक्व नाम जो " ब्रह्मवित् " रहा. वाको धन्य कहा वो वात सुनने के उपरतें वो राजानें रैक्वकी शोध की. वाका पत्ता मीला. आप वहुत भेट लेके वाके पास गया. तोभी वो वस न समझके, अथवा वाका ब्रह्म-विद्या मतिका भाव समझनेको वाको फेर दीया. वो शोक पाके, घर जाके, वहुत द्रव्य, अपनी पुत्री, और, ग्रामका दान देनेको तैयार होके शोकग्रस्तहि फीरभी गुरु पास आया; तव वाको वो रैक्व गुरुनें "आज हारे मा. शूद्र. " आओ लाओ " शोकग्रस्त " "शूद्र" शब्दका वोभी अर्थ है. वातें वो विशेषणतें वाको वुलाके, वाकी भेटका स्विकार करके वाको ब्रह्मविद्याका उपदेश दीया; ऐसी आख्यायिका है. वो प्रसंगके वचनोंमितें भी " शूद्र " इतनां शब्द पकडके कही सके; पूर्व पक्ष कर सके, की वेदांतमें शूद्रकोंभी ब्रह्मविद्याका उपदेश कीया ऐसा दृष्टांत है करके यह वात कहे तो, वो ठीक नहि. ऐसा समाधान कर-नेकों यह प्रसंग उठाया है. प्रथम सूत्र.

अपशूद्राधिकरणम्.

सूत्र—" शुगस्य तदनादर श्रवणा त्तदाद्रव-णात् सूच्यतेहि " ॥ ३३ ॥

अर्थ—शूद्रका वो अनादर श्रवण होनेतें फीर दोडके जानेतें वो शोक करनां हैहि.

विवेचन—वो शूद्र करके जाको बुलाया वो शूद्र नहि रहा वाका आदर नहि भया वातें वो शोक पाया रहा. वो फीर दोडके शरण गया. तब वो सूचन कीया है. अर्थात् वो शूद्र नहि रहा. जैसा शूद्र विशेषण है तैसे औरभी वहां लक्षण है. जातें

सूत्र—"क्षत्रियत्वा वगतेश्च" ॥ ३४ ॥

अर्थः—क्षत्रियत्व मालुम हो सकता है.

विवेचन—वहांहि वहु दान देनेवाला वडा राजा ऐसा चिन्ह है. दातार और ग्रामपति शूद्र नहि हो सकता रहा. फीर और जगे वाका नाम है. वातें जैसे यह कामसे, तेसे वो नामसेंभी स्पष्ट होता है.

सूत्र—उत्तरत्र चैत्ररथेन लिंगात् ॥ ३५ ॥

अर्थ—यहां आगे चैत्ररथ करके चिन्ह होनेंतें.

विवेचन—वो चैत्ररथ नाम क्षत्रिका होता है. और वोहि यह रहा. ब्रह्मवेत्ता भया ऐसा प्रसंगभी है. तात्पर्यकी शूद्रको अधिकार नहि. वाका हेतु कहते हें वो अधिकार होनेमें एक शरत है. वो प्रवल प्रतिबंध जाति सिद्ध है. अमुक योग्यता रहे तो अमुक परीक्षामें प्रवेश और वामें अमुक योग्यता मीलाये तो वो अधिकार जैसे लोर्ड, गव्हर-नर, जड्ज आदि कालों गोरोंके दरज्जे. और वोभी परीक्षा पासके पीछे. परंतु परीक्षामें प्रवेशहि "गोरोंका." केडे टकोरमें–राजकुमार, कोलेजमें "राजपुत्र" का. प्रथम जातितें योग्यता; पीछे संस्कार; पीछे अध्ययनका अधिकार; द्विजाति–उपनयन संस्कार करनेके योग्य जन्मतें हो. और उनकों वो संस्कार हो. तब वो वेद पढ सके वया; सुनहि सके! सुने पीछे पढे. और वा पीछेहि अर्थज्ञान; पीछे तत्व-ज्ञान–यह शास्त्रका निर्णय है. और शूद्र स्रीयोंकों वो संस्कारकी जाती-

सेंहि योग्यता नहि उनकी वनावट एसी नहि जो उनकों वा संस्कार करे. जैसे पाषाण, हीरा, रजत, सोनां; उनके भिन्न संस्कार. वैसे मनुष्यमेंभी जातिकी परीक्षाकी जाती है. कुजाति अकुलीनता स्पष्ट अपनी बोलाती है. वो पश्चिमकी प्रजाभी प्रकारांतर मानती है. अनुष्ठान करती है. तापरभी यह विषय अब मर्यादा जो नहि रखते हैं सो उन्हींकों अंत विचारनेका है हमारा यह नियम शूद्रादि संस्कृत पढी पढाने लगे वहां पर्यंत अस्खलित सकल आर्यावर्तमें चला आया. यह प्रबल रुढ वहीवट है. शूद्र आपहि अनधिकार मानके वैसा काम कीये तो आपकोंहि हांनी समझते रहे. जो पात्रमें जो नहि भरनां-धरनां वो भरे धरे तो पात्रकोंहि हानी. सर्व जाति सर्व ग्रहण कीये तो भी परिणाम अनुचित संयोगका अनुचितहि होता है. उतनां कहीके सूत्र पूरे करे.

सूत्र—संस्कार परामर्शा त्तद भावा मिलापाच्च ३६

अर्थ—संस्कारका कथन है. वो न हो वहां नहि कहेनां ऐसा है.

विवेचन—वेद कहेनेको उपनयनसंस्कार पूर्व चाहीये. वो नहि भये वहांलों आपके पुत्रकों भी नहिंहि कहेते हैं. वैसा वेदांतमें दृष्टांत है. ब्राह्मणका पुत्र गोत्रकुल नहि जानता रहा. परंतु माताका नाम लेके गुरु पास गया. वानें देखा मांनाकि जाति ब्राह्मण है. संस्कार नहि भये रहे. वो करके फीर वेदवेदांत कहा.

सूत्र—तदभाव निर्धारणेत्व च प्रवृत्तेः ॥ ३७ ॥

अर्थ—याका अभाव नीकी करके फीर कहा.

विवेचन—प्रवृत्ति भयी कि अन्यजाति नहि शुद्र नहि ब्राह्मण है. संस्कारकाहि अभाव है तब कहाकि "जा समिध ले आ." करके संस्कार कीये. और अर्थ वेदके साथ दीये. प्रवृत्ति भयी वेदांत कहा.

अनधिकारीकों वो सुनानां पढानां नहि ऐसी मनाइभी है; निषेधभी है. ऐसी आज्ञा है. अर्थात् कहे सुने तो लाभ फल नहि; उतना नहि, और हानी है.

सूत्र—श्रवणाऽध्ययनाऽर्थ प्रतिषेधात् ॥ ३८ ॥

अर्थः—श्रवण अध्ययन अर्थका प्रतिषेध होनेंसे.

विवेचन—शूद्रको अधिकार नहि है.

सूत्र—स्मृतेश्च ॥ ३९ ॥

अर्थ—ऐसेहि स्मृति है, व्यासजी स्वमतकों बहु प्रकार स्पष्ट कर गये है.

विवेचन—अब हमारी हम जानें. शास्त्र सत्य है तो विधि निषेध अधिकार फल सर्व सत्य है. जो हमकों तरनेसेंहि काम हो तो शूद्रको तरनेका उपाय अति सुगम सर्वकों सुगम वेदांत श्रवण मननकाहि परिणाम जो अनन्य भक्ति " स्ववर्णाश्रमोचित कर्म सेवनरुप करके वा द्वारा ज्ञान प्रीति बढाके " शरणागति " जगविदित है वामें सब लगेहि है. फीर वो छोडके यह अनधिकारमें मुंडमारनी जीनकों रुचती है वो शास्त्र ठीक नहि समझे है. न उनकों ठीक समुझाये गये है. उन्हींके लीये वोहि वेदान्त सुगम गीतारुप होहि गया है. फीरभी " वेदांती " कहावनेकों—श्रुति सूत्रहि पढे है कहावनेका मोह सो अज्ञानहि है इति. बाकी आज्ञाका पालन करनेमेंहि कल्यान है. तबहितो कहाकि मनुष्य वया देवभी ब्रह्मविद्या—उपासना करतें है. और वाकाहि अंग स्वधर्म कर्मानुष्ठान वोभी कैसा करतें है! सोहि यहां कहते है कि जैसे वज्र शीरपें ऊठा भया हो जो अमोघ है. गीरे तो शीर फोडेहिः और वाके भयतें कोइ काम कीया करे ऐसे श्रुति कहती है.

" अग्नि सूर्य चंद्र वायु मृत्यु वाके भयतें वो प्रकार अपना काम कर रहे हैं. वाते कंप रहे हैं. "

प्रमिताधिकरणशेषः ।

सूत्र—" कंपनात् " ॥ ४० ॥

अर्थ—" कंपन तें "

विवेचन—वो अंगुष्ठमात्र परब्रह्महि देवोंका भी देव इशान पूर्ण ब्रह्महि है. और ऐसा फीर प्रसंग मीला दीयाकि जीनकों अधिकार है वो विद्या उपासते हैं. जो जानते मानते हैं कि स्वामी भीतरहि देख रहा है वाते वो कंपतेहि रहेते हैं. वाको पावनेवाला अनंत परब्रह्म जीव नहि है.

सूत्र—ज्योति दर्शनात् ॥ ४१ ॥

अर्थ—ज्योतिः देखनेतें.

विवेचन—सूर्य चंद्र अग्नि विद्युत क्या वाको प्रकाश करें "तस्य भासा सर्व मिदं विभाति " ॥ वाके प्रकाशतें यह सर्व प्रकाशता है. ऐसा सर्व ज्योतिका ज्योति " परं ज्योति " वाकों ठोर ठोर कहा वोहि अंगुष्ठमात्र अणुमक ज्योति है. साकार, छोटा उपास्य, सो वोहि है. ऐसा अंत निर्णय करते हैं. क्योंकि वाहिकों फीर श्रुतिमें बडेतें बडा सर्वका धारक आकाश कहा है. पाहिले दहराकाश वाको कहिके वहां जैसे यो नामतें अणुत्वमें नहि भूलनां करके समुझाया है तैसे छांदोग्यमें " आकाशो ह वै नाम रुप योर्निर्वहिता ते यदंतरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा." ऐसे नाम रुपका निर्वाहक जो भीतर है वो ब्रह्म वो अमृत कहा है. सो यह भूत आकाश नहि समझनां. ऐसा यह अणु आकाशके साथ वाकोहि विभु आकाश सबके भीतर रहा सोहि सबकों धारके रहा है ऐसा वाकी प्रभुताका भी भान करावते भये बीचमें प्रकरणमें प्रकट दोनों शंकाका निरसन करने भी करदेते हैं.

अर्थान्तर त्वाधि करणम् ।

सूत्र—आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात्॥४२॥

अर्थ—आकाश अन्य अर्थत्वके होनेतें कथन करनेतें.

विवेचन—आकाशकेहि कामको लेके यहां आकाश शब्द नाहि प्रयोग कीया. " नाम रुपका निर्वाहक जो सर्वके भीतर जो अमृत जो ब्रह्म वाके लीये व्यपदेश है. वातें यह—परब्रह्म है. मुक्त जाको पाते हैं वाका यहांहि पीछे प्रकरणभी है, सो बीचारा भूताकाश तो क्या—बद्ध वा नित्यभी सर्वके निर्वाहक कैसे होई सके. मुक्त और बद्ध वातें भिन्न-हि है. कोईभी अवस्थामें वो वाके साथ मील गये, एक हो गये, ऐसे वचन आये तोभी जो भीन्न है सो भिन्न है. वो परब्रह्म न ठहरेंगे. जैसे मुक्तकी तो हम क्यों बुझे. परंतु सर्वके अनुभवमें आती शुषुप्तीकी वीचारे ! श्रुति कहती है " सतके संपन्न होता है. " स्वमे लय होता है सो क्या कोन ?

बद्ध जीव और श्रुति स्पष्ट कहती है. यह अज्ञ वो माज्ञके साथ आलिं-गीत होइके तब रहता है. फीर जो ब्रह्मकों मीले वो ब्रह्म हो जावे. तो फीर उठता कोन है ! अनुभवसिद्ध वार्ता है कि जो वो अवस्था पाया रहा सोहि जो दुःखी जीव शुशुप्तीमें वाकों पाया वोहि जागृत भया समुझा गया कि वो न सतब्रह्म रहा न भया. वो विचारा वाके परतंत्र है.

सूत्र—सुषुप्त्युत्क्रांत्यो र्भेदेन ॥ ४३ ॥

अर्थ—शुषुप्ती और उठनेके भेद करके.

विवेचन—पाया गयाकि जीव जीव और ब्रह्म ब्रह्महि मीलके अनृत रहनेतें पीछा आये तो क्या ? और विशुद्ध होके वाके साथ जा मीलनेतें पीछा न आये तोभी क्या ? शेप शेषी, माल मालीक, धन-

धनी, इश्वर प्रजा, कभी एक न रहे न हो सकते है. ऐसा वेदांतका इशावास्यसंहि घोष है. यहांभी पादपूर्तीमें अंत

सूत्र—पत्यादि शब्देभ्यः ॥ ४४ ॥

अर्थ—पति आदि शब्द करके.

विवेचन—प्रत्यगात्मा परमात्माका स्वामी सेवकभावहि सदा समझनां करके कहा है. शरीर सो शरीरी केसे हो सकता है! हजारों वचन " सर्वस्य अधिपति सर्वस्येशान सर्वस्य, वशी एष सर्वेश्वर एष भूताधिपति एष भूतपालः " वैसाहि वाका पतित्व कहे जाते हैं. वाहीके लीये यजन दान तप सर्व करते हैं. उपासनाभी वाके हि लीये वो करनेको सामानभी वाकाहि वाकेहिं वशमें सर्व चित अचितमात्र है. उनके स्वरुपस्थीति और प्रवृतिभी वाकेहि वशमें है. या प्रकार सर्व वाकेहि शरीर है. वोहि शरीरी सर्व विशिष्ट सर्वावस्थामें सर्व है. यह जगत हम तुम,- सूर्य चंद्र, देव, पृथ्वी, आकाश क्या है. वाके साथ ब्रह्मकों क्या संबंध है. वो सर्व ब्रह्म क्यों कहे जाते है? याप्रकार ब्रह्मका उंचा ज्ञान सो यह है. वेदांतमें ब्रह्मकाज्ञान-ब्रह्मकों कैसा समुझनां सो या प्रकार है. अंतके सूत्रकों हम खूब याद रखें. यह पादहि हमकों बडा उपयोगी है, हम कंगाल जीवका ब्रह्म सर्वप्रकार स्वामी है यों सुस्पष्ट समुझावता है. यहांलों जोजो कहा वो सर्वहि हमकों अति उपयोगी है. बेर बेर वो समझके याद रखके वर्तन कीये तो जीवन सफल है. शंकाओंके समाधानपूर्वक जो ठहरता है वोहि बस है. मुख्य विषय आयहि गये है. अत्र शंका समाधानादिका प्रसंग अधिक रहेगा. और वार्तेभी जो जगतकारणका ज्ञान है वो सुदृढ होगा.

—यहां तृतीयपादका इति—

प्रथम अध्याय चतुर्थपाद.

ब्रह्मका स्वरुप समुझावनेकों प्रथम अध्याय है. वामें अंत यहभी समुझायाकि सर्व देव समान ब्रह्म नहि; वो अंतर्यामी अमृत श्रीमन्नारायण जो सर्वके हृदयमें अंगुष्टमात्र पुरुषरूपतें बीराजता है; वो ब्रह्मादि देवोंकाभी देव; देवमात्र तो हमारेहि सरीख अणुबद्ध है. और वो तो अनंत विभु है, देवका शरीर कहां! और वाका शरीर कहां! वाका असंख्य शरीर है, जामें एकमेंहि यह चेतनमात्र और अचेतन सर्व आइजाता है. यह सर्व वाके शरीर सर्वथा है. जगत वाका एक प्रकार शरीर है. और वाकी प्रल्यावस्थाभी वाकाहि शरीर अर्थात् स्वतंत्र कोइ वस्तुहि नहि. देव वा मनुष्यतो ठीक. परंतु आकाश पाताल क्या पृथ्वी मूलप्रकृतिभी स्वतंत्र नहि. वाका शरीर करकेहि सदा है. जीवोंके लीये खूब कही चूके. परंतु कीतनीक श्रुतियोंतें प्रकृति स्वतंत्र उपादान कारण दीखे ऐसा होनेतें वाका अवलंबन लेके सांख्यमतानुयायी आपके सिद्धांतको वेदांत प्रतिपाद्य ठहरानेका अवकाश लेते हैं. परंतु जगतकारण तो ऐकहि और वो चित अचित विशिष्ट परब्रह्महि है. वा विना स्वतंत्र एकभी तत्व नहि, न उपादान-कारण है येहि वेदांतका अर्थ है. वातें प्रकृति स्वतंत्र अब्रह्मात्मक तत्व है. ऐसा सांख्यका कथन वेदांतानुकुल्य होहि नहि सकता. फीरभी वो जो वचन दीखाते हैं वो प्रकरणतेंहि आरंभ करते हैं; और सिद्ध करते हैं कि हम जो समुझे हैं सोहि, वैसाहि ऐकहि जगतकारण ठीक है. यह और सुदृढ करते हैं. क्योंकि जीतनी अगत्य और देव स्वतंत्र नहि. यह समझनेकी, उतनीहि कोइ तत्वका स्वरुपभी स्वतंत्र नहि. जो है सो ब्रह्म विशिष्टहि है. वाका शरीर करकेहि है. यह समुझनां भी आवश्यक है. तबहि "यह सर्व ब्रह्म" ठहरे—कही सके; नानात्व न रहे.....

एकत्व देख सके. मैं ब्रह्म, तुम ब्रह्म; यह सर्व वाक्य ठीक लगसके. अभीलों भी जीव वा प्रकृति एकभी स्वतंत्र नहि. न वो स्वतंत्र जगत कारण है. येहि तो पूर्वपक्ष है. और वाके खंडनमें सूत्र चले आये हैं. अब यहां फीर शास्त्रमतकों अनुकुल दीखं पडतें वचनोंका संदेह निवृत्त करते हैं.

कठवल्लीमें यमके पास नचिकेता नामका एक ब्राह्मणपुत्र पहुंचा. वानें तीन वर भीखाके वातें वानें तीन प्रश्न यमकों पूंछे. वाके उत्तरमें वो जो उपदेश पाया वो प्रकरणमें एक स्थानमें तीनों तत्वकों ठीक समुझाइके हमकों संसारतें कैसे पार विश्नुके परमपदमें जानां वा लीये एक रुपक कहा है. शरीर रथ, और आत्मा रथी, मन लगाम, बुद्धि सारथी; इन्द्रीयें अश्व; विषय उनका खुराक–ललचावनेवाला; वाके वश हमकों होजाने देके आप वाके खींचे गये पीछे पीछेहि रथ साथ गये तो वोहि खेत खड्डेमें पडेंगे. परंतु उनकों वश रखके जहां जानेकों रथ मीला है. वहां जानेका पथ वातेंहि काटें तो विश्नुके वो परम पदमें संसारमार्ग काटके पार पहुंच जावे " परंतु वामें सावधानी रखनी आवश्यक है. हय वश, विषय वश, मन वश, शरीर वश. अभीलों हम उनके वशमें रहेते है. सो सर्वको अब हमारे वश करने रखने चाहिए, उत्तरोत्तर वश करता प्रबल है. सबमें अंत परमात्मा है. वातें फीर पराकाष्ठा है. सत्यफल वो परमपुरुषके वश है. सर्वतें वो प्रबल है. यहां "पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परागतिः " ॥ ऐसा वचन है. पुरुषतें पर कोइ नहि. वो पराकाष्ठा वो परम गति है. परंतु वाकों वश करनेंकों हमकों शरीर वश होनां; संसार तीरनेंकों " नाव " सर्वत्र वाकों कहते है. जैसे यहां वाकों–मार्ग काटनां कहे तो रथ कहा है. वा लीये "अव्यक्त" शब्द धरा है. और परमात्माके लीये " पुरुष " शब्द धरा है. वातें शंकाकों अवकाश है. सांख्यके दो तत्व; वामें प्रकृत्तिका नाम " अ-

व्यक्त; " और वाके पीछेहि " पुरुष " कहीके फीर " वातें बढके नहि " कहे तो सांख्यमें कही प्रकृतिकों पुरुषके संग कही ऐसा दीखें और वातें यह वेदांतकी कठ शाखामें " अनुमान " " प्रधान " का कथन सांख्यमतानुसार है. तातें वो मतानुसार सिद्धांत वेदांतकीहि एक शाखा करकेंहि प्रतिपाद्य है. ऐसा उतनें वचनतें कही सके. परंतु जब प्रकरण पूरा देखें तो समुझा जाय कि यह तो शरीरका रुपक बांधके वो पद धरा गया है. और वैसो वाकों दरसाइ है. तब फीर शंका नहि ठहरती. और वोहि तीन तत्व है वोहि प्रकृति ब्रह्मात्मक है. यह सर्व स्फुट हो जाता है. याका साररुप सूत्र है कि.

आनुमानिकाधिकरणम् ।

सूत्र—आनुमानिक मप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपक विन्यस्त गृहीते र्दर्शयति ॥ १ ॥

अर्थ—एकमें अनुमान कहे, ऐसा नहि; शरीर रुपक धरके गृहणकी है—और दीखाते हैं.

विवेचन—एक कहे तो एक शाखामें आनुमानिक " प्रधान " जो अव्यक्त शब्द है वाकों स्वतंत्र प्रकृति समझके कहते हैं कि, वाकों कारण कहा है कि जगतका कारण प्रकृति है—जैसे सांख्य कहते हैं, वैसा नहि है. यहां अव्यक्त शब्दसें अब्रह्मात्मक प्रधान नहि कहा—शरीररुपक याका धरके गृहण की है—वो अव्यक्त शब्द तो रुपक है. वामें शरीरके लीये धरा गया है. और वा लीये लीया है. ऐसा प्रकरणमें दीखाया है. सर्व पुरा रुपक रथ रथी सारथी आदि देखलेनां. अभी शंका रहेगीकी शरीर स्थानिय रहे तो " अव्यक्त " नाम क्यों ? वाका उत्तर.

सूत्र—सूक्ष्मंतु तदर्हत्वात् ॥ २ ॥

अर्थ—सूक्ष्मकों वो योग्यता होनेतें.

विवेचन—वो अव्यक्तमें शरीररुपक वननेकी योग्यता है. वो शरीरकाहि सूक्ष्मरुप है. वो पुरुषके अर्थहि शरीररुप वनती है. वाका मूल अव्यक्त है. तव तो फीर प्रश्न उठाकि वोहि कारण स्वतंत्र प्रकृति नहि उत्तर

सूत्र—तदधीन त्वादर्थवत् ॥ ३ ॥

अर्थ—वाके अधीन होने तें अर्थवत् है.

विवेचन—वो स्वतंत्र अव्यक्त हो तो वैसीहि वनी रहे. फीर वामें-तें क्षोभ होके चोवीश प्रकार क्यों वने? जो वने है तो वैसे वनेहि रहे. फीर "अव्यक्त" क्यों हो जावे? अर्थात् वामें फेरफार होया करता है. येहितो कहा है कि "अव्यक्तहि शरीर भयी है तो क्या ऐसी उत्तम कारीगरीका नमुना शरीररुप जो भयी सो वो आपतें भयी! या कहीं वैठके कुंभकार मृत्तिकाका घट वनावे वैसें इश्वरनें वामेंतें जगत वनाया! शरीररुप वनाया? नहि वामेंहि आप रहा है. वाका स्वरुपहि ब्रह्मात्मक वाकी स्थितिहि वाके अधीन है. और तवहि वो औरके "अर्थवाली" "उपयोगी." वो भी है वैसी होहि सकती है. अर्थात् वो स्वतंत्र नहि. प्रलयमें तो वो परमात्मामेंहि लय हो जाती है. भिन्न भी तो कहां रहती है! जो रहता है सो वोहि एसा श्रुति कहती है. फीर पुरुषतें पर, भिन्न, स्वतंत्र तत्व, प्रलयमें अव्यक्तकारण है ऐसा श्रुतियोंतें तो कभी नहि "सिद्ध" हो सके. येहि प्रकरणकी अनेक श्रुतिका विरोध आवता है. फीर उन सांख्यकी प्रक्रियातें देखेतो वाको ज्ञेय कही है और यहां सूत्रकार ध्यान खींचते है कि देखो वो प्रक्रिया होती तो श्रुतिका वैसा वचनभी होता. आवश्यक वार्त्ता सर्व वना नहि रहेते सो.

सूत्र—ज्ञेयत्वा ऽवचना च ॥ ४ ॥

अर्थ–ज्ञेयत्व वचन नहि होनेतें.

विवेचन—" च " यह और हेतु ज्ञेयत्वका वहां कोइ वचन नहि. वाका तो और हेयत्व कहा है कि वामेंतें भागनां और परमपद पहोंच-जानां. ज्ञेयत्व तो परम पुरुषका कहा है.

सूत्र—वदतीतिचेन्नप्राज्ञो हि प्रकरणात् ॥ ५ ॥

अर्थ—" कहते हैं " ऐसा कहे तो–नहि–प्राज्ञहि–प्रकरणतें.

विवेचन—" अशब्दमस्पर्शम् " ऐसा उपक्रम करके " " महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते " एसा प्रधानका ज्ञेयत्व श्रुति पीछेहि कहती है, ऐसा कहे तो वैसा नहि हैं. " अशब्दमस्पर्शम् " इत्यादि करके प्राज्ञ परम पुरुषहि है. ऐसा यहां कहते हैं " सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् " " एष सर्वेषु भूतेषु गुढोत्मा न प्रकाशते " ऐसा प्राज्ञकाहि प्रकरण है. और प्रकरण देखे तो नचि-केता शिष्यनें गुरु यम महाराजतें तीन वावतकाहि उपन्यास कीया है आत्मा जो प्रापक. है, परमात्मा प्राप्य और वाको पावनेका उपाय–तीन पदमें तीन मुख्य प्रश्न है; तो वैसेहि प्रश्नानुगुणहि तो उत्तरभी होनेहि चाहिये. वहां प्रकृतिका प्रकरणहि नहि–येहि कहा है कि.

सूत्र—त्रयाणामेव चैव मुपन्यासः प्रश्नश्च ॥६॥

अर्थ—तीनोंकाहि उपन्यास है और प्रश्न है.

विवेचन—जैसे प्रश्न वैसा उपन्यास–वोहि कथन याके भीतरभी यहां सांख्य - प्रक्रियाकी तो गंधभी नहि. प्रत्यगात्मा जो एक तत्त्व है वो परमात्मा जो वातें उत्तम तत्त्व है वाकों उपाय कीये तो अंत वो

कृपा करे, वरे, तव वाकों मीलेगा. यह विषयहि वो सब प्रकरण है. पावनेवाला पावनेका और उपाय, ब्रह्म, जीज्ञासा करनेवाला-और जीज्ञासा केसे करनां, अथवा तत्वहित और पुरुषार्थ-अथवा चार अध्याय वा चतुःसूत्रीका क्रमहि वहां है. वो तीन वातेंहि है. सांख्यका तो वहां और विरोध है. सांख्यसें काम बनता तो वेदांत होता क्यों! वामें कीतनांक सत्यांश हैं. और वैसा वेदमें जहां देखे वहांके वचनतें आपकेहि सिद्धांतकों ठहराने जाते हैं. कहोकि शंका ऊठती है कि यहां तो वेदांतमेंभी सांख्य मतहि हैं. वैसी शंकामेंतें एकका निराकरण यहां कीया है. और अंत एक दृष्टांत वामेंतें देदीया है कि.

सूत्र—महद्वश्च ॥ ७ ॥

अर्थ—महतके-सरीखा.

विवेचन—जैसे यहांहि आत्माकों महत कहा है. सो महतमें रहा आत्मा तेसे अव्यक्त सो वामें रहा परमात्मा विशिष्ठ-वेदांतमें तो "अनंत" पद आ गया. वातें ब्रह्मविना कोई कहीं कभी देशकाल वस्तु होहि नहि सकती; यह भूलनांहि नहि.

त्यों यहभी संगहि समझनां कि सर्व ब्रह्म है. ब्रह्म भया है तो क्या आपहि विकार पाईके प्रकृति भी भया, जीवभी भया ? वो क्या जैसे प्रकृतिके चोविश विकार वैसे ब्रह्मके हैं! नहि-ब्रह्मतत्व भिन्न प्रकारका, प्रकृति भिन्न प्रकारकी; वो भी एक मूल वस्तु है. वो अनादि त्रिगुणवाली, वामें विकार कीये तो क्रमसें चोवीश रुप पावनेवाली उनका नाश कीये तो फीर अंत वो त्रिगुण साम्य होगये तो फीर आगे नाश नहि पावनेवाली. ऐसा एक कभी न उत्पन्न भया न नाश पावेगा ऐसा तत्व है हि. वाहिके क्रमशः विकारतें 'यह सब जगतके " भोग भोगोके उपकरण और भोगस्थान " ब्रह्मातें लेके चेटीके

देह–और लोक आदि बनते वामेंते निकलके वामें लय होते हैं. वामें तकरार यह हैकि सांख्य वाका यह सर्व होनेंते वोभी एक स्वतंत्र तत्व समुझता है. वेदांत कहेताहै वो परमात्माका शरीर है करकेहि तत्वरुप है. और रहेता है वो वस्तुहि ब्रह्मात्मक है. सांख्य जब ऐसी श्रुतियें देखते हैकि "आठ रुपवाली" ध्रु अजा "आप जैसी बहुत प्रजा सृजती है तो वहां जैसे अजा स्वतंत्र, तेसे याकों स्वतंत्र कहेते हैं. श्रुतिहीं जब अजाका रुप दीये तो वोहि पेदा करनेवाली स्वतंत्र समझी जावे. वहां ऐसे श्रुतिमें जो शब्दप्रयोग कीयेजाते हैं उनके फीर आगे पीछेके प्रसंग देखकेहि अर्थ करने पडते हैं. वा लीये यह अजाकेहि अर्थके प्रकरणमें द्रष्टांत देके सूत्रकार और प्रकरणका स्मरण करावते हैं. फीर जैसे यह शरीर प्रकृतिका बना है करके कही दीया वाका उपयोग तरनेमें करनां कहा तेसे यह सर्वस्व 'सार माता वेसी प्रजा' विकारीका विकारीहि क्षरण है. ब्रह्म भीतर रहे तो वो वस्तु वाका स्वभाव नहि छोडती–यह भी हमकों सार लेनेका–अथवा–अन्य तत्व जो प्रकृति वो शरीर करके परमात्मा क्या क्या करता है वो भी हमकों समझनेका होता है. जाका शरीर वाकाहि जगत, पिंडमें, सो ब्रह्मांडमें ऐसे अंतर्गत संकलना भी चलीआती देख पडती है. जहां–" चमस " शब्द श्रुतिमें है जाका अर्थ पात्र होता है. श्रुतिनें मुखके लीये प्रयोग कीया है वो पात्र है परंतु चेतन विशिष्ट वोहि रीति यहां "अजा" परब्रह्म विशिष्ट.

चमसाधिकरणम्

सूत्र—चमसवद विशेषात् ॥ ८ ॥

अर्थ—चमस सरीख अविशेष होनेंते.

विवेचन—वो खास पात्र नहि. खानेवालोंके अंतर्गत पावनेमें वो भी एक साधन करके कहा. वेसे जगतकारण सर्वेश्वरके अंतर्गत यह

" अजा " है. वाके द्वारा होता हैं. वातें वोहि मात्र कारण नहि ठहरती. त्यों वाकी केवल नहि भी नहि ऐसा विवेक है. वोहि प्रकृतितें उत्पन्न होनेके हि प्रकरणतें एक स्थानमें ज्योति शब्दसें उपक्रम करके वो स्वतंत्र नहि. वामें जीव हैं. वामें आप है. तत्र सब होता है ऐसा कहा. वो मंत्रका स्मरण करावने वाला.

सूत्र—ज्योतिरुपक्रमा तु तथा ह्यधीयत एके ॥९॥

अर्थ—ज्योति उपक्रमतें तैसा एकमें अध्ययन कीया है.

विवेचन—एक शाखा जामें " तंदेवा ज्योतिषां ज्योतिः " करके इन्द्रीयें आत्मा और परमात्माके प्रसंगमें वाहि रीति कहा है वोहि वेदांतका सिद्धांत है. श्रुतिका और सांख्यका या विषयमें एक सिद्धांत नहि हो सकता है. सत्र प्रकृति भयी कहेते हैं. अनेक वचन है. और वो ठीक है. हमभी समुक्षेकी ब्रह्म विकार नहि पाया, पृथ्वी, पवन सर्व प्रकृतिके हि रुप हैं. परंतु जो विशेष कहनां है सो येहि कि वामें ब्रह्म रहीके ब्रह्मके शरीर स्वतंत्र प्रधानतत्व सांख्य मानता है ऐसा नहि है. ब्रह्म मायी महा ईश्वर माया प्रकृति, प्रकृतिमेंतें सृजनेकी मुख्य सामग्री तो हैहि. आपतो अविकारी है. दीव्य है. वामेंतें ऐसे हेय आकार विकार कहांसें. प्रकृतिमंडलहि कहाजाता है. यह शरीरकी वोहि सामग्री बीज है जामें चेतनभी बद्ध होके आप भीतर है. आपको श्रष्टी कल्पन—उत्पन्न करनेंकों वो काम लागती है वातें वामेंतें भया. वाका भया कहते हैं. जैसा प्रयोग मधुविद्यामें है. देव और मधुका ऐक्य एकमें दुसरा औरोंका भोग्य होनेतें कहा है. तैसे परमात्माके शरीरमें जीव भोक्ताका यह प्रकृति भोग है. वो श्रष्टीकल्पनमें प्रकट करता हैं. आपका वो शरीर वो धन वो क्षेत्र उनकों सोंपता है. उनकें अर्थ ठहराता है.

सूत्र—कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवद विरोधः॥१०॥

अर्थ—कल्पनके उपदेशतें मधु आदिसरीख विरोध नहि.

विवेचन—" यथा पूर्वमकल्पयत् " पूर्व रहे वेसे सृजे तेसे सृजनके लीये कल्पन शब्द है. और मधुविद्या—देखे तो समुझा जावे कि जैसे वहां अचित भोग्य देव विशिष्ट है वैसा यहां प्राकृत जगतका भोग्य यह विकार होता है. सो परमात्मा विशिष्टही कहा है. या प्रकार आप अविकारी रहीके प्रकृतीका शरीरी होके जगतके पदार्थ करता है. वेसेहि अलिप्त रहीके भोगात्वताभी है. सर्व जगत आप भया है सो क्या क्या खुवी पूर्वक ! यह सार यहां दीखता है.

सांख्यमें संख्याका संग्रह चोवीश तत्व प्रकृतिके और पचीशमा आत्मा, ऐसा है. एक श्रुतिमें " पंच पंच जन " करके जामें पांच पांच जन और आकाश प्रतिष्टित है वाको आत्मा माने. " ब्रह्म अमृत्त विद्वान् माने " ऐसा कथन होनेतें वोहि कापिलतंत्र—सिद्ध कथन कही सके ऐसा स्थान होनेतें सूत्रकारने समुझायाहे कि वहां पचीशकी वात नहि. नानाभावकी वात है. और ब्रह्मकों तो फीर पंच पंचतें अतिरेक अन्यभी गाया है वातें वो मंत्रमें शंका नहि. यह अर्थवाल्य सूत्र हेकि.

सूत्र—न शंख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च ॥ ११ ॥

अर्थ—संख्याको उपसंग्रहतेंभी नहि. नानाभाव होनेतें अतिरेकतें.

विवेचन—पंच पंच जन कहे तो पंचवीश नहि. किंतु " सात " " सप्तर्षीवत् " पांच वेर पांच ऐसे संख्याका उपसंग्रह नहि है. उनतें " नानाभाव " और भाव है देखीये. वहांहि " जामें "

पंच पंच जन " तो पंच पंचतें तो भिन्न " अतिरेक " हि–जामें कहा सो छवीसमा भया पंच पंच जन तो वामें रहेनेवाले भये. फीर आकाश-भी वहां है. वातें सांख्यप्रक्रिया यहां नहि है. वातें और वात और भिन्न रीति यह संख्याका उपसंग्रह है. वो क्या पंच–पंच जन है सो सांख्यकी संख्या नहि. त्यों वोहि सर्वज्ञत्वभी यहां नहि कहे है. ऐसा वहां आगेहि स्पष्ट कीया है. सो क्या कैसे !

सूत्र—प्राणादयो वाक्य शेषात् ॥ १२ ॥

अर्थ—प्राणादि वाक्य शेषतें.

विवेचन—वाक्य शेप ऐसा है कि " प्राणका प्राण, चक्षुका चक्षु, श्रोत्रका श्रोत्र, अंनका अंन–और मनका मन ऐसे प्राणादि पांच वहां गीनाये हैं और उनका जीवन सो ब्रह्म कहा है. वातें वहां सांख्यकी वात नहि वनती. परंतु वातमें वात सरीख काण्वपाठ येहि मंत्रका है–वहां अंन शब्द नहि. वो शंका ऊठाके कहते हैं.

सूत्र—ज्योतिषै केषा मसत्यन्ने ॥ १३ ॥

अर्थ—ज्योतिषमें ऐकमें अंन है.

विवेचन—यह प्राण सो ज्योति कहेतो इन्द्रीयें हैं. वामें घ्राणरसन दोनोंके लीये अंन शब्द धरा है. वो पृथ्वी कहे है; पंचभूत जाका चिन्ह आकाश और पंचप्राण कहेतो इन्द्रीयें वो सर्व जामें रहे सो ब्रह्म कहे तो और तंत्र विरुद्ध प्रकृति सर्व आकारमें ब्रह्मात्मकहि ठहरा प्रकृतिके चोवीश तत्व और आत्मा भिन्न ऐसा नहि ठहरता. और जगे ऐसेहि असत् अव्यक्त शब्दका जगतकारणमें उपयोग कीया है. वो श्रुतिवाको देखके जगतकारण वो प्रकृतिहि ठहराती है ऐसा कहे तो

कारणत्वाधिकरणम्

सूत्र—कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः ॥ १४ ॥

अर्थ—कारण करके आकाशादिमें जैसें कहा है वैसें कहा है. सांख्य रीति नहि है.

विवेचन—असत्हि रहा–अव्यक्तहि रहा. कहेतो वेसा ब्रह्म रहा. जाको कोइ बुझ न सके. कोइ जा लीये कछु कही नां सके. वाकाहि फीर आगे इक्षण सत्य संकल्पत्व प्रवेश आदि वहांहि दीखेतो वो शब्द परब्रह्मकेहि लीये है. ऐसा सुस्पष्ट हो जाता है. कहीं तो वातें आकाशहि भया कहा, कहीं तेजहि भया, कहा; तो वो जैसे प्रकृति नहि ठहरती ब्रह्महि समुझा जाता है. वेसे यहांभी वो

सूत्र—समाकर्षात् ॥ १५ ॥

अर्थ—समाकर्षतें.

विवेचन—आगे पीछेके वचनोंका अछा मीलाव कीये तो शंका नहि रहती. मात्र थोडेहि शब्द पकडे तो ऐसा दीखता है. वो वो प्रकरण पूरा देखे तो निश्चय आप होता है.

वालाकी अजातशत्रुसंवादमें "ब्रह्म तो कों कहो" करके जो यह पुरुषोंका कार्य यह जाका कर्म है वाकों जाननां" कहा है. वहां शंका करते हैं वोभी सांख्य के जीव सरीख हि एक भया. कर्त्ता ओर कर्म तो फीर अन्य जीवभी तो वेसेहि है. वोहि वात सांख्यकी आई. दो तत्वहि ठहरे. पुरुष ओर प्रकृति. वैसा नहि है.

(जगद्वाचित्वाधिकरणम्)

सूत्र—जगद्वाचित्वात् ॥ १६ ॥

विवेचन—वाको कर्म पुण्य पापरुप नहि. किन्तु जगत हैं. वो जगतमें औरभी असंख्य पुरुष हे. जीनकों उनके पुण्यपापानुगुण करता है. वातें वाकों वो कर्म लागते नहि है. वो तो न्याय हैं, दया है. कर्मोंका फलप्रदत्व करके वाका कर्त्ता है. वो पुरुषोंतें और प्रकृतितें भिन्न उत्कृष्ठ वहांहि कहा हे. वाका कर्तृत्व और कर्म एक भी इतर पुरुष सरीख नहि. न वाको प्रकृति संबंध भी उनके सरीख हैं. आपहि सर्वमें रहा. सर्व भया सो सर्वके लीये फीर भया है. और वोभी न्यायपूर्वक दयायुक्त ऐसा विकारी तो नहि. किंतु उपकारी. एकके सर्व होनेमें क्या क्या खुबीये है कि सर्व भया—और नहि भी भया. क्योंकि वो आप न अचित है न चित है. वो न प्राण न जीव है. वा लीये भी वहांके प्रकरणसें शंका ऊठाये तो प्रथम कही दो वात स्मरण कराय देते हैं.

सूत्र—जीव मुख्य प्राण लिंगान्नेति चेत्तद्‍व्याख्यातम् ॥ १७ ॥

अर्थ—जीव, मुख्य प्राण लिंग होनेतें नहि. ऐसा कहे तो वो व्याख्यान करचुके हैं.

विवेचन—जीव वा मुख्य प्राण लिंग आये तो वाके शरीर करके वाकी शक्तियें करके वो आपहि नहि. इन्द्रके प्रकरणमें वो प्रथम पादके अंतमें समझाया है, ऐसा यहांभी प्राणमें एकधा होते हैं कहा हैं सो ब्रह्ममेंहि प्राण शरीरक ब्रह्मकी उपासनाके लीये प्राण शब्दका कथन है—तैसे जीव लिंगकाभी.

सूत्र—अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्न प्रतिवचनाभ्या-
मपि चैवमेके ॥ १८ ॥

अर्थ—अन्य अर्थ है जैमिनि कहते हैं. प्रश्न व्याख्यानते और एकमें ॥

विवेचन—अन्य अर्थ, जीवतें अन्य परमात्माके अर्थ हैं. ऐसा जैमिनिभी मानते हैं. क्यों वहां प्रश्नोत्तर भये हैं. वो "सोते पुरुषके पास गये." वाके प्राण तो जागते रहे. वोतो सोनेवाला होहि नहि सके. फीर वाकों लाठीतें जगाया तो सोतो जीव. वो जहां गया रहा वो फीर वो जीवतें अन्य ऐसा वहां स्पष्ट समुझाया है. वहांतो "प्राणके साथ एकधा भया रहा" कहा सो प्राण—परमात्माहि क्योंकि वातें देव मनुष्य होते हैं" ऐसा भी फीर कहा है. सो जीवतें और प्राणोंतें अन्यहि ठहरा. जाके प्रताप जीव—यह शांत अवस्था पाया. वाके संपन रहा वहांलों वो "सत" प्राज्ञ वाके साथ वीलगा रहा जीव बाहिर भीतरका कछु नहि जानता रहा" ऐसा एक शाखामें स्पष्ट परमात्मा. प्राज्ञ वो अज्ञतें अन्य करके कंठतः कहा भी है. जाका यहां प्राण कहा है. ऐसे जगतपुरुष वाका कर्म. वो कर्त्ता सो उनतें अन्य परब्रह्म है. देखीये फीर आप भीतर हेंहि. वाकी प्रतीति पुरावा दीये जाते है. वो तो सदा जागृत सर्वज्ञ प्राज्ञहि बाहिरकी धुम धामतें आपकी खुबीयोंकों कुछ भी असर नहि. ऐसा कार्यरुप हो रहा है ! वामें बेरबेर कहेते हेंकि सांख्यकों अवकाश नहि वो सिद्धांत वेदांतका नहि है. परम पुरुषहि जगतकारण और परम प्राप्य. जीव तो प्राप्त वाके सर्वथा आधीनमें है.

वाक्यान्वयाधिकरणम्

सूत्र—वाक्यान्वयात् ॥ १९ ॥

अर्थ—वाक्योंके अन्वयतें.

विवेचन—सिद्ध होता है. याज्ञवल्क्य कोटी धन देने लगे तो वो

नां लेके गार्गीने अमृतत्व मांगा. तब कहाकि चोतो वोहि जगदात्मा है. नहिकि जीयात्माभीकी जाके संकल्पतेंहि " यह सर्व पति पुत्रवित आदि जीवकों प्रिय लगते हैं. वोहि परम प्रिय परम भोग्य है-वाके आनंद लेशतें जगत जीवता है-ऐसा वाकों जीवका जीवन कहा है. आनंदघन कहा है-यो अनंत जगतकारण तो ठहरता है. परमात्माके लीये आत्मा शब्द, परब्रह्मके लीये ब्रह्म, परंज्योतिके लीये ज्योति शब्दप्रयोग कीये तो वो परमात्मा सो जीवात्मा. विभु सो अणु नहि ठहर जाते हैं. प्रसंग प्रकरण तुरत जीवात्माके वा परमात्माके लीये वो समुझा देता है. वो दो भिन्न शरीर शरीरीही है. और ऐक्यभी वोहि संबंधतें दोनोंका कहा है. वैसेहि एकनाम ऐक संज्ञा लगाइ जाती है. क्योंकि दोनों अपृथक् सिद्ध हैं. पृथक् हो सके ऐसे देह देहीकी भी " देवदत्त " एक संज्ञा होती है. तो यहतो देह जीवात्मा और देही परमात्मा कभी जुदे होहि नहि सकते हैं. वातें उनका एक नाम दीया जाता है. यह सर्व ब्रह्म है. " यह सर्व ब्रह्म भया है. यह वाक्योंके अर्थमें वडे वडे आचारी चक्कर खाइ जाते हैं तो, सांख्यकार भूले वामें क्या आश्चर्य है. जैसे प्राकृत पदार्थ कार्य है. उनका उपादानकारण ब्रह्म न हो सके. वातें प्रकृतिकाहि उपादान समझे. ऐसा सांख्यका आग्रह वैसे वातें विरुद्ध फीर श्रुतिहि जब कारण कार्यको एक कहती है तो वोतो मत ठीक नहि. परंतु ब्रह्महि. सब भया है तो जीवभी ब्रह्म आपहि भया है. ऐसा और आचार्योंको भ्रम भया है. व्यासजीनेंतो वो जीव अलग, शरीरवाके कर्मभोग अलग, आप फीर अलग, और वाके संग वो आपका शरीर वातें आपभी सही; ऐसा संपूर्ण वेदांततें समुझाया है. परंतु वैसा पुरा न देखे तो जेसे प्रकृतिविपयमें सांख्याचारीको भ्रम रहा वेसा जीव विपयमें ओरोंको भया. वो भ्रम होवे ऐसाहि प्रसंग है. और वातें जो मुख्य हो सके वो व्यासजी यहां दीखा देते हैं.

सूत्र—प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्ग माश्मरथ्यः ॥ २० ॥

अर्थ—प्रतिज्ञाकी सिद्धिके लीये लिंग है ऐसा आश्मरथ्य आचार्यका मत है.

विवेचन—प्रतिज्ञाकी सिद्धिके लीये तो " एकके ज्ञानतें सर्वका ज्ञान होता है ऐसी प्रतिज्ञा है तो परमात्मा तो वो हैहि. फीर वाके ज्ञानतें जीवज्ञान या प्रतिज्ञाकी सिद्धि कैसे ? वो कहते है. वो परमात्मा आपहि कार्यरुप भया है. ऐसे आत्मा परमात्मा कार्य कारण भावतें एक है. एक पूर्व रहे फीर विस्फूलिंग न्यायतें भिन्न दीखे. फीर मीलगये जीवोंकी वामेंतें उत्पत्ति वामें लय तो वोहि वीचमें भया रहा. या प्रकार दोनो एक तत्वहि एकके ज्ञानतें सर्वके ज्ञानकी सुवर्णके ज्ञानतें कटक कुंडलकी नांइ. सिद्धी.

सूत्र—उत्क्रमिष्यत एवं भावादित्यौडुलोमिः॥२१॥

अर्थ—ऐसे होके जाते हैं ऐसा औडुलोमी मत है ॥

विवेचन—पीछे एक होते है ऐसे वचन है. वो ठीक है. जब यह शरीरतें नीकलतें हैं तब " परंज्योतिरुपकों पाइके आपके रुपको खोलते " यह श्रुति पूर्वमत मानेमें तो " जीवका आदित्व, इश्वरकी विषमता निर्दयता, कर्मका आदित्व, जीवकी उत्पत्ति; वाका नाश, यह सर्व दोष आते हैं. वाते वो कहते है; अंत समुद्रमें नदीकी नांइ वो परमपुरुषकों पाते हैं. ऐसे अंत एक होनेतें एक कहे है.

प्रथम मतमें आदि अंत एक, मध्यमें भिन्न कहे, दुसरे मतमें आदि मध्य भिन्न, अंत एक कहे. मध्यमें भिन्न दोनोंने कहेहि. अब यह दोनोंतें तीसरा मत उनके उपर है -जो दोनोंका समाधान करदेता है.

सूत्र—अवस्थितेरितिकाश कृत्स्नः ॥ २२ ॥

अर्थ—अवस्थिति है ऐसा काश कृत्स्न मत है.

विवेचन—वो कहते हैं मध्य रहा और आदि रहा तो अंत भी

रहा तो सहि. फीर एक भया कहा सो एकमें दुसरेकी स्थिति " वो फीर वोहि मकार अनादि अनंत—वोहि शरीर शरीरी संबंधतें ऐक्यता है; जो वेदांत समुझावता आया है. और वाके उपर फीर सूत्रकार नहि बोलते हैं. माना गयाकि वोहि उनका भी निर्णय है जैसे जैमिनि मत संमत होता है. तब आप फीर अधिक नहि कहते हैं. तैसे यहां है. अनेक श्रुति मकरण यहि सिद्ध कीये आते है. तो आपका सिद्धांत वातें भिन्न कैसे होइ सकें ? वातें श्रुति जीवात्माकों तो कहती है कि " परमात्मा जो तुम्हारे आत्माका आत्मा है वाकों " श्रोतव्य मंतव्य निदिध्यासितव्य " और वो भीतर हमारेहि लीये साकार होके रहती है. सो " द्रष्टव्य " भी ठीक है—दीखता है. तब वेडा पार होता है. ऐसा वो हमारा शरीरी स्वामी शेषी हेय गुणतें दुर दिव्य गुणतें पूर परमतत्व—अन्य पुरुषोंतें अन्य, पुरुषोत्तम परब्रह्म जगतकारण होनेतें निरीश्वर सांख्य वेदांतानुकुल नहि ठहरा. तब फीर सेश्वर सांख्य भी है.

पुरुष अनेक प्रतिशरीर अनादितें भिन्न वैसेहि ईश्वर उत्तम पुरुष उनतें भिन्न. परंतु वो जगतका उपादानकारण नहि. उपादानकारण तो स्वतंत्र मकृति वोहि विरोधका निराकरण कीये आये है. यहां प्रतिज्ञा एकका सर्व भया. वामें ईश्वरकों अविकारी और जगत विकारी और वो प्रत्यक्ष सिद्ध है कि मकृतिकेहि विकार है. वातें जगतकी मकृति उपादानकारण सेश्वर सांख्य मानते हैं. ऐसा माने तो वोभी वेदांत मतके अनुकुल नहि.

जीव इश्वर मकृति सर्व एक कोन मकार ? अनेक कोन मकार ? ब्रह्महि कारण और ब्रह्महि कार्य वोहि उपादान और वोहि निमित्तभी यह कैसे सो यहां सुस्पष्ट कर देते हैं. प्रथम उपादानकारण ब्रह्म कैसे सो कही जाते है. दुसरे सूत्रमें निमित्तकारण कहीके, फीर अंतके सूत्रोंतें उभय कारण वो एकहि है. वोहि कार्य है. ऐसा उपसंहार करते है.

प्रकृत्यधिकरणम्

सूत्र—प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टांतानुपरोधात् ॥२३॥

अर्थ—और प्रकृति प्रतिज्ञा और दृष्टांतका नहि विरोध आनेतें.

विवेचन—ईश्वर कर्त्ता निमित्तकारण तो हैं. वैसेहि प्रकृति उपादानकारणभी, क्योंकि वामेंतें यह सर्व भया है. आगे सतहि एकहि अद्वितीयहि रहा. वानें चाहा वहुत होउं-वो बहुत भया है. वो सर्व है. वातेंहि एकके ज्ञानतें सर्वका ज्ञान होता है कि जो कारण रहा सोहि कार्य हैं येहि तो प्रतिज्ञा हैं और दृष्टांतभी मृत्तिका सुवर्ण लोहका जो दीया है सो उपादानकारणमेंतेंहि वो जो हो सो कार्य होता है ऐसा समुझावनेकों. परंतु दृष्टांत याके लीये सर्वदेशी नहि मील सकेगा. क्योंकि मृत्तिका अचित है तो वाके कार्यभी अचित होवेहि. और यह जगतमें तो चित अचित्त उभय हैं. वो चित्तका मूल चित्त और अचितका अचित ऐसा तो लेनांहि पडेगा. फीर वो दोनोंका संबंधभी अनादितें है. अभीभी चित अचित मिश्र जगत है. तो वैसा संबंधभी मूल उपादानमें रखनां पडेगा. अब वो दो आपतें नहि रहि सकते है—न संकोच विनाश पाइ सकते. सृष्टि प्रलयावस्थामें आइ सकते हैं फीर वो उभयकी वो उभय प्रकार स्थिति; वो करनेवाला उभयतें वडा समर्थ तो सही—परंतु वेदांत कहता है "ब्रह्म" "अनंत" ऐसा देशकाल वस्तु नहि कि जामें वो न होवे सही त्यों ईश्वरकों सचराचर व्यापक सर्वमें वसा हुवा सर्वका शरीरी और "अंतर्यामी" "ब्राह्मण देखे तो" सर्व स्थीतिमें "अव्यक्त सम" में "मृत्यु" काभी और जीवकाभी शरीरी वो है करके कहा है. तो जो रहा सो वो ऐसा-

चित अचित विशिष्ट वोहि वैसाहि विशिष्टहि जगतकी प्रकृति उपादान-कारण फीर वामेंतें वेसेहि चित अचित विशिष्ट ब्रह्मात्मक सर्व जगतरुप वोहि भया है एसे प्रतिज्ञा दृष्टांततें ठहरता है. वेदांत तीन तत्व तीन मीलके एक वो तीनोंका मुख्य शरीरी वोहि ब्रह्म, वोहि मुख्य, वोहि सव कुछ, वोहि वेदांतवेद्य ऐसा वेदांतका ईश्वर ठहरनेतें सेश्वर सांख्यकाभी सिद्धांत वेदांतानुकुल संपूर्ण नहि. उपादान प्रकरणमें तो प्रकृति ब्रह्मात्मकहि है करीके पादके आदितें कहतेहि आवते हैं. फीरभी यहां कारण कार्य एक सर्वविध कारण एक इश्वरहि जगत केसे भया सो कहा. अधिक रहा, निमितकारण वोतो वोहि है, जो प्रलयमें सूक्ष्मचित अचितवाला एकहि बन्या रहा सो इतर जीव सरीख नहि. सदा जागरुक सर्वज्ञ सत्य संकल्प अर्थात् प्राकृत गुणरहित और कल्याणगुण सहित वेदांत ऐसे सशरीर और सगुण ब्रह्मतेंहि आरंभ करते हैं.

सूत्र—अभिध्योपदेशा च ॥ २४ ॥

अर्थ—अभिध्यानका उपदेश होनेतें.

विवेचन—वानें संकल्प अभिध्याय विचार कीयाकि मैं बहुत होऊं और वो होने लगा. सत्य संकल्पतो हैहि. प्रकृतिमें चोवीश प्रकट होनेंकी योग्यता आपका शरीरही है. वामेंहि अनेक शेपकर्मवाले असंख्य जीवभी तो आपका शरीरही है. संकल्पानुगुण प्रकृतिशरीरमें विकारकी या ब्रह्मांडरुप आप भये. वामें जीवको जगाया. ब्रह्मा शरीरक भये, फीर वामें प्रत्येक व्यक्तिरुप भये; सर्वमें आप सर्व आपके एककेहि शरीर ऐसे आपहि शरीरोंको लेके उपादान और निमित्त कारण उभय खुद है. आपका संकल्प निमित्तकारण तो वोभी तो आपहि भये. वातें अंत ठराव दीयाकि.

सूत्र—साक्षाच्चोभयाम्नानात् ॥ २५ ॥

अर्थ—उभय साक्षात है. ऐसा वेदमें कहे है.

विवेचन—अब कीतनां कहे. श्रुतिहि ब्रह्महि वन ब्रह्म वृक्ष ब्रह्ममें रहा. ब्रह्मधारक है. इत्यादि स्पष्ट दृष्टांततें समुझावती है. यह आपकीहि कृति आपमेंतेंहि भया है. ऐसे आप जैसे वेसे गुणशक्तिवाले रहीके शरीरगत दोष रहीके सुख दुःख जीवगत और विकार प्रकृतिगत परंतु वो सर्व आपकाहि शरीरतो आपहि कहे जावे. या प्रकार

सूत्र—आत्म कृतेः ॥ २६ ॥

अर्थ—आपकी कृति कीया भया.

विवेचन—आपके स्वरुपमेंतें नहि. आपके शरीरमेंतें में जाडा मोटा दुर्बल भया कहे तैसे पूर्वके वचनोंकों लेके आपहि सर्व भया. आपकाहि सर्व कीया है.

सूत्र—परिणामात् ॥ २७ ॥

अर्थ—परिणाम होनेतें.

विवेचन—वो भी पूर्व कही गये वोहि रीति अव्यक्त शरीरवाला रहा. अव्याकृत रहा. सो नाम रुपवाला भया. बीजमेंतें वृक्ष. जैसे बामें जीव उतनादि रहीके परिणाम पाया कहाजाता है. वैसा फीर बीज जीववाला आप स्वतः अविकारी रहीके शरीरतें परिणाम पाता है. कोन प्रकार सो अथातो ब्रह्म जीज्ञासासें वा इक्षति अधिकरणसें कहेते आये है. वो सर्व लक्षमें लेके सर्व वोहि भया है. आपहितें आपमेंतें यह वेदांत है. वातेहि "जन्माद्यस्ययतः" करके "यतः" सर्वका मूल कारण सो ब्रह्म करके समुझाया वो यहां अंत.

सूत्र—योनिश्च हि गीयते ॥ २८ ॥

अर्थ—योनी भी गति है.

विवेचन—येहि विशेषता है. पुत्रकी योनी पुत्र नहि होता. यह तो आपकी योनी आप जगतरुप कार्यकी योनि कारण अनेक श्रुति कहती है. वो खुद शरीरी फीर दिव्य वर्णरुप उपादेय आकार और ढंगसें योगीयोंकों भक्तोंकों दीखता है परंतु वोहि सर्वत्र ऐसा भया है. सर्वका मूल विचारें तो मूलरुप वोहि रहा " यद्भूत योनी परिपश्यंति धीराः वोहि रुक्मवर्ण कर्त्ता पुरुप इश उर्णनाभी श्रजे तैसें पृथ्वीमें ओपधी पुरुपतें केश—लोम तैसे वो अक्षर रहीके वो अक्षर यह जगतकी योनि होता है. यह सर्व—आद्योपांत विचार जावें तो सर्व वेदांतका सार.

सर्व व्याख्यानाधिकरणम्

सूत्र—एतेन व्याख्याता व्याख्याताः ॥२९॥

अर्थ—या करके व्याख्यान कीया—दुसरी वेर एतेन व्याख्याताः

विवेचन—ऐसा मूल सूत्र दो वेर है वो अध्यायकी समाप्तिका चिन्ह है. इति हरि ॐ.

प्रथम अध्याय पूर्ण.

श्रीमते रामानुजाय नमः

अथ द्वितीय अध्याय प्रथमपाद.

प्रथम अध्यायमें अचित और अचितके साथ लगा रहा चित-तत्व (जीव) अथवा शुद्ध चिततत्व (मुक्त नित्य) तें अन्नर तत्व जो सदा अविद्यादि अपुरुपार्थकी गंधर्तेभी दुर है, और अनंतज्ञान आनंद-स्वरुप होके अपार उदार गुणोंका सागर है, और जो जगतका एक कारण होके सर्वके भीतर रहा आत्मा है, वो परब्रह्मकों वेदांततें जान-नां. वेदांत जाने तो ब्रह्म ऐसा जान पडता है ऐसा कहा. अब येहि निश्चय कोइ प्रकार फीर सके यों नहि, वो फीरावने जैसाभी नहि, ऐसा यह अध्यायमें सुदृढ करते हैं. जीतनी शंका उठ सके, ऊठती है, वो सर्वका समाधान यह अध्यायमें श्री वेदव्यास महाराजनें अति कृपातें कीया है. श्रद्धासें अमुकशास्त्रकों मानें. वाके उपरतें अमुक निश्चय रखे यह एक वात है और इतर मत वा तर्कमात्रसें वाका मुकावला कराइके निश्चय करावे यह दुसरी वात है. "बा-वा वाक्य प्रमाण" तो ठीकहि है. परस्पर कहतेही हैं कि "क्या हमारे आचार्य वा देव मूर्ख! और तुम्हारे सांचे!!" कोई कहते हैं "सर्व साचे" यह सर्व–आपतें समाधान न होइ सके–उनके उत्तर हैं. सत्य वोहि–जो अन्यथा कभीं न होवे. परंतु वैसा सत्य देखने योग्य सर्वकी दृष्टी नहि होनेतें वो दृष्टीभेदतें वो सत्यभी भिन्न प्रकार दीखता है. सत्य दृष्टीवाले सर्व आस्तिकोंनें माना है की सर्वे-श्वर, नें जो वेद प्रदान कीये हैं, जो नित्य सत्यहि मांने गये हैं वाके अनुगुण जीनका समुझावनां हो सो सत्य, और विरुद्ध हो सो असत्य. परंतु–वाकी परिक्षा तो हमहुंको करनेकी होगी. वो हमभी फीर हम

तें कोई वडा हममें सत्य दृष्टीवाला माने तो वैसा-" व्यासजी " से परिसीमा है. वोहि कृपा करके सर्व वेदहि नहि सर्व और शास्त्र, मत, तर्कोंको देखके निर्णय कर दे गये हैं. विचार सूत्रोंमें धरके दे गये हैं, सो यहां है. वामें आरंभ वोहि षडशास्त्रमें प्रथम सांख्य, जाके आचार्य भगवानकाहि अवतार व्यासजीकी नांइ कहे जाते हैं-और उन्होंने वेदके उपरसें तत्व क्या है वोहि समुझावनेकों यह सांख्य शास्त्र लीखा है. वेदके अर्थोंको समझके उनका आपकी बुद्धि स्मृति अनुगुण स्मरण करके एक खास-शास्त्रहि लीखा है-जामें तत्वोंकी " संख्या " आप समूझे वैसी वा " संख्या " " बुद्धि " " ज्ञान " हि भरा है. वातें वाकों " स्मृति " करके मानते हैं. क्योंकि वो कहेने वाले श्री कपिलजी भी हमारे महर्षीहि रहे. परंतु उन्होंने जो निश्चय कीयाकि उपादानकारण प्रकृति है, वो ठीक नहि, ऐसा जब कहें तब फीर वेदका अर्थ हमारी बुद्धिसेंहि कीया. फीर वेदके अर्थ समुझावनेकों स्मृति है. वातें उनका उपयोग वेदार्थ समझनेमें कहनां-ऐसा जो घोष है-वो स्मृति होनेका जो प्रयोजन है-वोहि निरर्थक ठहरेगा. क्योंकि उनकों वेदार्थ समझनेमें हमारे निश्चयके सामने अवकाश नहि देवे तो फीर वो क्या कामकी? हमकों चाहियेकि वेदका अर्थ स्मृतिसेंहि समुझे-शंका रहे वहां स्मृति मतहि लेवे. परंतु ऐसाहि कीये तो फीर जो गत सूत्रोंमें कपिल मतका-उपादानकारण प्रसंगमे-और ईश्वरप्रसंगमें-खंडन कीया सो ठीक नहि भया. ऐसी शंका ऊठाके कहेते हैं.

(स्मृत्यधिकरणम्)

सूत्र—स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंग इति चेन्ना न्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगात् ॥ १ ॥

अर्थ—"स्मृतिकों अनवकाश दोषका प्रसंग आवेगा. ऐसा कहेनां

नहि. अन्य स्मृतिकों अनवकाश दोषके प्रसंगते."

विवेचन—एक मात्र कपिलस्मृति होती, वोहि ऋषी वडे अवतारी प्रमाणिक ओर उन्हीका ग्रंथ वेदके खुलासेके लीये होता, तवतो उन्हीके कहेपर चलते. परंतु जब वेसेहि वडे अनेक ऋषी—उनकी स्मृतियें हें जब बहुत—मत हो गये, तब फीर जो—तरफ ज्यादें मत वो तरफ हम—स्मृतिकों अवकाश मीले सो ठीक—वा अनेक स्मृतियोंको अवकाश मीले सो ठीक है. अनेककों अवकाश दीये तो जो अर्थ कीया हें वोहि रहता हें. वातें हम वोहि ठीक रखते हें. जेसे भगवान पराशर, व्यास, मनु, शुक, शौनक, उनकी स्मृतियें. ईतिहास. प्रमाणिक पुराण—सर्व परम चेतन परमात्मा, अन्य पुरुपतें भिन्न, श्रेष्ठ, ओर वोहि जगतका उपादान-कारणभी—श्रीमन्नारायणहि है ऐसा ठहराते हें. तो उनतें जीतनां विरुद्ध उतनां कपिल ऋपीका समझनां भूलते हें ऐसा कहेनां चाहीये. वोभी ज्ञानी रहे, योगी रहे, अर्थोंको विचारके कहेते रहे. वेसेहि वडे अन्य यह सर्वभी हें. परंतु अखीर वद्ध हें. सदा सर्वज्ञ मात्र सर्वेश्वर, सदा पूरा प्रमाणभूत मात्रवेद; वो " अपौरुपेय " हें. अन्य पुरुप देव ऋपी काहुका कहा हो. वामें भूल होनां संभव हे. वो सदा सर्वज्ञ नहि रही सकते हें. उनकों जेसे कभी यथार्थ ज्ञान होता है वेसे ओरोंकोंभी होता हें. उन्होंनें वो अर्थ वडोंतें श्रवण कीये. ओर स्मृति लीखनेका अधिकार पाये. वेसेहि ओरभी पायेहें. या विपयमें वो सबकी योग्यता श्री कपिलजीतें कम नहि. वो सब ऐसेहि मूल ज्ञानतो पाये रहे. परंतु फीर वो समुझावनेमें—सबनें जो सत्य नहि स्वीकारा सो यह एक स्वीकारे तो वो ठीक नहि माना जावे. उनकों यथार्थ तत्वज्ञान पूरा नहि भया येहि ठहेरं.

सूत्र—इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥

अर्थ—ओरोंको वो उपलब्ध नहि भया.

विवेचन—तत्व सत्य ऐसाहि हैं करके सर्वकों समान नहि देख पड़ा तो बहुमत बलवत्तर है. भूल होजाती है. कहेते हैं कि ब्रह्माभी भूलते हैं. और वोहि वात या विषयमें उनकीभी है. योगके आचार्य वो है. वामेंभी ब्रह्मकों उपादानकारण नहि मांना तो उनकाभी वो कहेनां ऐसाहि समझल्यो. यह न्याय उनकोंभी लगेगा कि प्रत्यक्ष श्रुति जो वार वार कहती है. वापें अनेक प्रबल मतोंकी पुष्टी है तो वातें विरुद्ध कहे सो भूल–भ्रम. उतनी ब्रह्माजीकीभी भूल है.

(योगप्रत्युक्त्यधिकरणम्)

सूत्र—एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥

अर्थ—या करके योगमति कहीचूके.

विवेचन—जब कपिल ब्रह्माकाभी यह हाल है तो यह आचारी और वह आचारीकी क्या कहे! श्रुति व्यास मतकोंहि देखे. और जो हमारा निश्चय वा परतें हो सो सही. सब सचे पूरे नहि हो सकते हैं. सत्य एकहि होनां चाहिये. और वो श्रुति सूत्रतें ठहरे वोहि. और अंत तो फीर हमारा मन मांने सो; जैसे हम यह लीखहि रहे हैं. और वैसाहि औरोंको मनावनां चहे हैं. क्योंकि हमारे मननें यह मांना है सो ठीक है. परंतु बुद्धिमेंभी तो आवनां चाहीये. तर्कसें विचार कीये तो यह जगत जडात्मकभी है. और ब्रह्म वैसा नहि है तो कारण जैसा कार्य होनां चाहिये. वातें विलक्षणत्व नहि होनां चाहिये. तैसाहि शास्त्रभी कहता है. वातें जगतका उपादानकारण–परम चेतन ब्रह्म हो यह बुद्धिमें नहि आवता है. ऐसा तर्क ऊठाके चले अब तर्कपरंपरा पर–

(विलक्षणत्वाधिकरणम्)

सूत्र—न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥ ४ ॥

अर्थ—याका विलक्षणत्व होनेतें नहि तैसाहि वेदतेंभी है.

विवेचन—जगत जडात्मक तो प्रत्यक्ष है. जो चेतनतें विलक्षणहि है. और तैसाहि "तथात्व" वाका विलक्षणत्व श्रुतिभी कहती है. "विज्ञान और अविज्ञान" "ईश और अनीश" तो जा कार्य हो वैसेहि लक्षणवाला कारण होनां चाहिये. वातें विलक्षण ब्रह्म कहे तो ठीक नहि. वातें सांख्य कहेते हैं वोहि ठीक रहता है.

सांख्यको ये प्रश्न कीया जाय की श्रुतिमें मात्र अचेतनकोंहि कारण नहि कही "पृथ्वीने कहा" "तेजनें ईच्छा कीनी" ऐसे वचनतें उनमें चेतनका योग हो ऐसा दीखता है तो वोतो मानतेंहि है कि— दो तत्व है. प्रकृति और पुरुष. तो वो उनकों अभिमत है. सूत्रमेंहि उनका कहनांहि व्यासजी अभी कहेते हैं.

सूत्र—अभिमानीव्यपदेशस्तु विशेषानुगति-
भ्याम् ॥ ५ ॥

अर्थ—अभिमानीका व्यपदेश है. विशेषकी अनुगति होनेंतें.

विवेचन—प्राकृत जो देह वामें विशेष-देवता-उनके अभिमानी है; जैसे जलके आभिमानी वरुणदेव; आगके अग्निदेव; तैसे वामें प्रवेश करके रहते हैं. वाते श्रुति कहती है—सो अचित चित विशिष्टको लेके यह जगतभी केवल आचिदात्मक नहि दीखता. चित अचिदात्मक दीखता है तबहि कहते है कार्य जैसा कारण कार्यतें विलक्षण कारण नहि होनां चाहिये. यह उनका मत भया. अब तर्कसें उत्तर तो उनके उपर बनता हैं. और व्यासजी वो देते है कि कारण कार्यतें विलक्षण होसकता है ऐसा हम देखते हेहि

सूत्र—दृश्यते तु ॥ ६ ॥

अर्थ—देखनेंहि तो है

विवेचन—दृष्टांत देखे तो बहुत. जैसे कृमीमेंतें मक्षीका. वो कारणतें कार्य विलक्षणहि है–वैसे ब्रह्मतें विलक्षण जगत हो तो क्या असंभवित है! गोवरमेंतें विछु? यह समाधानके उपर वो फीर कहेते है. तब फीर एक नयी बात खडी होगी कि "न हो वामेंतें होता है." तब फीर कार्यको कारणकी अपेक्षा न रही. गोवरमें नहि रहा और विछु भया तब तो कारण असत और कार्य सत ऐसा तो नहि है–वातें दृष्टांत ठीक नहि.

सूत्र—असदिति चेन्न प्रतिषेध मात्रत्वात् ॥७॥

अर्थ—असत ऐसा कहे तो नहि. प्रतिषेध मात्र होनेतें.

विवेचन—ऐसा कब कहा कि कुछ नहि रहा. वामेंतें मक्षीका वा बीछु भया. कुछ रहा वामेंतें कुछ भया. परंतु जो विलक्षण नहि हो सके ऐसा कहते रहे उनकाहि दृष्टांत देके निषेध करते है कि ब्रह्म एक प्रकारका हो और जगत दुसरे प्रकारका न हो ऐसाहि नहि ठहर सकता. मूल कारणका अस्तित्व स्वीकारकेहि दृष्टांत दीया है–वाकों असत नहि कहा. तब भी तर्कको अवकाशदोष देनेके रहेंगे कि

सूत्र—अपितौ तद्वत्प्रसंगादसमंजसम् ॥८॥

अर्थ—ऐसा कहे तो भी वैसा प्रसंग होनेतें ठीक नहि ठहरता.

विवेचन—क्योंकि कृमी विलक्षणता पाइके मक्षीका–भया. दोनोंमें भीतर वोहि तत्व रहा. परंतु विलक्षणता पाया एसेहि जो "सदेव" करके ब्रह्म रहा वो जगतरूपमें विलक्षणता पाया हो, और वो एकहि अद्वितीयहि रहा तो आपहि विकारी भया. सुवर्णहि कुंडल होता है वैसे वो पशु–पक्षी कीट पतंग भया तो श्रुतिके "यः सर्वज्ञः सर्ववित्" "अपहत पाप्मा" इत्यादि वाक्योंकि क्या गति! जो सर्वज्ञ सोहि

अल्पंज्ञ–जो निर्दोष वोहि सदोष; ऐसे श्रुतिवाक्यमें परस्पर विरोध होगा. एकहि वस्तुमें एक साथ विरुद्ध वात कहेनेवाली ठहरी तो उनका प्रामाणिकत्व–ओर–नष्ट हो जावेगा कि कोन श्रुति सत्य और कोन जुंठी ! वातें यह उत्तरभी ठीक नहि. ऐसा तर्ककार कहे तो अव उनकों पुरा समुझावते हैं. अव स्पष्ट उत्तरकेहि सव सूत्र हैं. सिद्धांतहि कहेते हैं. पहिले तो

सूत्र—" न तु दृष्टांत भावात् " ॥ ९ ॥

अर्थ—दृष्टांतका भाव होनेतें वैसा नहि.

विवेचन—जो दृष्टांत दीया है सो ब्रह्ममें लगेगा. वाका निर्दोषत्व भी रहेगा. तीन वस्तु कहे तो तीनकी खास विशेषता पाहिली समझ लेनी चाहीये. ब्रह्म नाम वाका जो सदा सर्वज्ञ अधिकारी है. "जीव" वो जाका ज्ञान संकोच विकाश पाके–स्वरुपतें अविकारी है. "प्रकृति" वो तो वस्तुतः सदा है परंतु स्वभावतें–स्वरुपतें–हि विकार पावती है. अव देखीये दृष्टांत देते है. शरीर वडा छोटा दुर्वल मोटा होता है विकार पावता है. वैसा वाके भीतर रहा जीव होता है क्या ! नहि. वामें रहेपर वो जो अविकारी स्वरुपतें कहा तो आगमें जले पर वैसा हि रहेगा. शरीरके साथ विकार नहि पावेगा. हां; वाका ज्ञान संकोच विकाश, पावता हैं. जाग्रत शुशुप्ती होती है. अव यह जीवतें भी अधिक अविकारी, जेसे जीवकों देहके धर्म नहि लगते है ऐसे स्वरुपतें और ज्ञानतें सदा एकरुप, सो परमात्मा वो वैसाहि वाके भीतर रही सकता है वो चेतन शरीरके ज्ञानगत संकोच विकाश वाको नहि लगते है. वो दृष्टांत वरावर वनजाता है.

अर्थात कारण तीन तत्व तिन स्वभाववाले उन तीनमें फीर एक शरीरी है और दो शरीर ऐसे वातें अप्रथक है, तो दो विशिष्ट जो

तीसरा सो एकहि, विशिष्ट अद्वैतहि कहा जाता है. वो शरीरीके वोहि कार्यमें वोहि स्वभाववाले वो दो शरीर है. वामें एकके स्वरुपमें विकार और दुसरेके ज्ञानमें फेरफार करता भया. आप शरीरी जैसाका वैसा रहीके दो शरीरोंको लेके कारणमेंतें कार्य होता है. वोहि ऐसा चित अचित विशिष्ट सो सदा है. दो अवस्था एक विशिष्ट अद्वैतकीहि है. कारण सो सूक्ष्म चित अचित विशिष्ट यह कोइ कंगलेकी वात नहि. जो एकहि है. ओर एकहि प्रकारका कि जातें वाका जो होनां हो सो जातेंतहि होवे. वो एक कारण सो असंख्य गुण शक्ति शरीरवाले एककी वार्ता है. सो वाके सर्व ठाठप्रयुक्त वाको पूरा समझके वाके आपके स्वरुपके, वाके गुणके, शरीरोंके पुरे स्वरुप स्वभाव समझके श्रुतीयें उनका सारार्थ मीलाये तो तर्कको सर्वथा श्रुतिसें ऐक्यता, सर्व श्रुतियोंकोभी ऐक्यता होती भयी—सत्य समुझाता है. वो भी शास्त्र और युक्ति उभयतें एकसा सिद्ध होता है वोहि करनेकों तो सेंकडो सूत्र करने पडे है. ओर वातें जो निकी कीया है वोहि सत्य है. वेदांतहि वेदका बोधका अंत है और अन्य दर्शन पक्ष अंतमें ठीक नहि. आगे वहुत विस्तारतें दुसरेंपादमें एक एक मतकों (वेदावलंबी और वेद बाह्यकों) तपासेंगे. यहां सांख्यसेंहि प्रकरण उपादानकों लेके चला है. तो वो हमारा क्या खंडन करनेंको आये पे आपहि खडा नहि हो सकता. वोवो एक सूत्रतें कही देते हैं कि.

सूत्र—स्वपक्षदोषा च्च ॥ १०

अर्थ—और स्वपक्षका दोष होनेंतें.

विवेचन—वो हमारा क्या खंडन करे. उनका पक्षहि वनता नहि. उनमें पुरुष निर्विकारी कहे तो " अकर्त्ता. " और प्रकृति अचित कहेतो आपतें करनेंको " अशक्त " ऐसेदोनो " अकर्ता " फीर यह

वेसे दो नपुंसकतें प्रजा कैसी! ओर हो गई है तो उनकों कोन छुडावेगा!. के दोनो स्वतः अकर्त्ता स्वभावसें अनादितें जुंटीहि हो तो वेसेहि रहेंगे. तो फीर ऐसें कार्यका कारण. कारणमेंतें कार्य वेसे भया? वोहि नहि कही सकते हैं. त्यों जा लीये यह सर्व कहेनां, समझनां सो मोक्षभी नहि बनेगा. अंत सत्य चार्चा यह है कि तर्कवादतें सत्य निर्णयहि नहि होगा.

सूत्र—तर्काप्रतिष्ठानादपि ॥ ११ ॥

अर्थ—तर्ककों प्रतिष्ठा न होनेंतें ॥

विवेचन—ओर जो जो मत मनुष्य अपने बुद्धिवलतें ठहरावे जामें प्रधानकों जगतकारण कहे तो वो वास्तविक सत्य नहि है. वातें नहि ठहरेगा क्या होगा? एक तर्कवादी एक बात सिद्ध करेगा. वाकोंहि कल दुसरा विचार आये तो फीर असिद्ध करेगा. ऐसा संभवभी वाकोंहि वहाला है. ऐसा तो कोइ माने कि अब मेरी बुद्धि बढेगीहि नहि वेतो ठीक नहि. ओर यदि वाके मरण पर्यंतके निश्चयकों प्रमाण करे तो ओर वातें विशेष बुद्धिमान मीले. जो फीर ओरहि भान करावे! निश्चयबुद्धिअनुसार, बुद्धिकर्म अनुसार, कर्म एकतें दुसरेके बढते "शेरपें सवाशेर" वातें यह पंथहि पार पहुंचनेका, सत्य शोधनेका नहि. जो बद्धजन, कर्मतें ज्ञान पाये. ऐसे चेतनाके निश्चयतें सत्यका निश्चय करे! सूत्रकार कहेते हैं.

सूत्र—अन्यथाऽनुमेयमिति चेदेवमप्य निर्मोक्ष प्रसंगः १२ ॥

अर्थ—अन्यथा मानेंगे कहे तो ऐसेंहि तो अनिर्मोक्षका प्रसंग है.

विवेचन—जब जो नहि ठीक दीखा वाकों छोडेंगे. तो कहे

न्यायर्ते वो ठीक तवलों दीखेगा. जवलों वातें बुद्धिमान नहि मीला. यह मर्यादा जवलों नहि की जावेकी वस इनके ज्ञानतें परिसीमा है. और वो वास्तविकमेंभी परिसीमा है. वोहि यथार्थ सत्य हो तवलों मोक्षका प्रसंग नहि. वो ज्ञानतो "सर्वज्ञ सर्ववित्" का " सोहि वेदांत" और वातें वाके अनुगुण तर्क, वा स्मृति, शास्त्रमतकों माननां यह सिद्ध भया और यातें—

सूत्र—एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः॥१३॥

अर्थ—जो ऐसे न होके शिष्ट कहे माने गये हो उन सकलके मतोंका इतनेतें खुलासा हो गया. ऐसाभी कही दीया है.

विवेचन—सत्य वोहि है जो कहेते आये हैं कि जाको अचित चित्त शरीर है. वोहिपर ब्रह्म वो शरीरविशिष्ट जगतकारण है. वो कार्यरुप होता है. वामें दोप कोईभी वाकों नहि लगता है. ऐसा अंतर्यामिके प्रकरणमें "संभोगप्राप्ति" सूत्रनें कही आये हैं यहां कार्य कारणके प्रसंगमें वो शंका रहे. शास्त्रकोंहि प्रमाण मानके तदनुगुण तत्व माने तो भी तर्क जो उठे, पुरा न समझे वहांलों संशय रहे. और वाकी निवृत्ति शास्त्र परतंत्र बुद्धितें करनीहि चाहीये. यहांहि जैसे शंका रहेकि जीव एक शरीरका शरीरी है. तो वाकों सुख दुःख कीतनां है तो—सर्व शरीरीकों तो सुख दुःख जीतने शरीर उतनां—ऐसा अनेकगुण हो जावे, वो नहि होनेका हेतुभी कही आये हैं. परंतु वो सूत्रकार तर्कमें आवे ऐसे दृष्टांतके साथ उत्तर देते हैं.

(भोक्त्रापत्त्यधिकरणम्)

सूत्र—भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत्स्याल्लोकवत् ॥१४॥

अर्थ—भोक्ताकों आपत्तिका विभाग नहि रहे ऐसा कहे तो रहेगा लोक सरीख.

विवेचन—एक शरीरमें दो रहेपर एकको वाके भोग लगे एककों नां लगे. ऐसाभी हो सकता है. तैसे लोकमें राजाकोंभी सीपाहि पहेरा. और केदीकों भी; फीर राजा भी गाडीमें सवारी करता है और सीपाहि भी.फीर एक गाडीमें दो बैठे तो कोचमेन बडी फीकरमें—और बैठनेवाला मोज लेता है. असल वार्त्ता यह है कि शरीर कुछ दुःखका हि हेतु नहि है. माकृत कर्मके फलमें परवशतातें मीला शरीरसंयोग. शरीरमें केदी होके वो मतिकुल वर्तन करे. वामें वसनां दुःखद है. परमात्मा स्वेच्छासें मोजसें दयासें जैसे गीनो वैसे. वो शरीरमें रहता है. वाको यथेच्छ छोटा मोटा करता है. आगे कहेंगे कि वोतो और वाकी लीला है. वातें आपहि कारण रहा. वोहि कार्य भया. वामें यह दोप भी नहि आवता ऐसा वेदांतमें बहुत जगे सिद्ध कीया है. वामेंतें एक स्थलका स्मरण कराय देते हैं.

सूत्र—तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः ॥ १५ ॥

अर्थ—" वो अनन्यत्व आरंभण आदि शब्दतें. "

विवेचन—परम कारण ब्रह्मका जगततें अनन्यत्व " आरंभण " आदि शब्द जहां है वहां कहा है—जगत और ब्रह्म कार्य और कारण अन्य नहि, सो अनन्य—दो तो कहेतेहि हो, फेर अन्य नहि सो वस्तु जैसी एक होके दो अवस्थातें दो नाम पावें. जैसे मृत्तिकाका पिंड—वाका उपयोग और करनेंको—कहाकि वाचाका—आरंभ—आलंबन—व्यहवार—उपयोग करनेंको—तो फीर वो वाके साथ कीया जायगा. वो पिंड विकारतें घट नाम पावे. वो मृत्पिंडकी दुसरी अवस्था. वातें पिंड घट दो नाम भये पर जल लाओ कहा जावे. ऐसे वाचाका आरंभ विकार पाके नाम धारे पर मृत्पिंडका होना है. वो विकार नाम पाया

परभी तो वोहि मृत्तिका है. जो पिंडावस्थामें रही. मृत्तिका द्रव्य करके उनका अनन्यत्व है. श्रुतिमें यह पुरा वाक्य.

श्रुति—" यथा सोम्य एकेन मृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्–वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्. "

अर्थ—जैसे हे सोम्य एक मृत्पिंड करके सर्व मृन्मय जो वाणीके आरंभके लीये विकार पाके नाम धारे सर्व ज्ञात हो जाते हैं. मृत्तिका ऐसीहि सत्य है. " वो मृत्तिकाहि है. परंतु पूर्व पिंडावस्था रही. अब घट शरावादि अवस्था पाई–क्या–वाणीका आरंभ " घट तैं जल लाओ. " ऐसा व्यहवार–उपयोग–करनेको जो वामें घटादि नाम रुपतें अव्यक्त रहे वो–व्यक्त भये–ज्यों प्रातःकाल वो सर्व पिंडमें रहे ऐसा मध्यान्ह कालको कही सके, कालभेदतें अवस्था-भेद, और वातें नामरुप भेद, हो सके है. और तापरभी वस्तु करके वो वोहि रहे है ऐसे कार्य कारणकी अनन्यता मृतिकामें दीखा के वहांहि " है सो भया " क्योंकि जो घटशरावादि कारणअवस्थामें मृत्तिकाके पिंडरुपमें अव्यक्त एककाल एक अवस्थामें अग्र रहे सो पीछे अभी देखे तो नामरुपमें व्यक्त भये हैं वो वोहि है जो पूर्व मृत्पिंडरुपमें मृतिका रही. वाकी यह और अवस्था है. वो कारणअवस्था, यह कार्य-अवस्था. फीर अधिक समझनां कि वहां मृतिकामें जो घट शरावादिरुप होनेकी शक्ति पिंडमें नहि होती तो वो व्यक्त दशामें नहि देखपडती. अव्यक्त रही सोतो वोहि शक्ति, एक धर्म जाकी मृत्तिका धर्मी है. वो वातें अप्रथक् है. परंतु एकधर्मीमें अनेक धर्म विविध होते हैं. पुष्पमें रूप रस गंध तैस वो दो अप्रथक् पदार्थ धर्मी धर्म मीलके रहे तो एक-

शक्ति होनेते वा दो शक्तियुक्त व्यक्तदशा पाया भया. क्या वो शक्तियें व्यक्तिमें नामरुप आकारमें आई–जो वामें अव्यक्त रही यह ब्रह्म आगे प्रलय दशामें मृतपिंडकी नांइ जामें घटशरावादि व्यक्त नहि भये–बाहिर नहि आये–परंतु वामें वो है–वो शक्ति है. सूक्ष्मदशामें वो है तैसे यह चित अचित सूक्ष्म दशा पाके ब्रह्ममें कारणदशामें रहेवे तो वो "सतहि" दीख पडता है. और वैसाहि श्रुतिने कहाहै. परंतु वोमेंहि जगत है. प्रलयदशामें वो वामें सूक्ष्मदशा पाई उभय शक्ति वाके अंतर्गत समाई कहो, कि "अव्यक्त" कहो ऐसी न देखपडे वो एकहि देखपडे. ऐसी हो गइ रही. वाते श्रुतिने कहा.

श्रुति—"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्"

अर्थ—हे सोम्य यह आगे सतहि रहा. "यह" कहे तो "जगत"—"आगे" प्रलयकालमें, "सतहि" कारणावस्था रही–वाका नाम सत, ब्रह्म; फीर वाको "एव" हि क्यों! जैसे घट शरावादि पिंडमें मील जानेते पिंडहि रहा कहे तैसे, जैसे कोई सब खुराक नीगल गये तो वो वाके पेटमें रहे पर वोहि रहा कहे–ऐसें सूक्ष्म चित अचित विशिष्टको-"परदेव एक दिव्य नारायण"–आपमें लय करता है. जैसे संध्या समय वृक्षमें पक्षी तैसेंभी कही कहे है. तात्पर्य तब समेटाके आप एकहि दीखता रहा–न कोई धारक, न कोई सहायक एकहि और अद्वितीय ऐसा कही सकते है. मृतपिंडमें तें घट होनेको तो और स्थान, चक्रादि कुंभकारादिकी अपेक्षा है. यह कारणावस्थ ब्रह्मको न उपादानकारण, न निमित्तकारण–न कोई सहकारी कारण चाहीये. वो है–सो सतमेंहि है "सदेव" कहे तो एकहि वस्तु मात्र नहि. वामें प्रथम तो सत्य संकल्पत्व है–वोहि सत्र निमित्तका कारण होता है–सर्व शक्ति है–वो सहकारी कारण होती है. वामें चित्त अचित

मूल अवस्थाएं (प्रकृति त्रिगुण साम्य अवस्थामें—और उनमें जीव शुशुप्ती अवस्थामें) हैं, उनके कर्मभी शेष हैं. यह सर्व आपके शरीरकोंहि उपादानमें लगाता है. सदेव कहे परभी आप स्वरुपतें जैसा के वैसा और यह सर्व युक्त है. वाकाहि नाम "सदेव" तवहि "इदं अग्रे आसीत्" करके याकोंभी वो रहा कहते हैं. परंतु वो प्रकट भिन्न व्यक्त नहि रहा तवहि कहा है. "तद्धेदंतर्ह्यव्याकृतमासीत्"—वो तव "अव्याकृत रहा." फीर "तन्नामरुपाभ्यां व्याक्रियत." वाको नामरुपवाला कीया जाता है. कौन करता है? कौन कर सके ऐसा है. शरीरेंमें तें कोईभी नहि. प्रकृति तो जड और त्रिगुण साम्य है जीव मात्र कारण कलेवर रहित शुशुप्तीमें है. वोहि जागरुक है. जो सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान—आपहि कि स्वाभाविक ज्ञान वल क्रिया शक्ति जो स्वरुप सिद्ध है—वो अवलों काहुका उपयोग नहि करता रहा सो अव वाका उपयोग वो उपाधी ये शरीरपर करता है. संकल्प कीया. वोहि याका प्रवेश. नया प्रवेश नये करणतें क्रिया कुछ न चाहीये. वस चला काम;—की वो त्रिगुण क्षोभ पाये. एक में तें दुसरा तत्व मिश्रण पाके वाके संकल्प सेवामें हि आगे काम होने लगा. तव वा में भी भीतर आप शरीरी होनेतें कहोकि आप में हि आपके शरीर काहि फेरफार होने लगा. भिन्न नामरुप तेज जल आदि भये. अंडभया. वडी देह भयी. आप विश्वरुप भया. वामें असंख्य जीव पडे हैं. उनके कर्मोंके साथ उनमें तें एक वडे योग्यकों कर्मोके अनुसार एक वडी देह आपहिमें आपहि भीतर रहीके वनाके दी. वामें—वो जीवके भीतर भी—तो आप है हि. वातें संकल्परुप प्रवेश करके वो जीव द्वारा वो

प्रविश्य नामरुपे व्याकरवाणि !) वो कोनमें तें भया–कोनमें सब रहा. कोन भया कहे तो—सन्मूला सोम्ये मा सर्वा प्रजा सदाय तना सःप्रतिष्ठा.

यह सर्व प्रजा है. सोम्य ! सतमूल. जीनका–सतमें वो रही है. सतमें फीर लय पाती है. अर्थात् सर्व सतमें और सतसें भयी रही सतहि भया है. वाका शरीर यह सर्व प्रजा जगत और वो वाका आत्मा सर्व सदात्मक "एतदात्म्यमिदंसर्वं" यह सर्व ब्रह्मात्मक है. मृदात्मक—मृन्मय वो सर्व मृतिका एक रहेनेतें वामें रहे धर्मतें वाके हि विकार; यहां विकार प्रकृतिमें और सुख दुःख जीवकों ऐसे नके उनके धर्मांतु गुण उनमें फेरफार करता भया आपहि सर्व भया ∴ सर्व रुप आपके हि एक हि बहुत भया है क्योंकि जीतने चित अचित नाम रुप वाले भये–आपतें वा ब्रह्मातें वा औरतें वो सर्वमें आप अंत शरीरी और वो सर्व आपके शरीर होहि. वो एक बहुरुपका भया. और फीर प्रथक नाम अभिमानतें आपकेलीये धार बैठे है. परंतु सर्व नाम वाकेहि है वातेंहि "मैंभी ब्रह्म" और "तुमभी ब्रह्म" यह सर्व जगत या प्रकार ब्रह्महि भया है" जो कुछ यहां वहां कहां देखा सुना, नहि देखा नहि सुना सो वोहि है. वाको ऐसा जाने तो सर्व ज्ञात भया कि वो सर्व एकहि है यहि प्रकारका वोहि ब्रह्म है, जो कारण रहा वोहि कार्य है. एक अवस्थामें एक कालमें एकहि श्रीमन्नारायण रहा, सोहि अनेक रुपनामवाला दुसरे कालमें दुसरी अवस्थामें भया है. शरीर शक्ति गुण आपमें सर्व पूर्व अव्यक्त रहे, अब व्यक्त है. वस्तुतः दोनों एकहि अनन्यहि है. यह जहां आरंभण आदि शब्दका प्रयोग कीया है वहां छांदोग्य सद्विद्यामें उद्दालक श्वेत केतु पिता पुत्रके संवादमें यह सर्व बहुत ठीक समुझाया है. याते यहां वो "आरंभण शब्दनें वो प्रसंगका स्मरण करादीया है. अब यह अनन्यत्वको सुदृढ

करते हैं. जो वामें यह कुछ न रहे तो देख कहांसे पडे ! असतमेंतें सत कैसे होवे !

सूत्र—“ भावे चोप लब्धेः ” ॥ १६ ॥

अर्थ—भावसें उपलब्धी.

विवेचन—अभाव ताकी अनुपलब्धी, भावकी उपलब्धी, हिरण्य कटकमें है. कटक हिरण्य में है. मृत्तिका, लोहा, शीषा, वामें नहि तो नहि उपलब्ध कटकको सोना कहा जाता है कि यह सोना है. कोनसा जो पूर्व लगडी रहा. वोहि जहां जाका भाव हो वहां वाकी उपलब्धी होती है. नहि तो नहि होगी. अर्थात् कारणअवस्थामें वो सर्वका भी भाव रहा जो कार्यरुप है. स्पष्ट करदेते हैं.

सूत्र—सत्वा च्चापरस्य ॥ १७ ॥

अर्थ—अवरका सत्वतें.

विवेचन—अवर कार्यका कारणमें सत्यत्व होनेंतेहि रहा कहा जाता है जैसे मध्यान्हको कहे. यह सर्व घट शरावादि प्रातःकालमें मृत्तिकाहि रहे तो वो वामें होनेतें कहा गया और रहे तबहि तो देख पडे, भये है, तैसेहि यह जगत सतमें रहा. केवल सत एकहि तत्व–गुण शक्ति शरीररहित नहि रहा. अब और ठोक मारके दृढ करदेते है. क्योंकि श्रुतिमें तो असत रहा ऐसाभी कहा है.

सूत्र—असद् व्यपदेशान्नेति चेन्नधर्मांतरेण वाक्य शेषाद्युक्तेः शब्दांतराच्च ॥ १८ ॥

विवेचन—आगे " असत् रहा " का अर्थ कुछ वास्तविकमें नहि रहा–ऐसा नहि है; क्योंकि घट शरावादिक पूर्व नहि रहे सो क्या? नहि देखपडते रहे–उनकी और अवस्था रही–वो मृत्तिका " धर्मांतर " पाई रही. वाके दो धर्म–एक पिंड होनां, दुसरा घटादि होनां, सो धर्म प्रकट न रहे. मृतिकाभी अवस्था फेर रही. आगेहि " वाक्य है " " सतहि रहा " असतमेंसें सत कैसे होवे? ऐसा प्रश्नहि करके समुझाया है कि असत् कहनेका अर्थ अव्याकृत रहा. " धर्मांतर " सो अवस्थाभेद, युक्ति–घट मृतिका, कटक सुवर्णकी कही, वाक्य शेष कहै कि वामें असतका अर्थ अव्यक्त करनां. फीर और दो दृष्टांत देते हैं.

सूत्र—" पटवच्च " ॥ १९ ॥

अर्थ—" और पट सरीख. "

विवेचन—तंतु, सोहि संग मीलायेकी " पट ", कारण वोहि कार्य–फीर.

सूत्र—" यथा च प्राणादिः " ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे एक वायु प्राण अपान व्यांनादि.

विवेचन—तैसें जगत ब्रह्म कार्य कारणका अनन्यत्व बडे आग्रहसें वेदांत–*सत्यता गुण शक्ति योग्यतापूर्वक सिद्ध करता है तो माना* गयाकि ब्रह्म वैसाहि है. जगतका कारण ब्रह्महि जगतरुप कार्य है इति.

सतहि ब्रह्महि रहा सो गुण, शक्ति, जीव कर्म विनाका आगे रहा ऐसा नहि. वैसा हो तो बडी गडबड हो जावे. वोहि तब तो जीव भया, सो एक नहि असंख्य, वो नर्कमें पडे सडते है सोभी? तब तो व्यासजी कहते है की वो एकहि बहुत बना सो बडा अहित आपका आपनें कीया. वो जीव–" ईतर "–क्या भया? माराहि गया!

इतरव्यपदेशाधिकरणम्

सूत्र—इतर व्यपदेशाद्धिता करणादि दोष प्रसक्तिः ॥ २१ ॥

अर्थ—"इतरके व्यपदेशतें हित अकरण आदि दोषकी प्रसक्ति है."

विवेचन—वो इतर कहे तो जीव भया, जगत भया करीके जगत-तें अनन्य सो वो सततें जो जो ईतर भया सो आपहि भया—माने, तो फीर वो चाहे स्वरुपतें बीगडा, चाहे उपाधीतें, परंतु यादि ब्रह्म व्यतिरिक्त चेतन नहि हैं. एकहि चेतन, ईतर रुपमें, नाममें आया है तो वाने आपतें आपको बांधके खड्डेमें गेरा. वामें आंच लगाइ और क्या क्या बुराइ आपके लीये की है? ऐसा आपका अहित वोभी जो सर्वज्ञ सर्वेश्वर सत्यकाम सत्यसंकल्प है सो तो कभी न करे. वातें यह माननां ठीक नहि. या प्रकार सत जगतका अनन्यत्व नहि है कि वोहि देव मनुष्य आप एक चेतनहि अज्ञता पाईके भया है. ! वैसा क्यों कहे? वेदमें वेदांतमें वडा खुलासा है. ऐसा कंगला एक चेतनहि है. करके वेदांत कहताहि नहि. अनेक नित्य, अणु, चेतनोंका, वो एक परम चेतन विभु स्वामी शेषी शरीरी है. वो ईश्वरको और प्रजा कहां कम है? जो आपहि जेलर, आपहि केदी, और आपहि न्यायाधिश, जड्ज, और महाराजाभी बने—वो सब अणु चेतनोंतें आप बहुत प्रकार अधिक है. उनतें देसेहि तो आपका भेद है. वेदांत पुरा न समझे सो यह शंका उठावे वैसा है. वातें आप समाधान करदेते हैं.

सूत्र—"अधिकं तु भेद निर्देशात्" ॥ २२ ॥

विवेचन—श्रुति–" जो आत्मामें रहा है, आत्मा जाका शरीर है, आत्माका जो नियम न करता है, आत्मा जाको नहि जानता, वो तेरा आत्मा वो अंतर्यामी " अमृत " ऐसा आत्मा परमात्माका भेद–वाकी अधिकता–" फीर नित्य एक चेतन, अनेक नित्य वहु चेतनकों जो चाहे सो देता है. " ऐसे अनेक वचन सुस्पष्ट वोहि वेदांतमें है. वाकों दिव्य देव एक नारायण कहा है. फीर अनादितें प्रकृतिमें वद्ध, कर्मानुगुण असंख्य देहोंमें भ्रमतें असंख्य अणु जो देवादि रहे तोभी वाके सामनें कीटप्राय है–सो कहां ? उनका तारतम्य क्या द्रष्टांततें दीखावे ?

सूत्र—अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥

अर्थ—पथ्थरसरीख वो अघटीत है.

विवेचन—जैसे पथ्थर सो परमेश्वर नहि त्यों जीव सो वो नहि घटता है. अनुभवमें आता है कि कहां हम कंगले, और कहां वो कोटीब्रह्मांडाधिपति श्री हरि ! वो कभी जीव नहि भया, यह ज्यों सत्य है त्यों वाहिनें जगत कीया है यह भी निःसंशय है. वा लीये हमारे कर्तृत्वके उपरसें वाकी कल्पना नहि करनां. वो हमारे सरीख शक्ति सामर्थ्य वाला नहि. हमकों जो चाहीये सो वाकों होनां कुछ जरुरत नहि. वोहि तो वाकी विलक्षणता विशेषता. तवहि तो वो अन्य तत्व, शास्त्रगम्य, अनुमान सिद्ध नहि करके कहा है. नहि तो कही देते की कोटी चक्रवर्ती जैसा ! ! वो वातें नहि है. देखीये शंका समाधान—

उपसंहारदर्शनाधिकरणम्

सूत्र—उपसंहार दर्शनान्नेतिचेन्न क्षीरवद्धि ॥२४॥

अर्थ—" उपसंहारके दर्शननें नहि कहे तो नहि क्षीरसरीख. "

विवेचन—वो एकहि अद्वितीयहि आपमेंतें जगत, कारणमेंतें कार्य वीना चक्र दंड, घटमेंतें पिंड, उपसंहार विना, सामग्री विना, कैसे हो सके ? वा लीये द्रष्टांत–" दुधमेंतें दही होता है " तैसे " हो सके करके असंभवित नहि, जडका विकारी भाग–विकार पाये तो आगे काम आपतें चलता है. और वढके देखीये. फीर जो चेतन हो तब तो

सूत्र–देवादिवदपि लोके ॥ २५ ॥

अर्थ—लोकमें देवोंकी नांई

विवेचन—विश्वामित्रनें चाहा–नया जगत भया–भला, सामान्य ऐसे जड, जीव, अपने सामर्थ्यतें ईतनां कर सकते हैं तो वो क्यों न कर सके ?

कार्य कारणकी अनन्यता तो हैहि. वो आपमेंतें आप ऐसा होताहि है. परंतु वाको शरीर शरीरी विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म है ऐसा माने विना व्यवस्था कीये तो उभय रज्जु पाश सरीख है. वो स्वरुप तैंहि भया माने तब फीर

कृत्स्नप्रसक्त्यधिकरणम्

सूत्र—कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥

अर्थ—सब काम आ जावे. अथवा " निरवयव " शब्दका कोप होवे ॥

विवेचन—मृतिकाकाहि दृष्टांत अक्षरशः लीये तो जैसे मृत्पिंडमेंतें घटादि भये तो वो मृत्पिंड फीर नहि रहता. सब काम आई जाता है. वैसा ब्रह्म जगत हो गया तो फीर वो आप न रहा. जो वो एक-

हि रहा हो तो फीर यह भया कोनमेंतें ! वातेंहि वाको स्वरुपतें जैसाका वैसा पूर्व और अभि मानेके शरीर रहा वो सूक्ष्ममेंतें स्थूल भया. ऐसा वाका अंश वो स्वरुप अंश नहि. परंतु स्वरुपविशिष्ट शरीर अंश–सूक्ष्म स्थूल भया मानेतें न कृत्स्न प्रसक्ति न निरअवयव करके श्रुतिके शब्दका कोप–विरुद्धता–आवेगी. क्योंकि श्रुति वाके स्वरुपकों तो अविकारीहि कहती है. वो वैसा रहीके शरीरद्वाराहि बहुत होता है. ऐसा माननेको आधार ! वो वेसा विलक्षण सकलतें ईतर है करके क्यों माने ! बहुत वेर कही गये चतुःसूत्रीमें भी ' शास्त्र योनी त्वात् ' कहे. वोहि कहते हैं—

सूत्र—श्रुतेस्तु शब्द मूलत्वात् ॥ २७ ॥

अर्थ—श्रुति है तो और शब्द मूल होनेतें.

विवेचन—वामें प्रमाण श्रुतियें वो शब्द प्रमाण है. ब्रह्मकों समझनेकों और प्रमाण नहि माने गये. क्योंकि वो और सरीख नहि. जडमें जडकी विशेषता, चेतनमें चेतनकी–वैसे ब्रह्म आत्मामें वाकी हैहि.

सूत्र—आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॥ २८ ॥

अर्थ—आत्मामें ऐसी विचित्रता हैहि.

विवेचन—और येही सत्य है ऐसाहि अनुभवसिद्ध होगा. शास्त्र कहेता है–वामें कहे उपाय कीये तो–वोहि कहता है–अनुभवसिद्ध येहि यथार्थ है. ऐसा ज्ञान होगा. वोहि ज्ञान है. और सर्व अज्ञान है. वस्तुमात्रमें आपकी विशेषता होती है. जो औरमें नहि होती. पुष्पमें सुगंध और जलमें रसत्व, अग्निमें उष्णता,–और दीपमें प्रकाशता,–वैसे वो परम तत्वकी भी कीतनीहि प्रकार चित अचिततें विलक्षणता है. ऐसा वाका साक्षातकार करनेवाले–परम प्रमाणिक कहेते हैं. शास्त्रमें

कहा वैसा तत्व मानके वामें कही रीति उपाय कीये तो कहा वैसा फल मीलावनेकोहि तो शास्त्रारंभ है. वातें वामें संपूर्ण श्रद्धा आवश्यक हैं. वो परम प्रमाण माने-वोहि आस्तिक वातें ओर तर्क विरुद्ध सो ठीक नहि. तर्कतें भी ईतर मत दुषितहि है येहि शंकातें—

सूत्र—स्वपक्ष दोषा च्च ॥ २९ ॥

अर्थ—स्वपक्ष दोष होनेतें.

विवेचन—सांख्यादि मत ठीक नहि. दोष उनमेंभी येहि जो निरवयव ब्रह्म उपादानकारण कैसे संभवे करके पूछे है. वोहि निरवयव अणुतें यह सर्व प्राकृत आकार होते है करके कैसा कही सकते है! हमकों तो शास्त्र प्रमाण है और वामें कहा है.

सूत्र—सर्वोपेता च प्रदर्शनात् ३० ॥

अर्थ—सर्व युक्त है ऐसा दर्शन होनेतें.

विवेचन—श्रुति कहती है " पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते-स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च " ऐसी वाके स्वरुपसिद्ध स्वाभाविक अनेक उत्कृष्ट शक्ति ज्ञान बल क्रिया है और वो सदा " अपहत पाप्मा विमृत्यु विजरो विशोको विजिगित्सो ऽपिपास " ऐसा सर्व जीवोंतें विलक्षण कहीके वाहिको " सत्यकाम, सत्यसंकल्प " कहेते है. वो पूर्ण करनेके योग्य गुणशक्ति वामें होनिहि चाहीये. फीर " मनोमय प्राण शरीर भारुप सत्यकाम सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकाम सर्वगंध सर्वरस सर्वमिदमभ्यातो वाक्यनादर " आदिहि वाकों कहेते हेहि. वाकी गुणशक्तिका पारहि नाहि.

सूत्र—विकरणत्वान्नेति चेन्न तदुक्तम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—करणविना नहि ऐसा कहे सो वोभी ठीक नहि.

विवेचन—वा ब्धीयेभी कहा गये कि वाको करनेंको हाथ, और देखनेको नेत्र, सूर्यकी अपेक्षा नहि. वानें संकल्पतें श्रष्टी की. फीर कहां बेठके, कोन करणतें? यह नहि रहे तो नहि करसकता, यहशंका वाकों हमारे जैसा माननेके पीछे हो सके.

शास्त्र वाकों हमतें विलक्षण कहीकेहि वो है करके वेसा माननेकोंहि कहता है. वामें वाकों ॥ पश्यत्यचक्षुः सश्रुणोत्यकर्णः अपाणि पादो जवनो गृहिता ॥ आंखविना देखता और कानविना सुनता है. पांउ-विना चलताहै और विना हाथके पकडता है " ऐसाहि समुझावतेहैं तो वैसा तत्व है करके हमको माननाहि चाहिये. ब्रह्मको हाथ पाद आंख कान नहि तो वो अकर्त्ता न देखता न करता है. यह कहेनां वेदांत विरुद्ध है. यह माना तो फीर वो पूर्णकाम है शंका यहहै कि वाकों क्या प्रयोजन सो जगत करे. कार्य करनेमें दो प्रयोजन बुद्धिमान मानते है. एक स्वार्थ कुछ करे. एक परार्थ–सो.

प्रयोजनवत्त्वाधिकरणम्

सूत्र—" प्रयोजन वत्त्वात् " ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रयोजनवाला होनेतें.

विवेचन—कहाहै कि श्रष्टी करनेमें वाकों क्या प्रयोजन! आप पूर्ण है. वातें स्वार्थ नहि ठहरता. परकेल्पीये कीये तो ऐसी गर्भ जरा ज-न्मवाली श्रष्टी क्यों? ऐसा विकल्प ठीक है परंतु वाका वेदांततें उतर देतेहैं कि.

सूत्र—लोकवत्तु लीला कैवल्यम् ३३ ॥

अर्थ—लोक सरीखहि तो केवल लील्या " यह है.

विवेचन—राजा सेनाका पति होयेपर दांनकी सेतरंजमें सेना

बनाकर खेलते है. अनेक भोग परीकर आनंद लेनेके रहेपर गेंदसे खेलते है. ऐसे आप पूर्णकाम रहेपर आपकों औरभी चित अचित सामग्री विशेष है. वाका यथेच्छ उपयोग विना श्रम विना सहाय मात्र संकल्पसें करसके ऐसा सामर्थ्यभी है. तो वाका उपयोग आपकी लीलारुप वो हो, ऐसा क्यों न करे! वामें और मोजकी-भोगकी-अभिवृद्धि-हि-वडाइ-वढती है. कुछ हानिकी वार्त्ता नहि. आपकों हानी न हो तो औरकों तो है? कोइ ब्रह्मा, कोइ पशु फीर ऐसी विषम श्रष्टी फीर वामें आपके कल्याण गुण जो दयासागर आदि वो फीर क्यों कहे जावें! नर्कादिक बनानेवाला निर्दयहि तो ठहरेगा. ऐसा खेल वाकी वडाइको भूषण केसे होगा! वाका उत्तर है कि विना राजाके प्रजा जैसे दुःख पावे, पशुवत वर्ते, तैसे वो नियंता रहीके कर्मफल न देवे तो सर्वकों न्याय न हो, येहि तो दयाभी है. जो निःस्वार्थ सर्वके सहाय, और, शुभके उत्तेजक, दुष्टके पाप निवारक, और सुधारक होता है. जीव है तो उनमें इच्छा करनेका स्वभावभी है. यद्यपि क्या इच्छा कीये तो उत्तम फल, सुख; और क्या कीये तो दुःख महेल जल होनेके लीये सर्व-सामान्य नियमप्रायः जेसे सर्व ज्ञात होनेपर-राज्यमें दोनो एकहि न्यायी राजाके नियमतें यथोचित कर्मफलतें भरे रहतेहै. वामें उनउन जीवकी कृतिकी कदर और आपकों भोग वैभव है. वैसेहि यहां समझ लो. यह राजा वाकेहि क्षुद्र अधिकारी है. सुत्रकार स्पष्ट करते है.

सूत्र—वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति ॥ ३४ ॥

अर्थ—विषमता निर्दयतामें-नहि अपेक्षा होनेतें तैसा कहा है.

विवेचन—वो विषमतामें वा निर्दयतामें लीला नहि मानी जाती है-क्योंकि वो लीलामें आप चाहे वाको राजा-और चाहे वाको तैली-

सो वेहिसाव नहि बनाता–उनके हक, कर्म, योग्यता, तपासके फीर नीमणुक, दराव, प्रारब्ध नीकी कीयेजाते हैं. वैसे वैसी देहमें भेजे जाते हैं–फीर वहां जैसी नयी नोकरी वैसा फीर जन्ममें चढनां वढनां पडनां होता है. येहि राजा राज्य कायदा कर्मका हिसाव है.

श्रुतिः ॥" साधुकारी साधु भवति, पापकारी पापो भवति. पुण्यः पुण्येनणा कर्म भवति, पापः पापेन कर्मणा," यह नियमतें कोन अज्ञात है ? परमेश्वर ऐसे न्याय दयातें जगत चलावता है वो निःस्वार्थ उपकारी सहायी है.

परंतु वोतो संसार चल गये पीछेकी वार्त्ता है. जब कुछ नहि रहा. ब्रह्महि रहा. एक अद्वितीय तव कहां कोइ जीव वा उनके कर्म रहे ? वोतो सब पीछे भये. ऐसा कहे तो यह ठीक है. परंतु वो स्थिति वो प्रलयके पूर्वभी ऐसीहि सृष्टी रही ऐसा वोहि वाक्यमें है. सदेव सोम्ये दमग्र मासीत् ॥ एकमेवाद्वितीयम् ॥ इदम् अग्रे आसीत् ॥ यह आगे रहा. करकेहि कहा. सो कब ? जब सदेव ऐकमेव अद्वितीय देख पडता रहा. वाके आगेके कालमें और "इदम्" रहा कहेतो " ऐसाहि जगत" कहे तो सर्व देव ऋषी मनुष्य कीटपतंग उनकी कृति रीतिभोग फल, क्योंकि प्रलय समय सर्व मुक्ति पाइ नहि जाते है. जब प्रलय होता है तब जेसे जन अभी मरते हैं. ऐसेहि विविध स्थिति छोडके मरते हैं. वडी मरकीकी नांइ, सब साथहि मरजाते हैं. तोभी क्या? सर्वके विविध कर्म शेष है हि, तो फीर जैसे शालाके अभ्यासी वा न्यायाधिशकी कोर्ट के लोक जहांसे छोडा वहांसे वो स्थितिमें वो जब कोर्ट शाला खुलेतब उनमें फीर जीनकों नयी चढती वा उतरती स्थीतिकी योग्यता भयी हो तो वो वहांतें आरंभ करते हैं. वैसे प्रलयमेंतें जगत हो तब जीव और उनके शेष कर्म सर्व है. उनके अनुगुण परमात्मा उनकों वडे छोटे बनाता है. वातें नयी सृष्टी समय विषमता निर्दयताका प्रसंग नहि

याकों और स्पष्ट करते हैं कि यह संसार प्रवाहरुप है. अनादितें है.

सूत्र—नकर्माविभागादितिचेन्नानादित्वादुपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३५ ॥

अर्थः—कर्मके विभाग नहि ऐसा नहि. अनादि होनेतें वोहि ठीक है. और वैसा दीखता है.

विवेचन--कर्मके विभाग सृष्टीसमय नहि नये भये, वो अनादितें है. कबतें? जबतें जीव है तबतें वो कबतें. प्रकृतिमें बद्ध है? तीलमेंतेल कबतें है?काष्टमें अग्नि कबतें है? अब मुक्त होवेंगे तब संबंध छुटेगा. यह ठीक है. क्योंकि दो वस्तु परस्पर लगी है. छील्टा और तील; छाछ और घ्रतकी नाई भिन्न हो सकतें हैं. परंतु संयोग दुध घृत तील तेलवत् अनादितें है. तबहि तो मात्र हमतें जगत नहि भया--व--हम विना कभी ईश्वर रहा--न ईश्वर आपहि कभी भी यह जगतमें जीव वा जडरुप भया है--करके ठीक ठहरता है वो उभय शरीर विशिष्टकाहि नाम ब्रह्म--वोहि ब्रह्मका पूरा स्वरुप और वो खुद शरीरमें आपके ऐसे सूक्ष्म विशिष्ट शरीर कारणमेंतें कार्य करनेकी सर्व आपके शरीरके प्रत्येक जीव अंश और अचित अंशकी स्थिति प्रवृत्ति आपके वश आपके नियमके वश रखनेकी है. वो वो गुण शक्ति शरीरकों लेके आप आनंदमय निर्बाध रहीके यथेच्छ सर्व करता हो रहेता है समेट जाता है. ऐसा जगतकारण जो एकहि वोहि कार्य--ऐसा अनन्य होनेको सर्वविध कारण हो सके ऐसे सर्व धर्म वामें घटते हैं और है.

सूत्र—सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ—वामें सर्व धर्म घटते हैं;

विवेचन—और वातें सांख्यका कहेनां ठीक नहि वेदांतका कहाहि सिद्ध भया. वेदांतका अर्थ सांख्य पुरा नहि समझा वातें जीतनां विरुद्ध

कइ उतनां अप्रमाण खास सूत्रतें कही गये की वेदावलंबी वा वेद बाह्य—वाके विरुद्ध जो तर्कसें सिद्धांत ठहरावे वो सत्य नहि होहि सकता परंतु वैसे शास्त्रोंको मतोंको—मुख्य मुख्यको—लेके प्रत्येककी तपास अव द्वितीय पादमें करते भये. अंत सिद्धांत फीर कहेंगे.

—यहां द्वितीयाध्यायका प्रथमपाद इति—

द्वितीयाध्याय द्वितीयपाद.

प्रथम पादमें इतर मतका निरसन स्वपक्ष स्थापन करनेको कीया; अब वाकी और पुष्टीके लीये वो पर पक्षोंका प्रतिक्षेप भी करदेते हैं कि वो स्वतंत्र भी ठीक नहि. यह समुझ गये तो फीर उनमें क्या होगा. ऐसा मोहहि न रहे. न उनकी कोइ युक्तितें भ्रम उठे. सब समाधान होनेतें ब्रह्मका जो ज्ञान वेदांततें भया है वो सुदृढ रहे. दोनों बातें सांख्यमें वेदांततें विरुद्ध है. जगतकर्त्ता इश्वर और पुरुषोंतें विशेष नहि. न कोइ पुरुष जगतका कर्त्ता है. और जगत जो भया है सो प्रकृतितें प्रकृतिमेंतें. तात्पर्य की उनका इश्वर प्रकृतिहि है. वाहिमें कर्तृत्व वाहिमेंतें सर्व भया. वाहिमें लय होता है. वो अनादि मूलतत्त्व वाका नाम प्रकृति—वो त्रिगुण है. सत्व रज तम—वो स्वतः अपरिमित सर्वत्र है. उनमें विषयता होके आगे महत्तत्व, अहंकार, तीन प्रकार उनके मिश्रणतें पंच महाभूत, और तन्मात्रा, और एकादश इन्द्रीयें—ऐसे एकमेंतें प्रकृति महत्तत्व, अहंकार, एकादश इन्द्रीयें, और पांच महाभूत, और पांच उनके गुण, ऐसे चोवीश तत्त्व वामेंतें भये. फीर सब जगत वसाहि है. और जो “ पुरुष ” और तत्त्व है वो असंख्य, प्रति शरीर भिन्न, सर्वगत, अनादितें अनंत कालपर्यंत रहेनेवाले;

परंतु उनमें कर्तृत्व नहि. न भोक्तृत्व भी है. प्रकृतिके साथ रहेनेतें जैसे मणिकी रक्तता–स्फटीकमें वो पडा हो तो तब वो स्फटीक भूमिमें न होके—दीखती है तैसा वामें कर्तृत्व प्रकृतिके पास होनेतें अध्यस्त है. और वाते वो पुरुष आपका आपमें नहि रहा धर्म मोहतें मानता है. वातें आपको कर्त्ता भोक्ता समझता—कर्म करता, फल भोगता, संसारमें वहेता है. वो अज्ञान रहे वहांलो भोगे, वो गया आपका और प्रकृतिके स्वरुप स्वभावका ज्ञान–विवेक भया कि मोक्ष. वा लीये प्रत्यक्ष अनुमान–और कपिलाचार्यका कहा, " आगम " भी प्रमाण गीनते हैं. पुरुष तो मात्र है उतनीहि वार्त्ता असल है. बाकी सर्व प्रधानतेंहि उनका मत उनके खुलासे हैं. वातें वो प्रधान जैसा वो ठहराते हैं वैसा नहि. इतनां सिद्ध कीये तो उनका मत नहि रही सकता. वातें श्री वेदव्यास स्वामी प्रथम जड, वोहि पकडके आरंभ करते हैं.

(रचनानुपपत्त्यधिकरणम्)

सूत्र—रचनानुपपत्ते श्च नानुमानं प्रवृत्ते श्च ॥१॥

अर्थ—रचना नहि घटती है. अनुमान नहि. और प्रवृत्ति.

विवेचन—" अनुमान " कहे तो " प्रकृति " प्रधान जाकों वो कर्त्ता ठहराते हैं. वो ठीक नहि है. विचित्र प्रकारे जो रचना दीखती है, वो जड ऐसी रचनावाली आपतें हो जावे. यह संभव नाहि. वो मान लेके जैसी वैसीभी बन गयी तोभी फीर आगे " प्रवृत्ति " भीतो जडतें नहि बनती है. जगतमें नित्य देखते हैं कि कोइभी वस्तुके स्वभावका ज्ञान पुरुष जब पाकर वा परकृति करता है तब वो जड काष्ठादिकतें रथादि और पाषाणादितें प्रासादादि बनते हैं. आपसें लकडेके रथ, वा पथ्थरके महेल नहि बनते हैं. जैसे यह सूर्य चंद्र तारे,

और पृथ्वीपर भी तो मनुष्य वृक्ष पशुभी कोइ चेतनकी विचित्र अचिं-त्य कारीगिरीकाहि परिणाम होनां चाहिये. आपतें पथ्थरमेंतें मूर्त्तियोंकी रचना नहि होती. सुवर्णतें कटकादि नहि होते. और बडा विरोध यह अचित " प्रवृत्ति " रथ बना तो खडाहि रहेगा. चेतन विना चलेगा नहि. वैसे त्यों जो यह सर्व कर रहे हैं. वोभी जडका धर्म है. जीवका —चेतनका नहि. जड करता और जड भोगता है. ऐसा कहे तो फीर तो जीव हैहि नहि, यों कहेनांहि भया. उतनांहि नहि. जो आपतें नहि करते, नहि भोगते, सदा भोगरुपहि है उनके जो ज्ञाता कर्त्ता भोक्ता है सो भिन्न है. वो देहमें आते जाते हैं. यह पशुभी समझते है. ऐसी प्रत्यक्ष अनुमानकी बाततें भी विरुद्ध यह कहनां है. तात्पर्य प्रधानतें "रचना" और " प्रवृत्ति " उभय कहनां प्रत्यक्ष अनुमानतेंहि रथ पथ्थरके दृष्टांत और हम और रथके दृष्टांततेंहि विरुद्ध है. हम रथ बनाये तो बनता है. और चलाये तब चलता है. चर अचर सर्वमें कर्तृत्व भोक्तृत्व जाका नहि. वाकाहि कहेनां और जाका है वाका नहि कहेनां येहि भ्रम अज्ञा-न वो ठहेरानेको जो कुतर्क करे वो सर्व अज्ञानमूलक घुघु जगतमें सूर्य नहि ठहरानेका प्रयास करे ऐसा है.

जब घंटापथ उनके विरुद्ध है. नियम मात्र उनके खंडनमें प्रवृत्त है. तब वो फीर अपवाद सरीख कोई दृष्टांत ढुंढनेका प्रयास करते है. वो पयजलका दृष्टांत देतेहैं कि दुधमेंतें दहि, जलमेंतें वृक्षोंमें रस, आ-पतें होता है. वाका उत्तर वोहि है. जो सिद्ध कर चूकेहें कि चेतन विना प्रकृति हैहि नहि. स्वतंत्र वाका स्वरुप स्थितिहि नहि. फीर प्रवृत्ति कैसी ! वो स्मरण करावते हैं. प्रश्नोत्तर दोनुं है.

सूत्र—पयोंबुवच्चेत्तत्रापि ॥ २ ॥

अर्थ—दूध जल सरीख कहे तो वहांभी ॥

विवेचन—मात्र दुधतें दही—वा जलतें रस बना कहे तो उनकी बात नहि बन जाती. उनकों तो प्रकृतिमेंतें विना ईश्वरके जगत बनाना है; सो वहां त्रिगुण साम्यतो मूल लेते हैं. और फीर वो तीन गुण वैसे कई कालपर्यंत तो पडे रहे. फीर उनमें विषमता भयी. परस्पर मिश्रण भया. तब आगे काम बढा. ऐसा कहेनां है सो आपसें होता है; ऐसा स्थापन यह दृष्टांततें करनां. चहाते हैं. सो नहि बनता. क्योंकि जो वो त्रिगुणसाम्य रहे तो वैसेहि रहे. फीर वो अमुक काल ऐसे, और अमुक काल तैसे, यह नियमका नियंता कोन ? एकमें परस्पर विरुद्ध स्वभाव कैसे संभवे ! त्यों जो जल दुधका दृष्टांत देते हैं वामें भी चतुर कर्त्ता गुप्त है. वोहि कर रहा है. वो नहि करनेको चहता है. तबलों वोहि प्रकृति त्रिगुणसाम्यहि क्यों पडी रहती है. वो स्थितिमेंहि कैसे आवती है ! यह जगत प्रलयकी व्यवस्था तो प्रकृतिमेंतें सब आपतें होता है कहे तो नहि बनती. दुधमेंतें दही होता है. वहांलों ठीक. हम माझको वामें नहि देखतें हैं. परंतु फीर वो दहीका दुध हो जाता देखा क्या ?! वो दहीमेंतें फीर कुछ और फीर कुछ और. ऐसे प्रकृतिमेंते चोवीश क्या करोंडो विकार होयाहि करे. फीर वो यथाक्रमसमे ढाके जैसे छाछ घ्रत मीलके आपतें दुध हो जानां असंभवित, तैसे यह सर्व विकार फीर एकत्र होके त्रिगुणसाम्य होता है. ऐसा माननेपर वाका कर्त्ता वो आपहि है कहेते है. और वामें काहुकी अपेक्षा नहि. अनपेक्ष होता है कहेते हैं. तो फीर वो न्यायसें तो यह सर्ग होके फीर प्रलय—फीर सर्ग यह होनां नहि बनतां. सर्ग विना प्रतिसर्गकी—व्यवस्था नहि बनती वो अनवस्था होती है. वोहि कहाकि—

सूत्र—व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॥ ३ ॥

अर्थ—काहुकी अपेक्षा नहि होनेतें व्यतिरेकनें अनवस्थामें.

विवेचन—कोइ करता नहि तो फीर सर्ग प्रतिसर्ग, यह व्यतिरेक नहि बनता. जैसाका तैसा चलाहि जावे प्रलयहि, नहो, कि जा करके फीर दुसरी वेर सर्ग—उत्पत्तिका प्रसंगहि आवे ! हमारे तो जल दुधकी नांइ सदा प्रकृतिमें इश्वर हैहि, सो जब चाहता है तब सृष्टी प्रलय करता है. वातें प्रकृतिकी यह त्रिविध स्थिति होती है. सो आपतें नहि होती. और वातें अपेक्षा है हि. वो इश्वर माने तो बराबर व्यवस्था हो जाती है. अनवस्था नहि रहती.

हम तो कहेते हैं कि प्रकृतिमें जो एक अवस्थामेंतें दुसरी अवस्थामें आनेका स्वभाव अभी देखते हे वो भी चेतन संग नहोतो नहि बनता. और फेर वामें इश्वरका संकल्प तीसरा. वा लीये एक दृष्टांत यहां धरके ठीक समुझाते हैं.

सूत्र—अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—अन्यत्र अभाव होनेतें नहि तृण आदि सरीख.

विवेचन—जहां चेतन नहि वहां ऐसा होता नहि है. " अन्यत्र अभाव है. चेतन है वहांहि भाव है तृणतें दुध बनता है, सो गौ तृणपावती है तब वो दुध होता है. नालीकेर जल पावता है वो रस होता है. सो उनमें चेतन है. वो करके वो गये तो प्रकृति मात्र फीर रहे तो न गौ तृण पावे. न दुध भी बन जावे. उतनांहि नहि. वो फीर गौहि एक विचित्र आकार श्रष्टानें कीया है. जाके संकल्पसें वामें दुध बनता है. बेल घास पायेपरभी दुध नाहि बनता. ऐसा प्रकृतिका और रुपमें दोनां स्वतंत्र वाके वश नांहि. न चेतन विना वामेंतें होहिभी सकता है. वो गायतें पाये तृणका दुध करनेवाला प्राणहि है. न शरीर न तृण है. दोना रहे पर बेलमें नहि होता वेसेहि दुधमेंतें दही करनेंमेंभी वो है हि. सर्व कर्त्ताकी हि कारीगरी है.-प्रकृति वो सामग्री है. वोभी वाका

शरीर होके वाके धारनेतें सांख्यभी प्रकृति पुरुषका संयोगतो स्वीकारते हैं. परंतु वो अंध पंगु न्यायतें एकमें चलनेकी शक्ति देखनेकी नहि. जैसे प्रकृति कर सके. परंतु ज्ञान नहि. दुसरा पंगु जाने सही. परंतु करने चलनेकी शक्ति नहि. वो दोनों एकके स्कंधपें दुसरा बैठे तो अंध चले. और पंगु मार्ग दीखावे तैसे प्रकृति करे और पुरुष करावे. ऐसा दोनोंका संयोग एक घेर कहींके परस्पर कर्तृत्व ज्ञातृत्वके धर्म एक दुसरेको मीले हैं. एक दुसरेमें अध्यस्त हैं. करके कहेते हैं परंतु वहां भी उनकी प्रतिज्ञा तुट जाती है. पुरुषमें तीन कर्तृत्व है. न ज्ञातृत्व है. फीर वो प्रकृतिमें आवे कहांसे ! अंधपंगु एकका भी गुन वामें न स्वीकारके फीर यह बोलनां कैसे बने ? उनकों वो दृष्टांत कामका नहि. क्योंकि पुरुषमें तो कोई गुण वो कहेहि नहि. मात्र संनिधितें बननेकों लोह चुंबकका दृष्टांत दीये तोभी वातें वोहि वात अंत रहेगी कि चुंबकमें आकर्षणशक्ति है. और वाकाहि कर्तृत्व और लोहका अकर्तृत्व ऐसा स्वीकारे तो वात बने. वातें विरुद्ध लोह स्थान प्रकृतिमें कर्तृत्व ओर चुंबकका अकर्तृत्व कहेनां है वो कहां दृष्टांत और कहां सिद्धांत- प्रकृतिका कर्तृत्व हो तोभी लोह पुरुष अधिकारीको विकारी वो बनावे तब फीर प्रतिज्ञाभंगहि वोहि सूत्रकार कहेते हैं—

सूत्र—पुरुषाश्म वदितिचेत्तथापि ॥ ५ ॥

अर्थ—पुरुष अश्मवत् कहे तो वहां भी.

विवेचन—पुरुष सो वोहि दो अंध पंगु और अस्म पथ्थर सो लोहचुंबक सा एक मणी है. वाका नाम " अयस्कांत " बोलते हैं. वहां भी दोनोंमें शक्तिये और जा पुरुषकों अकर्त्ता ठहराते हैं वाकाहि कर्तृत्व सिद्ध होता है. मात्र संनिधि हेतु नहि. परंतु वामेंतें कर्तृत्व शक्ति हेतु है. फीर भी जो जपाकुसुमवत् बनी रहती हो तो बनीहि रहे.

फीर नित्य मुक्त है, वो नित्य बद्ध है. और मुक्त होंगे यह बात नहि बन सकती. वो कोटी तो निरुत्तरहि है.

वैसेहि सृष्टी प्रलयका भी बननां गुणोंकी कमती वढतीतें मीश्रणतें सृष्टी और विषमता एक ज्यादे दुसरा कमती जैसे पंचीकरणमें महाभूत है, तैसे और फीर उनकी साम्यता सब छुटे पडके हो रहे तब प्रलय तो यह तीन गुणोका वो करनेवाला कोन ! करनेवाला एकका अंगीत्व प्राधान्य और अन्यका अंगत्व स्वीकारनां पडेगा. क्योंकि और चोथा कोइ हेतु कहेते-नहि कि जो कर्त्ता हो. यह समानता विषमता करनेवाला होहि नहि, तो—

सूत्र—अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ॥

अर्थ—अंगीत्व नहि बनता है वातें ॥

विवेचन—तीनुं प्रथम तो अपारिमित कहेते है. फीर वो परिमित भये विना एकतें दुसरा मीले कैसे ! और न्युन अधिक वो न बने तो प्रलयहि बना रहे. उनमेंतें कछु हो भी नां सके. तो फीर तीनोंकी समानता कही है. फीर वो अपरिमितताभी मांनके तो उनमेंहि एककी विशेषता अन्यकी न्युनता परिमितता भी ऐसा अंगी अंगभाव नहि बनता. और विषमभाव है, स्विकारे तो फीर सदा जगत बना रहेगा. फीर वामेंतें समानता-बननी संभव नहि. जो अंगी है वाका जो अंग बढा है. वाकों कमती कोन करेगा ? और वो भये विना प्रलय नहि-जो वो मानते हैकि होता है. चाहियेहि कोइ और जो उनके स्वभावकों समुझता हो-जाके वो परतंत्र हो सो वो समझपूर्वक जब सृष्टी करनी तब वैसा, प्रलय करनां-तब वैसा उनमें फेरफार कीया करे वो तो प्रधानमें ज्ञान शक्ति मानते नहि. न चेतनमें मानते हैं.

सूत्र—अन्यथाऽनुमित्तौ च शशक्ति वियोगात्॥७॥

अर्थ—अन्यथा अनुमान करनेंमें उभयके लीये ज्ञान शक्ति नहि माननेंतें.

विवेचन—यह दोष रहेते है, उनके कहे स्वभाववाले प्रधान पुरुष माननेंतें वो जगतकारण माननेंमें बन नहि पडती. दोष ऐसे ऐसे आवते है जो अनिवार्य है वातें वो जो कहेते है सो कहेनां ठीक नहि. ऐसेहि माननां पडेगा. और वैसाहि है.

सूत्र—अभ्युगमेऽप्यर्था भावात् ॥ ८ ॥

अर्थ—मान लीये तोभी अर्थका अभाव होनेंतें.

विवेचन—वो माननां एक और हेतुतें भी ठीक नहि ठहरता. प्रकृति कोनके लीये है ! यह सर्व प्रकारके भोग, अपवर्ग, पुरुषकों देनेको ! ऐसा कहे तो पुरुष कर्त्ता, भोक्ता ठहरा. नहि तो वो कोनके अर्थ ! यह सर्व प्रकार बनती है, वाका उत्तर नहि. अर्थात् प्रकृति ऐसी होती है. माने पर भी आपकों प्रयोजन नहि. वातें यह सर्व वृथा व्यापार ठहरता है. वोहि फीर कहेते है वो पुरुषके अर्थ है. वो प्रथम पुरुषके अर्थ है. वो प्रथम पुरुषकों चेतन मात्र निष्क्रिय निर्विकार निर्मल अर्थात् सदा मुक्त कहीके यह तो पुरुषकी व्याख्या. वो सदा ऐसाहि रहता है. यह प्रतिज्ञा करके–वाकोंहि सद्य तोडके कहेनांकि वाकों प्रकृतिके दर्शनतें भोग, और वाके अदर्शनतें मोक्ष. तो फीर वो मुक्त रहा यह कहां रहा ! वो नहि कर्त्ता भोक्ता–यह भी कहां भया ! अज्ञानी है तो नित्य मुक्त नहि. नित्य मुक्त है तो अज्ञानी नहि. एकके लीये दो विरुद्ध व्याख्या प्रकृतिकी संनिधितें वाके परिणाममें सुख दुःख भोग है तो दोनों तत्व नित्य है. तो नित्य यह परिणाम भी है. मुक्ति हैहि नहि.

सूत्र—विप्रतिषेधाच्चा समञ्जसम् ॥ ९ ॥

अर्थ—विप्रतिषेध होनेतें यह ठीक नहि है.

विवेचन—ऐसा परस्पर विरुद्ध असंभवित कथन, तत्व, स्वरुप, बंधन, मुक्ति, जगत, प्रलय, प्रकरण जो मुख्य विषय हैं उनमेंहि होनेतें यह सांख्यमत असमंजस है अच्छा नहि है कहीके अंत ठेराव दे दीया.

सांख्य मतमें प्रकृतिके चोवीश तत्व वो त्रिगुणसाम्य मूलरुप अनादि और सर्ग प्रतिसर्ग यथाक्रम चले जानेतें वैसीहि वो बनती रहेगी. ऐसी नित्य विकारी स्वभाववाली सो एक तत्व, और वातें विलक्षण प्रतिशरीर भिन्न असंख्य जीव वर्ग चेतन जो अनादितें प्रकृतिमें मोहे हैं. परंतु फीर नित्य मुक्त वातें भिन्न होके वो सदा रही सकते है. उतनां वेदांतानुकुल है. फीर सर्व प्रकृतिमेंहि कर्तृत्व कारणत्व घटाके पुरुषकोंहि नपुंसक बनाते है. वहां परम पुरुष कहां! वातें वो मतका स्वीकार व्यासजी नहि करते है. वेसेहि और. अब न्यायशास्त्र आया. वो फीर जगतकी उत्पत्ति परमाणुओंतें मानते है. दो अणु मीले तो "द्वणुक" "ह्रस्वपरिमंडल" तीन मीले "त्र्यणुक" वो कुछ "महत् दीर्घ" बना—वेसे सर्षप और बहुत अणुओंका समुह सो मेरु, और वैसेंहि बहुत जलके कणका समुह सो सागर तेसे कहेतेहि हैकिं

(महद्दीर्घाधिकरणम्)

सूत्र—महद्दीर्घ वद्वा ह्रस्व परिमंडलाभ्याम् ॥१०॥

अर्थ—ह्रस्व अथवा परिमंडलतें महत्त दीर्घवत् होनांभी असमंजस है.

विवेचन—यह तो सर्वत्र समुझेहि जानां. वो जो कहेते हैकि अणुओंके समुहतें सर्व बनता है. वो ठीक नहि है. ऐसे अणुओंका समुह प्रकृति नहि है. आकाशतें आगे फीर सूक्ष्म " अव्यक्त " तम " अक्षर " करके कोइभी प्रत्यक्ष अनुमानतें समझा जावे वैसा मूल पदार्थ इश्वर जीवकी नांइ वोभी शास्त्रगम्य है. ऐसा वेदांतका निर्णय न्याय, युक्ति कहे तो प्रत्यक्षके उपरतें अनुमान लगाके समुझाने लगेंगे. परंतु जैसे सांख्यनें आदि व्याख्या जो प्रकृति पुरुषकी बांधी—वातें आरंभहि नहि ठीक संभवता वोहि पकड व्यासजी यहांभी लाये हैकि उनका कहनां " अणुओंके संमेलनतें सब होता हैं. " करके सो अभीकी वडी वातोंकों छोडके जब मूल आरंभमें वीचारतें हैं—तब संभवित नहि बन सकता. और जब आरंभहि नहि बनता तो फीर आगे क्यों वढे ! उन्होंनें अनेक प्रकारके असंख्य परमाणु माने हैं. उनकों साकार नहि माने. निरवयव माने है. और जो " पट " में " तंतु " देखते है. मृतिकामें रजकण है. वो तो " छे पार्श्व वाले " वाके मूल वाकी ऐसे " प्रथीमा " लौं चले जावेकिं जाका फीर मूल नहि वैसे " परमाणु " में गये तो वो कैसा भी छोटा—परंतु रुप—आकार—अवयव—अंश नहि माने. तो जीनका रुप अवयव नहि, वैसे कोटी मीले तो वो मिश्रण भी वैसाहि अरुप निरवयव बननां चाहीये. प्रथमके जो है उनकों तो अरुप षड् पार्श्व वाले तो नहि है. ऐसा कहेते है—कारण वैसा कार्य—सो ऐसा तो यह नहि. सब अणु पार्श्ववालेहि देख पडते हैं तो उनके कारण भी वैसेहि होने चाहीये. फीर वो तो फीर उनका विलक्षणत्व शास्त्रगम्य तो कही नहि सकते, वातें प्रत्यक्षतें सिद्ध करनां चाहीये. तो फीर वो तो ऐसे अणुका समुह न कही के एकहि तत्व त्रिगुणसाम्य मूलप्रकृति स्विकार तब बने, और बादमें फीर शास्त्र माननां पडेगा सो उनका मत नहि. वोहि तो उनकी भिन्नता है. वो

परमाणुवादी तो कहावतेहि हैं. और वो वाद ऐसा मूल रहितहि विचार कीये तो ठहरता है. अरूपतें रुप वनानां, हवाके महेल वनानां चहते है. फीर उनका ऐसे संयोग वियोगतें संसार प्रलय; वामें अनेक चेतन तो वो मानते हैं. उनके देह उनके भोगके लीये भी मानते है. वो भोग कर्मके फलभी मानते है. वाके भी आरंभतें पकडे तो उनकी प्रक्रिया उत्पन्नहि नहि होहि सकती है.

सूत्र—"उभयथाऽपि न कर्मातस्तदभावः ॥११॥

अर्थ—दोनों प्रकारतें उनतें कर्म नहि वाका अभाव है.

विवेचन—परमाणु कारणवादमें परमाणुमें रहे. कर्मतें उनका संयोग द्वयणुक दो भेली भये, तीन, चार, फीर ऐसे अनेकके संयोगतें वडा शरीर-यों वो कहेते हैं.

जगत भरकी उत्पत्ति परमाणुगत अदृष्ट करके है. अब वहांभी विचारते हैंकि वो परमाणुगत कर्म स्वगत अदृष्टकारी हैकि आत्मगत! एकमेंभी नहि संभवता. पुण्य पाप क्षेत्रज्ञ करता है. और वाका अदृष्ट परमाणुकों जा लगे, वामें रहेता है कहेते है. यह कैसे वन सके? पावे एक और भोगे दुसरा ऐसा ठहरे आत्मगत कहे तो परमाणुगत कर्मकी उत्पत्तिका हेतुत्व नहि वनता. फीर जो बीज जामें नहि वामेंतें वाके अंकुर ऊठनां कैसा? फीर जहां रहो वहां रखे तो भी वो नित्य रहे नेतें नित्य सर्गका प्रसंग रहेगा. और वैसा नित्य सर्गभी वो नहि मानते हैं. सृष्टी प्रलय होता है यों मानतें हैं. सृष्टी समय वो विपाक पायेतें फल देते हैं एसा वो कहेते हैं तो एक कालावच्छिन्न ऐसा कैसा सर्वे कर्मका विपाक काल आ जावे जो प्रलय हो जाता है! वो ईश्वरकी ईच्छासें होता है. ऐसा नियंता स्वतंत्र सर्वेश्वर एक है करके स्वीकार करे तो वो प्रत्यक्ष अनुमानका विपय नहि. वाका सिद्ध कर-

नेकों फीर वोहि पदार्थावलंबी शास्त्र प्रमाण स्वीकारनां होगा. और वो प्रमाण भया तो फीर यह वाके विरुद्ध परमाणुवाद रहेगाहि नहि. फीर सब वाके खास सिद्धांतहि सत्य कबुल न होंगे ऐसे अणुसें उत्पत्ति ज्यों नहि संभवति, वैसे उनमें कर्म रहते है. यह माननांभी नहि ठीक रहेता.

अब तीसरी उनकी विशेषता " समवाय " एक नया संबंध खडा करनेमें है. धर्मीमें धर्म समवाय संबंधसें रहेते है करते है एकमें दुसरेको रहेनेको तीसरी कछु चाहीये. वाका नाम समवाय. वो धर्मीमें धर्मको राखता है एसा कहेनेके साथहि प्रश्न होगाकि वोभी तो कुछ धर्मीतें अन्यहि है तो वाको धर्मीके संग राखनेकाभी हेतु होनां चाहीये जो वो तो रहताहि है कहो तो धर्म वा विना रहताहि है कहेनेमें क्या हानी है ? बीचमें वाको नया खडा कीये तो फीर वोहि न्याय वाको लागनेतें वाका हेतु फीर वो हेतुका हेतु एसी अनवस्था आवेगी. वो समवाय संबंध फीर कोनतें रहेता है. वो कोनतें पूछे तो वो तो हैहि कहेनांहि होगा. अनादिसिद्ध अपृथक् सिद्ध कहेंगे तो फीर धर्मीमें धर्मस्वतः हैहि व्यक्तिमें जाती हैहि. वाकोंहि अपृथक् सिद्ध अनादि उनका स्वरुपहि ऐसा माननां और सुगम है. वाको फीर बीचमें लाके लगानां क्यों ? हैहि जो वस्तु वीना संबंध करावने वालेके और के साथ नहि होहि सकती तो वो संबंधका संबंध करावने वाला कोन वाका कोन ऐसेहि आगे अनवस्था है.

सूत्र—समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ १२ ॥

अर्थ—समवायको स्विकारनेतेंभी समान होनेतें अनवस्थित है.

विवेचन—जो समवायका स्विकार करते हैं. वातें वो मत ठीक

नहि. क्योंकि वो विना हेतुके वस्तुके साथ रहे तो वो वस्तुका धर्महि वाके साथ क्यों न रहे? प्रश्न कीये गये तो समान अनवस्था समवायकोभी है. धर्मके साथ होनेमें समवाय चाहीयेतो समवायको साथ होनेमें कोन? वाको साथ होनेमें कोन ऐसे कभी समवाय संबंध तो नित्य है, कहेतो.

सूत्र—नित्यत्वमेव च भावात् ॥ १३ ॥

अर्थ—नित्यत्व हेहि कहे तो भाव होनेतें.

विवेचन—वो संबंध नित्य कहे. फीर ऐसा नया तत्व संबंध करावनेवाला मानके जगत बनावे तो जगतकाभी नित्यत्व फीर आ जाता है. जगत अनित्य है. वातें समवाय नित्यभी नहि ठहरेगा. यहभी उनके सिद्धांतकों दुपण है.

मुख्यतो वोहि वार्त्ता है कि उनकों अणुओंकों रुपादिवाले मानने पडेंगेहि. और वैसा माननां संभवित होता नहि. क्यों? सो अब खोलके कहेते है. मूलकोहि छेद देते है.

सूत्र—रुपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ॥१४॥

अर्थ—रुपादिवाले होनेतें और वातें विरुद्ध दर्शनतें.

विवेचन—वो चार विधके परमाणु पृथ्वी जल तेज वायुके मानके उनका समुह यह चार तत्व बने कहेते हैं. तो यह तो सर्व रुपवाले है. कार्य वैसे कारण होनां सो कारणोंको तो विरुद्धता है. यदि रुपवालेहि कहीं दीये तो क्या हानी है? वो अनित्य ठहरेंगे. घटादि सरीख जीनकारुप उनका अनित्यत्व जो औरतें वो भये है वो कोनतें कोनतें! ऐसे अंत अरुपहि लीयेतो अविनाशीत्व आवे. और वो संपादन कीये तो फीर उनका संयोग और वातें बडा आकार यह प्रथीमामें

विरोध आवे कही गयेकि निराकार कोटीयोंको मेल कीये तो निराकार हि रहेंगे तात्पर्य.

सूत्र—उभयथा च दोपात् ॥ १५ ॥

अर्थ—उभय प्रकार दोप होनेतें.

विवेचन—कारण गुणपूर्वक कार्य तो पृथ्वी आदि कार्यके रुपवानके गुण कारणमें होनेहि चाहीये. उनकों अरुप गुणवाले कहे तो यह पृथ्वी आदि अरुप होनें चाहीये. वो रुपवाले माने तो फीर विनाशी भये हि. रुपवान होके अविनाशी भी हो ऐसा कोइ उनको प्रत्यक्ष अनुमानमें कभी नहि मीलेगा. वातें वो वात सिद्ध न होगी. सत्य येहि है कि यह तत्व अचिंत्य शास्त्र गम्य कहे तो वात आगे चले. सो तो यथार्थ शास्त्रोक्त रहे तो वो स्वीकारे, तव फीर वेदांत हहि. यह शास्त्र निरर्थक है. यो जो विशेप कहेनेको जाता है वो उनकेहि प्रमाणोंतें उन्हीकी रीतें सिद्ध नहि होता है. दृष्टांत नहि मीलनेतें फीर कपिल मतके दो तत्वकों तो वैदिक मत स्विकारता है. प्रकृति पुरुप अनादि और अनंतकाल रहेनेवाले, जीव असंख्य, प्रकृतितें भिन्न वो भिन्न होके रही सकते है, मुक्तिमें रहेंगे. यह सर्व वेदांत मत है. उतनां भाग वेदांतका उनका स्वीकृत है तो वेदांत समझनेको उनका उतना स्मृतित्व भी ठहरेगा. वो सहायक रहेंगे. यह तो केवल तर्क–फीर वेदांततें विरुद्ध–परमाणु पर हि इमारत वनाते है. ऐसा काणाद पक्ष श्री वेद व्यास महाराज कहेते है.

सूत्र—अपरिग्रहाच्चा त्यंत मन पेक्षा ॥ १६ ॥

अर्थ—अपरिग्रह होनेतें अत्यंत अनपेक्ष है.

विवेचन—वो हमकों कामका नहि. वाके सर्व सिद्धांत वेदांतनें

नहि स्वीकृत कीये ऐसे है. वो मोक्षार्थीको कुछ कामका नहि है. क्यों कि मोक्षका उपाय शास्त्रहि और वाका सहायक नहि होके और बातें विरुद्ध बात बोले तो भ्रम उत्पन्न करके शास्त्रतें चलित करनेंके हेतुहि वो भये सो ठीक नहि. तात्पर्य यह मत असमंजस है, यथा-अत्यंत अनपेक्ष है.

अब आये बौद्ध, वोभी परमाणु कारणवादिमें है. वाका खंडन होहि गया. फीर खास उनके मततें जगतकी उत्पत्तिका और व्यवहारका विचार करे तोभी ठीक बात नहि बनती है. उनमें चार भेद है, चार प्रकारके चार भूतके परमाणुके समु होते बाहीरके संघात और शरीरके भीतरके इंद्रीयादि संघात बनते ऐसा एक कहते है. प्रत्यक्ष अनुमानतें वो सिद्ध करनां चहते है. उनकों वो दो प्रकारके प्रमाण है. २ और कहते है. बाह्यके अर्थ विज्ञानके अनुमान कीये गये है. ३ तीसरे कहते है. बाह्यार्थ हैहि नहि. विज्ञान मात्र परमार्थ है. ४ और चोथे तो कहते है. न बाहीर, न भीतर, न अर्थ, न विज्ञान कुछ नहि. सर्व शून्य है. यह शून्यवादिको छोडके पूर्व कहे तीन जो वस्तुओंको मानते है वो फीर सर्व क्षणिक है करके कहेते है. और वैसे क्षणिकोंतेंहि सर्व जलप्रवाहवत जब जूना गया. नया आया. प्रवाह एक दीखता है. ऐसे वस्तु मात्र क्षणिक और वोहि सब कुछ, फीर उनतें और आत्मा तो क्या आकाशभी कोइ वस्तु नहि. वहां परमात्माकी क्या वार्ता ! वोहि क्षणिक चार प्रकारके परमाणुओंके समुदाय उभयके हेतु होते है. जीनकों हम पृथ्वी, जल महाभूत करके कहेते है. उनके, और वाके भीतर रहे चित्तादिकके.

(समुदायाधिकरणम्)

सूत्र—समुदाय उभय हेतुकेऽपि तद प्राप्तिः॥१७॥

अर्थ—उभय समुदाय हेतु कहेकेभी-वाकी प्राप्ती नहि.

विवेचन—जगतकी माडी उन दोनों समुदायतें नहि बनेगी. ‍
दोनों समुदाय हेतु कहेतोभी निकामें हैं. जगत क्या बने ! ऐसे समुद
यतें कुछभी नहि बन सके. क्योंकि उनकों क्षणिक कहे हैं तो क्षणि
एक आकार स्थिर वो बन रहीके, वैसा दुसरा स्थिर बना रहे, वो
स्थिर रहीके जुटे तब तीसरा ऐसे सर्व स्थिर रहे तो देह ईन्द्रीयें.
कोई परमाणु स्थिरहि नहि रहे तो क्षणमें गया, नया आया.
बननां कहां ? जैसे अर्थका वैसा ज्ञाता वोभी क्षणिक कहेते हैं.
फीर एक अर्थ कोनने जाना, क्या जाना. वाका अमल वो कहां क
वोतो गया. वाका फल कोन भोगे ! वोतो गया. वोभी तो प्रतिक्षण
दलते परमाणु रहेनेतें उनतें यह सर्व एकसा व्यहवार कैसे संभ
कोईभी एक—मैं ज्ञाता हां ऐसा तो स्थिर वो वो अर्थका वोहि ज्ञ
होनां आवश्यकहि है. वो नहि माननेतें न समुदाय एक प्रकार
दो प्रकार बने अर्थात न अर्थ वा विषय न कुछ कोनकी दृष्टी न व
दृष्टी कर्ता न भोक्ता ! क्या भया ? कवलों रहा ! फीर वाका क्या भ
वो कोननें बुझा ! भोगवो कहां गया ! वाका क्या भया ! सर्वहि क्षणि
सो कोन छूटे ! कैसे ! कोइ प्रश्नके उत्तरहि नहि बनते तब वो एक अविद्या
लावते है. और इतरेतर एकतें दुसरा. दुसरेतें तीसरा ऐसा जो क्ष
क परंतु प्रवाहरुप होया करता है वाकों वो अविद्या करकें, स्थिर
ज्यों एकहि नदी वहेती देखते है वैसा भूलतें दीखता है. स्थिर
यों मांना जाता है करके कहेते हैं.

सूत्र—इतरेतर प्रत्ययत्वादुपपन्नमितिचेन्न स
घातभावा निमित्तत्वात् ॥ १८ ॥

अर्थ—इतरेतर प्रत्यय होनेतें घटीत है ऐसा कहेतो वो नहि ट
संघात भावकों निमित्त नहि होनेतें.

विवेचन—एक पीछे दुसरा वैसाहि चला आनेतें एक धारा, एक

वास्तविक क्षणिक होके वो भी एकरूप दीखे. परंतु कोनको ? वो
वनेवाला देह देही, उनका संघात भाव, एक रहे वोहि रहे तब ना ?
उनको ऐसे रखनेवाला कोइ निमित्त चाहिये ! वो अविद्या नहि
इ सकती. वो तो कारण है. वो करके तो क्षणिक संघातका एकरु-
व दीखता है. वो अज्ञान तो अस्थिरमें स्थिरत्व बुद्धि करावती है.
तु कोनको ! एक वैसा स्थिर निमित्त होनांहि चाहिये तो नहि
ना गया. अर्थ, विषय, और विषयी, दृष्टा और दृश्य सर्व बदलते
ते है. माननेमें फीर अविद्या लाये तो भी वो निकामी है. वातें
क दीखायाकि वो देखनेवाला तो गया. फीर पीछे भया वो तो नया.
को जो गया वाका राग कैसें लगे !

सूत्र—उत्तरोत्पादे च पूर्व निरोधात् ॥ १९ ॥

अर्थ—उत्तर उत्पन्न होते तो पूर्व चला गया होता है.

विवेचन—वो दो संग नहि रहेते है. और क्षणकी उत्पत्तिके
मय, पूर्व क्षण नाश भयी होती है. वो नष्ट पाइ चूकी सोहि फीर
त्तर क्षणकी हेतु तो कैसे होवे ! वो दुसरी क्षणमें भी रहेती है कहे
वहि वने. विना रहे हेतु वनती है कहेनां तो फीर वो हेतु नहि.
मिंतें पीछेवाला नहि भया. फीर तो असत् कुछ नहि रहा. वामें-
भया येहि–कहेनां पडेगा. और तव सदा सर्वकी उत्पत्ति होवे फीर
जि अंकुर थड डाली यह व्यवस्थाका क्या प्रयोजन ! त्यों आंवमेंतें
आंव भी क्यों ! विना–हेतु वननां कहेनां तो अडबडहि है. बकनां
फीर वो कहां वने ! जमीन भी तो क्षणीक जामें बोया सो गइ.
ीज भी क्षणीक. जो बोया सो गया. क्या हास्य सरीख वातें है–जो
र्व क्षणिकका ऐसा व्यहवार कहेनां !

सूत्र—असति प्रतिज्ञोपरोधो योग पद्यमन्यथा२०

अर्थ—असततें माननेतें प्रतिज्ञाकी हानी है.

विवेचन—संग माने वा और प्रकार कोइ भी रीति नहि बनता. कुछ नहि-वामेंतें भया ऐसा वो कहेते नहि है. परमाणु कारणवादी है हि. दो क्षण संग कहे तेभी बहावरापन हेकि एक क्षण दुसरेके लीये रहे तो बने तो फीर वो पूर्वकी वा क्षण क्षणिक न ठहरी. यह उत्पत्ति स्थितिमें असंभवितता जैसे तैसे मांनाकि बन गया है. चल रहा है. तो अब भी उनकों " नाश " के उत्तर देने है. यह नाश " प्रति संख्या " " अप्रति संख्या. " दीप बुझ गये तो पीछे कुछ न रहा दीखता है. घट फूटे तो ठीकरे रहते है ऐसे दो प्रकार निरोध, नाम. नाश देख पडता है.

सूत्र—प्रति संख्या प्रति संख्या निरोधा प्राप्ति रविच्छेदात् ॥ २१ ॥

अर्थ—अन्वय रहीके, न रहीके, जो नाशकी प्राप्ती वो न रही होगी विच्छेद नहि होनेतें.

विवेचन—क्षणिक धाराका विच्छेद क्या करनां-कोन करे? वो तो धाराहि है. प्रवाह बहेताहि है. वाका और क्या होय ! द्रव्य जो स्थिर रहे तो तुकडे होवे. और वातें विशेप नाश निरन्वय दीखे तो मूल भूतकी वो अवस्था पावे. तब स्थिर रहे. त्यों त्यों वाका वो पलटावनेवाला भी नित्य होनां चाहीये. सो एकभी नहि माननेतें उत्पत्ति सरीखहि नाशमें विरोध है.

सूत्र—उभयथा च दोपात् ॥ २२ ॥

अर्थ—उभय प्रकार दोप होनेतें.

विवेचन—यह मत ठीक नहि. क्षणिक तत्त्व माने तो तुच्छमेंतें उत्पत्ति. और उत्पत्ति पाया सो तुच्छ हो गया. " कुछ नहि " सो

भया. और भया रहा सो कुछ नहि हो गया. यह कहेनांहि है. दोनों दुपण: है मृत्तिका, घट, कपालीका, चूर्ण, मृत्तिका; ऐसे एक द्रव्य मृत्तिकाका स्थिरत्व और वाकी अवस्थाभेदतें उत्पत्ति विनाश. नाम रुप उपयोग बदलते रहते है. यह तो प्रत्यक्ष अनुमानसिद्ध है. ऐसे हि मूल द्रव्यको स्थिर हि माने तो उत्पत्ति विनाश उभय बन सके परंतु उभयके लीये वातें विरुद्ध कहेनेतें वो बन सकता नहि. या प्रकार बाहिर भीतर सर्व क्षणिक परमाणुतें बना रहा कहेनेवाला मत ठीक नहि. फीर

सूत्र—" आकाशेचा विशेषात् " ॥ २३ ॥

अर्थ—आकाशमें अविशेष होनेतें:

विवेचन—वो आकाशतत्व नहि. यह कहते है वातेंभी वो मत ठीक नहि. आकाश है, दीखता है. " वहां बाज उडता है " वोहि आकाश करके देखतेहि है. फीर वाका अस्तित्वहि नहि स्वीकारनां और ठीक बात नहि है. आकाश हैहि त्यों.

सूत्र—" अनुस्मृतेश्च " ॥ २४ ॥

अर्थ—अनुस्मरणतें.

विवेचन-विज्ञानकों क्षणिक कहेनेतें-ज्ञाता चल्या जाता हो-क्षणिक हो तो अनुस्मरण हम सबकों बना रहेता है. वो न रहे यह सबका—नित्यका प्रत्यक्ष अनुभव भी उनतें विरुद्ध है. विज्ञाता एक स्थिरहि सिद्ध होता है. त्यों वो वस्तु दृश्यभी स्थिर हो तवहि यह वोहि कहीके अनुस्मरण हो. क्षणिकत्व वहांभी नहि ठहरता. हो चूका प्रथम पक्षका, अव आये वाहिरके अर्थकों अनुमानतें मानने वाले—परंतु अनुमानभी वस्तु होके होगा. नहि होके नहि होता.

सूत्र—नासतो दृष्टत्वात् ॥ २५ ॥

अर्थ—असत् नहि देख पडनेतें.

विवेचन—घटमें मीलता घटाकार दीखता हैं. वो घट नष्ट भये परभी हम देखा करे वो नहि बनता. प्रतिबिंबादिकभी स्थिरत्वमें है. तात्पर्यकी अर्थकी विचित्रतातें ज्ञानकी विचित्रता हैं. अर्थ न होके ज्ञानकी विचित्रता-मनतें विना अर्थके विविध विचित्र मान लीयेतें वैसा सब दीखता है. यह कहेनां ठीक नहि. तात्पर्य अर्थ नहि. हम मनतें मानते हैं. वांतें वैसा दीखता है, कहेने वाले-विचारें कि मनतें माननेका आधार ! वो माननां पूर्व अनुभव औंर पीछेहि होगा. अर्थ देखा हो तबहि मन मान्यता-अमुक अनुमानभी करता है. जाका कभी अनुभव नहि. वाका अनुमान नहि. जो वस्तु नहि वाका अनुभव नहि. औंर जो विना अर्थ सर्व देख पडे तब तो बन गई बात. उद्यम करनांहि क्यों? कृषी रसोई क्यों ! मनतें महेल बांधीके वामें जा बसे. औंर मनतें लड्डु बना पाके सोया करें !

सूत्र—उदासीनानामपिचैवंसिद्धिः ॥ २६ ॥

अर्थ—उदासीयोंकोभी ऐसी सिद्धि हो.

विवेचन—सो नहि दीखता है. मनके तो मनसुखेहि मात्र कहे जाते हैं. जो अर्थ प्रकृतीतें मीलाते वो वो पाते हैं. वो प्रयत्नतें मीलते हैं. अनुमानतें सिद्ध नहि होते हैं. अब फीर-अर्थ हैहि नहि. ज्ञानहि मात्र है. यह तीसरे मतवाले तो जैसे जैलमें पडे केदी बादशाहतंभी आपको मोटे कहे वेसे हैं. यह सर्व उपलब्धी वो कुछभी मूल विना !

[उपलब्ध्याधिकरणम्]

सूत्र—ना भाव पलब्धेः ॥ २७ ॥

अर्थ—दीख पडता हैं.

विवेचन—वाँतें यह अर्थोका अभाव नहि. त्रितापमें मर रहे हैं. पर कुछ हैहि नहि कहेनां क्या बकनां है ? वंध्याके पुत्रके विवाहमें पोशाक कोन ल्के आया ! ज्ञान हे कहेतेहि त्रिपुटी खडी भयी. कोनका, कोनको, कोनतें, ज्ञाता ज्ञेय विना तो ज्ञान नहि. किंतु वो दो होनेके पीछे हम औंर घट दोनों रहेतो दोनोंके मीलापतें हमकों घटका ज्ञान विषय विना ज्ञान क्या ! कोनका किनकों ! " केवल ज्ञान " कहेनां. " ज्ञा " धातुसेंहि विरुद्ध है, वो कर्त्ता कर्मका अपेक्षित शब्दहि हैं.

अभावकी उपलब्धी अर्थ न होके दीख पडे वामें स्वप्नका दृष्टांत दीये तो

सूत्र---वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—विधर्म होनेते–स्वप्न सरीख नहि है.

विवेचन—स्वप्नके औंर धर्म येहि हेतु हैकि वो नश्वर है. वाके पदार्थ फीर हम जहां जायेंगे वहां हमकों काम नहि लगे. परंतु जेंसे हम स्वप्नमेंतें जागे तो वो स्वप्नके घर फीर हमकों तेंसे अन्यको नहि दीखते हैं त्यों हम मर भये तो यह धन धाम हमारे सरीख औरकोंभी फीर नहि दीखेगा–यह सत्य वार्ता नहि है. स्वप्न तो हमहिको दीखता है. यह तो हमारेहि सरीख हमतें भिन्न शरीरमें रहे अनेककों दीखता है. स्वप्नका ज्ञान यह ज्ञानके आच्छादनतें है. यथार्थ है. जागृत ज्ञान यथार्थ है. स्वप्नमें पाया काम नहि लगता. जागृतका पाया काम लगता है. त्यों स्वप्नभी तो वामें दीखे वो क्षणिक रहे ऐसे अर्थ होके दीखता है. यहांभी विज्ञान मात्र सत्य यह तो सिद्ध नहि होता. विना अर्थका केवल ज्ञान होहि नहि सकता.

सूत्र—" नभावोऽनुपलब्धेः ॥ २९ ॥

अर्थ—भावनाहि नहि दीख पडता.

विवेचन—विना देखनेवाले और देखनेके पदार्थके ज्ञान सिद्ध नहि होता है. यह कहही चूके रहे, सो ठरात्र दीया. तात्पर्यकी तीनों मतके अर्थ—ज्ञात एककीभी व्याख्याहि ठीक नहि. आगे व्यवहार नाश कुछभी ठीक नहि बनता. वार्ते वो सर्वथा अकवाद सरीख है. फीर, अंतके वादतें तो सीमा है. सर्व शून्यवादी

[सर्वथाऽनुपपत्त्यधिकरणम्]

सूत्र—सर्वथाऽनुपपत्तेश्च ॥ ३० ॥

अर्थ—यहतो सर्वथा अघटीत है.

विवेचन—मेरी माता वांझ है यह बोल्ने सरीख है. "सर्व शब्द" हि उनकों चुप करता है. वाका स्वीकार कीये तो शून्य न रहा. शून्यहि हैतो "सर्वशून्य" यह सिद्ध नहि भया. जो है हि नहि ऐसा कहेनेवालाभी कहां है? वाका वो कहेनांभी कहां! यहतो प्रत्यक्ष अनुमान सर्वतें सर्वथा विरुद्ध है. या प्रकार क्षणीक बौद्ध मत असमंजस है.

अब जैन मत वोभी परमाणुकारणवादहि है. ईश्वरकों नहि मानके वो जीव और अजीव - ऐसे दो तत्वकों मानते हैं. दोनों वेदांतकों अनुकुल नहि. जीवोंको प्रतिशरीर भिन्न, अनादि अनंत कहेपर फीर वो वडे शरीरमें वडे, छोटेमें छोटे, ऐसे विकारी मानते है. और जामेंतें जगत भया वो तत्वकों तो क्या कैसा?! सो निश्चयहि नहि कर सकते "स्याद्वादि" हि वो कहे जाते है. वामें फीर नित्यकोंहि अनित्य, ऐसे विरुद्ध धर्मोका एकहिमें संग आश्रय करते है. सूत्र फीर कहते है.

(एकस्मिन्न संभवाधिकरणम्)

सूत्र—नैकस्मिन्न संभवात् ॥ ३१ ॥

अर्थ—"न एकमें, असंभव होनेतें."

विवेचन—एकमें विरुद्धता होनी संभवित नहि. " स्यात् अस्ति " और " स्यात् नास्ति " " यह है, नहि है " दो वातहि एकहि वस्तुके लीये एक देशकालमें वोलनां ठीक नहि. द्रव्यमें गुण वातें अवस्था भेद वो परस्पर विरुद्ध नहि होकेहि हो सकते है. जब पिंड है तब घटावस्था नहि. घट है तब पिंडावस्था नहि. एकहि कालमें घटभी है और पिंडभी है कहेनां क्यों संभवीत हो. फीर घट रहे परभी घट है था नहि है. यह कहेनां भी क्यों संभवित हो? निन्य अनित्यके भेद योंहै कि जो सदा एकरुपमें रहे वो नित्य जो उत्पत्ति विनाश अवस्था पावे सो अनित्य. वो द्रव्य जो है सो है. विकारी रहेनेतें नामरुप अवस्था भेद पाया करे. सोभी आपके वेसेहि स्वभावकों लेके है. त्रिगुणसाम्य सो मुल अवस्था. वामेंतें यथाक्रम चोवीश तत्त्व. वाका उत्तरोत्तर व्यतिक्रमतें नियमीत लय. ऐसी विकारी होके नित्य है. वो यदि बराबर नहि समुझी गई तो ऐसा कहेनां ठीक है. सोभी न कहीके वो वस्तुकाहि ठीकानां नहि. वो विरुद्ध धर्मोके आश्रयवाली है. यह माननां ठीक नहि. वेसाहि दुसरा तत्व आत्माके लीये भी.

सूत्र—एवं च आत्माकात्स्न्र्यम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसेहि " आत्मा समग्र. "

विवेचन—असंख्यप्रदेश विभु मानते है. तो फीर वोहि छोटे शरीरमें छोटा हो जानां असंभवित है. स्वरूपतेंहि मोटा हो. और शरीरके संबंधतें छोटा होजावे तो वो असंख्यप्रदेश नहि ठहरा. ज्ञान धर्म करके संकोच विकाश—और ज्ञानस्वरुपतें एक सरीख ऐसा वो नहि कहेते है. यह संकोच विकाशभी तो स्वरुपकाहि होता है. ऐसा कहेते है. सोभी ठीक नहि है.

सूत्र—नचपर्यायादप्यविरोधोविकारादिभ्यः॥३३

अर्थ—पर्यायतेंभी अविरोध नहि होता विकारादितें.

विवेचन—यह पर्याय छोटा बडा स्वरुपतें माननेतें स्वरुप विकारी ठहरता है. वामें वो विरोध शरीरके हेतुतें छोटा बडा होता है. यह कहेनेतें दोष जाता नहि. वो छोटा–बडा हो, विकारो हो तो विनाशी होताहि है. वाको प्रकृतितें और तत्व और प्रकारका नहि ठहरा सकते है. वास्तविक स्वरुप वाका कोई एक प्रकारका वो स्वीकृतभी करते है. परंतु मुक्तावस्थामेंहि.

सूत्र—अंत्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वाद विशेषः ॥ ३४ ॥

अर्थ—अंत अवस्थामें उभयका नित्यत्व कहेनेतें अविशेष है.

विवेचन—जीवका अंत परिणाम मोक्षावस्था सो और वामें जो प्रकार जीव रहता है. एसी वाकी स्थिति यह वो उभयको वो नित्य मानते है. वो सदा मुक्ति रहती है. और वामें सदा मुक्त एकरुपमें रहेता है तो वाका वैसाहि स्वाभाविक रुप माने तो कुछ विशेष नहि. सत्यस्वरुप वाका वैसाहि भया. वातें विरुद्ध फीर वाहि लीये बद्धा-वस्थामें वो स्वरुपकेहि लीये कहेनां सो ठीक नहि. नित्य यह असंगत है. आत्मा देह परिणामी है और वाका एकहि प्रकार स्वरुपभी नहि. ऐसा आत्माके विषयमें भी उनका कहेनां उनको दुषण है. फीर विनां ईश्वरके परमाणुकी-स्थिति उनतें सृष्टी प्रलय आदि परमाणु कारण वादके दोष वो सर्वभी होनेतें यह मतभी असमंजस है.

वैसेहि पाशुपत मत. जामें पशु पतिको जगतकारण सो निमित्त कारण, कर्त्ता, और प्रकृतिको उपादान कारण कहते है. फीर उपायमें जो जो क्रिया है वो वेद विरुद्ध कर्म है वातें.

(पशुपत्याधिकरणम्)

सूत्र—॥ पत्युर सामंजस्यात् ॥ ३५ ॥

अर्थ—पति असंमजस होनेंतें ॥

विवेचन—वो मत भी ठीक नहि. तंत्रकोंहि प्रमाण मानते है. और वेद विरुद्ध दिक्षादिक उनमें है. फीर जब वेदको नहि स्वीकारते है तो प्रत्यक्ष अनुमानतें तो अधिष्ठान भी इश्वरकों चाहियेकि वानें कहां बैठके जगत कीया ! वो.

सूत्र—अधिष्टानानुपपत्ते श्च ॥ ३६ ॥

अर्थ—आपका आपहि अधिष्ठान नहि घटीत.

विवेचन—कुलालको शरीर अधिष्ठान है. और इश्वरको तो वो अशरीर कहेते है.

सूत्र—॥ करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ३७ ॥

अर्थ—करणवत है कहे तो नहि–भोगादितें.

विवेचन—जैसे जीवकों करण शरीर इन्द्रीयें है ऐसे इश्वरकों माने तो वो ठीक नहि. जीवको भोगादिकके लीयें पुण्य पाप कर्मके फलमें देह है. वो न होनेंतें इश्वरको करण होने ठीक नहि.

फीर भी शरीर है माने तो

सूत्र—॥ अंतवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥ ३८ ॥

अर्थ—वो अंतवान ठहेरे. वा अ सर्वज्ञना वायें आवे.

विवेचन—देहधारीको वो होनाहि है. थानें विना वो

मात्र जगतकारण निमित्तरुपहि इश्वरकों भी माननां वनता नहि. यह सर्व हेतु करके वेदांतमें जगतकारण. निमित्त वोहि उपादान श्री मन्नारायण कहा है वोहि ठीक है. और सर्व मतें जो वातें विरुद्ध है सो असमंजस है. और वेदांत जैसाहि सर्व प्रकार तत्वोंके विषयमें कहेनेवाला तो पांच रात्र तंत्रहि है.

तत्वहित और पुरुषार्थ विषयीक जो जो वेदांतके निर्णय वोहि वाके निर्णय. और वातें अंत यह सर्व शंकावाले शास्त्रोंके अंतमें वो समाधानवाला शास्त्र धरके पाद वंध करते है. उनके लीये भी जैसें श्रुतियोंके लीये शंका समाधानके सूत्र आये है. वामें प्राण आकाशको इश्वर, तेजतें जलकी उत्पत्ति आदि; वैसा यामें जो भगवानके वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रुपका कथन है वहां वो वो अवतार वो वो तत्वके अभिमानी रुप धारके वो वो तत्वके साथ प्रकट भये करके कहा है. वा लीये दो सूत्र शंकाके धरके दोतें समाधान करदेते है.

(उत्पत्त्यसंभवाधिकरणम्)

सूत्र—उत्पत्त्य संभवात् ॥ ३९ ॥

अर्थ—उत्पत्ति असंभव होनेतें.

विवेचन—वासुदेव परम कारणतें संकर्षण नाम जीव–संकर्षणतें प्रद्युम्न नाम मन; वातें अनिरुद्ध नाम अहंकार उत्पन्न होता है. या प्रकार उत्पत्तिका असंभव होनेतें यह मत भी ठीक नहि. जीवकी उत्पत्ति वेदांतमें नहि मानी गइ, वो पंच रात्रमें मानी गइ है वो दोष है. और

सूत्र—न च कर्त्तुः करणम् ॥ ४० ॥

अर्थ—कर्त्तातें करण नहि.

विवेचन—जीवकर्त्ता-वातें मन करण उत्पन्न भया..वामें माना गया हो तो वोभी दोष है. और वैसे वचनतें वो शास्त्रमें है ऐसा पूर्व-पक्ष है. फीर वाका जवाब वो शास्त्रहि देता है. सो आपहि कहेते हैं कि कहीं वामें न जीवकी उत्पत्ति मानी है, न वातें मन भया माना है जो वचनोंतें यह आक्षेप उठ सके ऐसा है वहांहि आगे उनका समा-धान वोहि शास्त्र वोहि प्रकरणमें है.

सूत्र—विज्ञानादि भावे वा तद प्रतिषेधः ॥ ४१ ॥

अर्थ—विज्ञान आदि भाव, वा वाका अप्रतिषेध.

विवेचन—"वा" कहेतो ऐसाहि कहा है. यों क्यों कहा जावे? वो " विज्ञान आदि " जामें ऐसा परमात्मा-वाके " भाव " तें कहा है वो नाम सर्व वाकेहि, वो रुपभी वाकेहि कहे हैं; भगवानके लीये हैं. भगवानके अनेक धाम-वामें अनेकरुप-उनके नाम और अनेके काम है. यह नामरुपतें भी-" अहंकार-मन " सो " शंकर्षण " " प्रद्यु-म्न "-सर्वेश्वरके दीव्यरुप वो वो दिव्य धाममें वो सदा विराजमान है वोहि अनिरुद्धतें राम कृष्णादि हमारे लीये भये है. फीर वो रुपभी वो वो तत्वके अभिमानी जग दुज्जीवनार्थ श्रीहरि आप धारण कर रहे है. वातें वो अनिरुद्ध नाम अहंकार भये करके कहे हैं. ऐसा वहां विज्ञानभाव है. प्राकृत भावहि नहि. फीर जो खास दुषण दीखता हेकि वामें जीवकी उत्पत्ति कही है. और वो जीव कर्त्तानें फीर करणकी उत्पत्ति कही है. वो वाततो हेहि नहि. जीवकी उत्पत्तिका तो वामें और प्रतिषेध है. यह कोइ दो चार वाक्य नहि. बडा लाख श्लोकका —

शास्त्र है. आद्योपांत देखले. वो शास्त्र सर्वथा वेदांतके अनुकूलहि है. वाका सर्व कथन अप्रतिषेध है. या को तो " असमंजसतें " बाद कर देनां. क्योंकि जो शंका उठाके दुषण दीये जावे, वाका तो

सूत्र—विप्रतिषेधाच्च ॥ ४२ ॥

अर्थ—विप्रतिषेध होनेतें.

विवेचन—जीवकी उत्पत्तिका और निषेध कीया है. अच्छी प्रकार-न बातें-मन भया-कहा है. तत्वके लीये वोहि प्रकार परिपूर्ण कहा है. जो यहांलों पर पक्ष प्रतिक्षेप करते भये श्री वेद व्यास सिद्ध कीये आवते हैं. शंका फीरभी रहे सो देखले.

और ऐसाहि तत्त्व हित पुरुषार्थ विवेचन और सुस्पष्ट वचनसें और साक्षात नारायणका कहा हुवा मोक्षार्थीयों के लीये परम कल्याण रुप देखे तो स्विकारे. वाको व्यासजीहि यह अनेक शंकाके प्रकरणमें अंत याको धरके सूचन करते हैं कि वो शास्त्र देखे तो कोई शंका न रहेगी. और वेदांतार्थ ऐसा ग्रहण होगा-जैसा यातें नहि हो. क्योंकि याके वक्ता तो आप श्री हरिहि है-यातें फीर इति है वैसे यहां भी-पादका इति है-सो अच्छी प्रकार देखनेकी प्रार्थनाके साथ यहां.

द्वितीयपाद इति.

द्वितीयाध्याय-तृतीयपादः

वेद् बाह्य मतमें न्यायके आभासकी युक्ति मात्र है. उनतें सिद्धांत कोइ भी ठहरता नहि. न ठहरेंगे. सत्य एकहि प्रकारका होता है. और वो येहि है कि यह जगत वो अचित चित विशिष्ट है. परब्रह्म जगतका कारण और कार्य है. सर्व वाके रुप, वाके शरीर, वातें यह रुपमें सूक्ष्मतें स्थूलमें भये. वामें वोहि रहा है कार्य कारणकी ऐक्यता समझावनी येहि वेदांतका आग्रह है, सो अब जो जो कार्यरुप आप अचित शरीरको लेके भया है; उनका शोधन करते है. प्रथम अचित वर्ग लेते है, वामें प्रत्यक्ष आकाशतें आरंभ करते हेकि वो कारणहि है कि कार्य !

(वियदधिकरणम्)

सूत्र—नवियदश्रुतेः ॥ १ ॥

अर्थ—वियत् नहि. श्रुति नहि होनेतें ॥

विवेचन—वियत् कहे तो आकाश वो न कहेके नहि उत्पन्न भया. ब्रह्मका कार्य नहि. आपहि कारणोंमेंतें एक है क्योंकि श्रुति जहां " सदेव " का प्रकरण है वहां प्रथमहि तेजकी उत्पत्ति कहती है. जो उत्पन्न नहि भया वाकी उत्पत्ति क्यों कहे ! और सर्वमें अंत रहा ऐसा निराकार निरवयव आकाश फीर औरमेंतें उत्पन्न भया-यह प्रत्यक्ष अनुमान तें समझमें भी नहि आता है वातें आकाश उत्पन्न नहि भया-कार्य नहि है. ऐसा पूर्व पक्ष है वाका उत्तर सत्र तो दे देते है.

सूत्र—अस्ति तु ॥ २ ॥

अर्थ—" हैं हितो "

विवेचन—वाकी उत्पत्ति श्रुतिमें है. वो उत्पन्न भया हैं. प्रत्यक्ष अनुमानतें नहि समझमें आवे ऐसा वात होनेतें तो शास्त्रगम्य कहा गइ है. आकाशतें वायु भया. यहभी तो सर्वतें सद्य समुझा जावे ऐसा कहां है ! परंतु श्रुतिका प्रमाण माने तो स्विकारनांहि पडता है. पूर्वपक्ष यापर होई सकेकि.

सूत्र—गौण्यसंभवाच्छब्दाच्च ॥ ३ ॥

अर्थ—गौणी असंभव होनेंत शब्दतेंभी.

विवेचन—यह उत्पत्तिकी श्रुति गौणी हैं. पहिले तेज उत्पन्न भया कहा है, फीरभी आकाश भया माननां असंभवित है, और अन्य स्थलमें आकाशकों अमृत कहा है तो वाकी उत्पत्ति नहि. ऐसा " शब्द " तेंभी सिद्ध होता है. वांतें " आत्मातें आकाश भया " यह श्रुति गौणी समझी जावे. औरभी वाहिकी पुष्टीमें कहे जाते है.

सूत्र—स्याच्चैकस्य ब्रह्म शब्दवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—हो सकता है एक ब्रह्म शब्दवत् ॥

विवेचन—वाके संग और जो कहे उनकी उत्पत्ति माने. और वाकी नहि क्यों माने ! वा लीये एक स्थलका दृष्टांत देतेहैं कि वहां ब्रह्म शब्द है तो वाकी उत्पत्ति न मानके औरकी माने तैसे " वातें ब्रह्मनामरुप अन्न भया है " कहा है. वैसा यहांभी समुझे.

पूर्वपक्ष हो चूका. यह सब श्रुतिके ठीक ठीक अर्थ नहि. यहां प्रसंगकीहि वात कहे.

सूत्र—प्रतिज्ञा हानि व्यतिरेकात् ॥ ५ ॥

अर्थ—व्यतिरेकतें प्रतिज्ञाकी हानी.

विवेचन—यह तो प्रथमहि की व्यतिरेक याको उत्पन्न भयेमें नां गीने तो वहांहि जो एकके ज्ञानतें सर्वका ज्ञान होगा. करके प्रतिज्ञा की गइ है. और सत् एकहि अद्वितीय रहा कहा है वहां संग आकाश भी रहा हो तो वो प्रतिज्ञाकी हानी आवे वाते वो अर्थ सुसंगत न ठहरा. वातें आकाशको ब्रह्मका कार्यहि माननां चाहीये. उत्पन्न भयाहि है.

सूत्र—शब्देभ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ—शब्द तें.

विवेचन—वहांहि श्रुति एकहि रहा कहती है और वो "सत् हि" वो "अद्वितिय" वातें द्वितिय रहा नहि ठहरता है. तेज भया कहा वातें आकाश नहि भया ऐसा क्यों मान लेनां ? आकाश रहा, नहि भया, ऐसा नहि कहा है. लौकिक दृष्टांत तें समुझावते है.

सूत्र—यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥

अर्थ—जीतने विकार है वो विभाग लोकके सरीख.

विवेचन—यह सर्वका आत्मा ब्रह्म है. ऐसा कही देके वामेंतें दो चारकी उत्पत्ति कहीके उनकों खास गीनाये तो जीतनें विकार और है वो "यावत्" सर्व विभाग वैसेहि ब्रह्मके कार्य ब्रह्मात्मकहि समझनें चाहिये. देवदत्तके यह सर्व पुत्र कहीके उनमेंतें थोडेके नाम गीनाये तोभी सर्व वाके पुत्र—जीनके नाम नहि गीनाये वोभी समझे जाते है. यह लोकन्याय यहां लगाये तो आकाश विभाग—विकार होनेतें औरकी उत्पत्ति कहे तो याकी भी समझहि लेनी चाहिये "अ-मृत" तो चीरकाल—स्थायीको भी कहेते है. देव अमर कहे जातेहि

यहां भी वायु अंतरीक्षको अमृत ऐसे कहे हैं. जब आकाश भी उत्पन्न भया कार्य भया ठहरा तो.

सूत्र—एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥

अर्थ—" या करके वायुका व्याख्यान हो गया. "

विवेचन—और सर्वकी उत्पत्ति रहे पर अंत जो कारण. ब्रह्म " सत् " शब्द वहां है वाकी उत्पत्ति नहि.

सूत्र—असंभवस्तु सतो ऽनुपपत्तेः ॥ ९ ॥

अर्थ—असंभव होनेतें सत्की अघटीत है.

विवेचन—सतकी उत्पत्ति होनी संभवित नहि. वो जामेतें उत्पन्न भया कहे वो फीर कोनमेंतें ! वो कोनतें ? ऐसे अंत तो ऐसा एक माननांहि पडेगा. जो काहुमेंतें नहि. वो हैं हि. अनादितें कभी उत्पन्नहि नहि भया. फीर कबतें है ? यह प्रश्न नहि. वैसा " सत् " है. वातें वाकी उत्पत्तिका असंभव है. और वो ऐसी मूल वस्तु कहे तो फीर वाकी उत्पत्ति पूछनां बिचारनां घटीत भी नहि. वो एकहि रहा तो फीर जो वाके शिवाय अव्यक्त महत् तत्व, अहंकार, तन्मात्रा, इन्द्रीयें; फीर आकाश, वायु, आदि सर्व वातेंहि भये वो सर्व वामेंहि एक हो गये रहे. ऐसा वो एकहि सर्व कार्य है. सर्वका बीज ऐसा वो एक रहा करके वाको जाने तब त्रैसे " एकके ज्ञानतें सर्वका ज्ञान " यह प्रतिज्ञा सिद्ध होवे. वातें वोहि ठीक है. कि सत तो रहाहि. वो उत्पन्न नहि भया.

अब वो सर्व ब्रह्ममेंतें एकमेंतें सत्मेंतें भये. परंतु ब्रह्ममेंतें तो जो प्रथम भये वोहि वातें भये कहे जावे. फीर वो जो भये रहे उनमेंतें उत्तरोत्तर और भये करके जो कहेते हैं कि जैसे आकाश और वा-

का कही चुके वातें अब आकाशतें वायु, वायुतें आगे बढते हैं. वो कोमतें ? कैसे भये ? प्रत्यक्ष क्रम तो यह हैकि—

(तेजोऽधिकरणम्)

सूत्र—तेजोऽत स्तथा ह्याह ॥ १० ॥

अर्थ—वातें तेज भया. वैसाहि कहा है. ॥ फीर वातें.

सूत्र—आपः ॥ ११ ॥

फीर वातें.

सूत्र—पृथिवी ॥ १२ ॥

ऐसे भये हैं.

विवेचन—वहां अंन शब्द पृथिवीके लीये कहा है. वाका फीर चिमें समाधान कर लेतेहैं कि वोहि पृथ्वीके लीये शब्दप्रयोग है. हीं अंन शब्दभी पृथ्वीके लीये प्रयोग करते हैं.

सूत्र—अधिकाररूप शब्दांतरेभ्यः ॥ १३ ॥

अर्थ—अधिकाररूप और शब्दतें.

विवेचन—और "अंन" शब्दतें पृथ्वीकोंहि कहा है. वहां ष्टी करनेका जो महाभूतोंको अधिकार; वामें पृथ्वीका अन्नरुप कहा , पृथ्वीको और शब्दतें कही है. कारणमें कार्यका प्रयोग कीया है. वैको खानेवाली पृथ्वी होनेतें वातें अंन होनेतें आंवका आंव कहेते , तैसे वहां पृथ्वीके लीये अंन शब्द प्रयोग कीया है.

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणिच "
खंवायु र्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी

तस्मादेतद्‍ ब्रह्म नामरुप अन्नं च जायते
तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाश संभूतः ॥

अर्थ—वातें प्राण, मन, सर्व इन्द्रीयें, और आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, जो विश्वको धारती है, वो उत्पन्न होते है. यह एक श्रुति है. दुसरी बात यह ब्रह्म नामरुप अंन होता है. वो अंन कहे तोभी पृथ्वीहि. " ब्रह्म " यहां प्रकृतिवाचक है.

अब यह सर्व प्रसंग जो सूत्रकार लीये है सो जगतमात्रको ब्रह्मकार्यत्व समुझावनेकों. यहतो ठीक की प्रथम एकाहि वामेंहि सर्व रहा. परंतु फीर जब वामेंतें होने लगा. तब एकमेंतें दुसरा, वामेंतें तीसरा, क्रमतें जैसे सूत्रोंमें तेज, आप, पृथ्वी कहे. वो जो भये तो ब्रह्मका कार्यतो प्रथम जो भया वोहि यह सर्वतो उत्तरोत्तर एक दुसरेके कार्य कारण, जैसे पृथ्वी कार्यका जल कारण. वो जलतें भयी. वामें ब्रह्म नहि तो वाका कारण वा कार्य ब्रह्म नहि ठहरेगा वैसी वेदांत प्रक्रिया नहि. वामें तो " जो जब होता है तब ब्रह्मका, ब्रह्ममेंतें, ब्रह्ममें, ब्रह्मकाहि शरीर, वातें ब्रह्महि. " यह घोष है. यद्यपि यहां परंपरा एक तत्वका दुसरा ऐसे कारण कहे है. परंतु सूत्रकार अब खुलासा करते हैं कि.

सूत्र—तदभिध्यानादेव तु तल्लिंगात्सः ॥ १४ ॥

अर्थ—वाके संकल्पतेंहि और वाके लिंग होनेतें वो है.

विवेचन—उत्पत्ति प्रकरणमें देखेतो "तेजनें ईच्छा की" " जल " भया. " वो जलनें ईच्छा की " ईत्यादि वचन है. जाका निर्णयभी कर गये है कि वो परमात्माके शरीर होनेतें वो संकल्पभी वो जड तत्वका नहि–किंतु वो " तत् " " सत् " का " ईक्षण "–" अभिध्यान "–संकल्प है. तो या प्रकार सिद्ध भया कि सर्वका कारण

आपहि-और कार्य भये परभी शरीरक आपहि तेजरुप ईच्छा करनेवाला, और जल वाका कार्य भये परभी ईच्छा करनेवाला आप रहे, तैसे जलभी-आप भये. कार्य कारणमें आपहि शरीरी आपहि सर्व भये. और प्रथम "तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेयेति" करके वो तत्ने ईच्छाकीनीकि में बहुत प्रकारका होऊं. तो जो बहुत प्रकारका भया सो वोहि होनां चाहीये. तब तो वाकी ईच्छा पूर्ण हो-और वो सत्य संकल्प है. ईच्छा पूर्ण भयी है. यहां कहही दीयाकि "यह सर्व वाकेहि अभिध्यानतें है" एकतें दुसरा-वातें तीसरा-ऐसेभी वाको छोडके नहि. वोहि सर्वमें रहीके वाकोहि मुख्य लेके, ऐसे लिंग श्रुतियें बहुत है. अंतर्यामी ब्राह्मणमें सर्व-कार्यको वाके शरीर और सर्व कार्य वर्गका प्रत्येकका वो शरीरी करके स्पष्ट "लिंग" है. वातें वोहि कार्यभी है. उत्तरोत्तर कार्य कारण नहि है. तबहि यहां श्रुतिनें "वातें प्राण मन सर्व ईन्द्रीयें और पृथ्वी विश्वको धारनेवाली उत्पन्न होती है करके कहा है." येहि पुरावा है. जो यहां आकाश वायु तेज जल पृथ्वी यों न कहीके विपर्ययक्रम करके सर्व वातें भया यों कही दीया. पहेले प्राण-फीर मन इत्यादिक कहेते सिद्ध भयाकि वो सर्व वाके कार्य है.

सूत्र—विपर्ययेणतु क्रमोऽत उपपद्यते च ॥ १५ ॥

अर्थ—और विपर्यय क्रम करके वातें यहीत है.

विवेचन—नहितो ऐसा व्युत्क्रम न कहा जाव. परंतु सर्व एकमेंतें भये है. वातें केसेभी कहो. सर्व वातें भये है. वोहि मुख्य कहेनां है. वा लीयेकि कोइ श्रुति जो क्रमतें भये वो क्रमतें कहे तो वातें यह न ठहर जावेकि सर्व सर्वेश्वरतें नहि भये. किंतु जो प्रथम भया सो भया. और तो उत्तरोत्तर जो जातें भया कहा वो वानेंहि भया है. ऐसा नहि

है. सर्वका ब्रह्म कार्यत्व यहां स्थीर कीया है. फीरभी एक शंका उठाके और द्रढ करते है.

सूत्र–अंतरा विज्ञानमनसि क्रमेण तल्लिंगादिति चेन्न अविशेषात् ॥ १६ ॥

अर्थ—बीचमें विज्ञान मन क्रम करके वाका चिन्ह है ऐसा नहि. अविशेषतें.

विवेचन—विज्ञान इन्द्रीयें और मन वो भूत प्राणके अंतर बीचमें कहेनेतें विपर्यय नहि किंतु क्रमहि है. ऐसा कहे तो वो ठीक नहि. प्राणको आदि लेके पृथ्वी पर्यंतकों यातेंहि भये करके कहेनेतें वोहि वात समझनेकी सर्व ब्रह्मतें भया और विशेष नहि.

और यातेंहि चर अचरके नाम प्राण वायु देव मनुष्य होके भी वो वो ब्रह्ममें मुख्य है. क्योंकि सर्वमें ब्रह्म है. ब्रह्मभावते वो भावित हेहि.

सूत्र–चराचर व्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशोऽभाक्तस्तद्भाव भावित्वात् ॥ १७ ॥

अर्थ—चर अचर वस्तुओंका–नाम तो रहो. वाका कथन मुख्य है. वो भाव भावित होनेतें.

विवेचन—यह वेदांतका ज्ञान है. जबलों इतनां पूर्ण ज्ञान कारण कार्यका सर्व या प्रकार ब्रह्महि भया है. ऐसा चित् अचित् विशिष्टका पुरा ज्ञान नहि, वहांलों वो वो चर अचरके आकारोंको वो वो नामतें कहेते हैं. और वो भी ठीक है परंतु अमुख्य है. उपरदलका ज्ञान है. मुख्यज्ञान येहि है कि वो सर्व ब्रह्मात्मक है. यातें उनको ब्रह्महि कहे. आप शरीरी पर्यंत–जो एक बहुत भया है वाकों भी दे-

खके कहे तब तो सर्व नाम ब्रह्मकेहि है. यों कहेनां यथार्थ है वो ज्ञान न हो उनकों वो वो नाम वो वो चर अचर कहे ये भी ठीक है. और वो भी है हि. वो वस्तु रहीके ब्रह्म है. तो वो वो वस्तुकी विशेषता सूचक चिन्ह वा संज्ञा लौकिकके लीये हो तो ठीक है. अंत सत्य बात यह हैकि नाममें भूल न करे. सर्वको ब्रह्मके कार्यहि समुझे. क्योंकि वो सर्व एक कारणमेंसे भये है. सर्व वाके कार्य है.

भूतादिकोंका निर्णय भया. वो कार्य कोन प्रकार है वो समुझे. अचित्का ठीक. परंतु चराचरमेंतो जीवभी आइ गये तो क्या वोभी भूतोंकी नांइ उत्पन्न भये है.! वा कोन प्रकार कार्य है! उनकाभी विचार, उनका स्वरुप शोधनभी करनां चाहीये. क्योंकि वोभी ब्रह्मका शरीर–विभूति अंश, कार्य, हेहि. फीर संगमें न भया कहे तो वोभी जन्म पाये, मर गये, कहे जाते है. सो वास्तविकमें भी उनका उत्पत्ति नाश है क्या!

कार्यकी ऐक्यता कैसी ! वोभी कहेते आये है. वहां आकाश जल आदिकी उत्पत्ति कही–वैसी आत्माकी उत्पत्ति नहि होती कही–क्योंकि वो वस्तु नित्य ब्रह्म सरीखाहि एक तत्वहि और होनेतें; वैसेहि आकाशादिका जो मूल स्वरुप–प्रकृति त्रिगुण–वोभी तो अनादि एक तत्त्व जीव ईश्वर उभयतें विलक्षण प्रकारका हैहि. प्रलयमें वोभी रही. वो नयी न उत्पन्न कभी भयी; न वाका नाश सर्वथा होता है. वोभी नित्य तत्वहि है. तत्व तीन है. परंतु दो शरीर और एक शरीरी अचित तत्व विकार पावता, स्वरुप बदलता, चित तत्त्वके ज्ञानका संकोच विकाश होता. देह बदलता, वाको देह बडी छोटी सूक्ष्महो. मात्र प्रकृतिरुप हो ऐसा, और उभयके भीतर ओत प्रोत रहा. तीसरा उभय विशिष्ट आप परब्रह्म सदा एकरुप सदा उभय शरीर और ज्ञानशक्ति गुणविशिष्ट ऐसे हि तीन और एक प्रलयमें भी है और श्रष्टीमें भी है. प्रलयमें प्रकृतिके विकार मात्र समेटा के और वातें जीवोंके देह मीटजाके ज्ञान समेटा के उभय तत्व परमात्मामें वाके संकल्पसे सूक्ष्म रुपमें होके वाके साथहि एक हो जाके रहेते है. वातें तव वो एकहि–सतहि अद्विति यहि रहा कहा जाता है. किंतु वो आप आपके गुण शक्ति और यह सूक्ष्म चित् अचित् विशिष्ट–तवभी है. अर्थात् ब्रह्मका सूक्ष्म चित् अचित् विशिष्टरुप सो–कारण,–और स्थूल चित् अचित विशिष्ट वो–कार्य प्रकृतिमेंतें विकार होके नये नये नामरुप उपयोगवाले पदार्थ बनके देख पडते है वो प्रकृतिकीहि अवस्था विशेष है. परंतु वो नाम रुप नये–वातें उत्पन्न भये कहेते है.

वैसाहि तो नये नामरुपवाली देहमें आइके आत्मा जाग्रत भये तो वोभी जन्म पाया उत्पन्न भया कहेते है. “ यतो वा इमानि भूतानि जायंते ” करके श्रुति वो अचित् विशिष्ट चित्कोहि उत्पन्न भया कहती है. और वैसे तो वामें परमात्माभी हैं. तवहि एक बहु प्रकारका भया

कहा जाता है. और तबहि एकका सर्व, एकके ज्ञानतें सर्व ज्ञान कहा है. परंतु वास्तविकमें प्रकृति तत्वकी नांइ जीव स्वरुपतें विकार पाके दुसरेरुपवाले नहि होते हैं. नहि उत्पन्न होते हैं. यह कहेनेका यहां तात्पर्य है. वो है तो परमात्माकेहि शरीर–अंश, कारणअवस्थाका अंशहि कार्यावस्थामें भी है. परंतु वाका ज्ञान तब संकुचित रहा. वाको देह ऐसी न होनेतें, अभी वो प्रकृति विकार पाके देहरुप बनके वाको मीलनेतें वाके अनुसार जीवका ज्ञान विकाश पावता है. ऐसा वाके ज्ञानका संकोच विकाश होता है देह मीलती बदलाती है. वातें वाका जन्म मरण कहा जाता है. परंतु वो देह जैसे नये रुपमें बनी वैसा वो नये देहमें नया बना वो गइ तो वीखर गया एसा नहि होता है. वो आप स्वरुपतें नित्य–जैसा है वैसाहि रहता है. वाका स्वरुप नित्य है–अविकारी एकरुप है. प्रकृतिका एकरुप स्वरुप नहि विकारी है. फीर प्रकृति जड, पर प्रकाश है. यह ज्ञानस्वरुप स्वप्रकाश है. अब चल्या यह परमात्माके शरीरभूत आत्मतत्वका विशोधन वो नित्य है. यह प्रथम वार्त्ता या प्रकार प्रकृतितें विलक्षण–ताकी कही और वोहि अब.

(ज्ञाधिकरणम्)

सूत्र—ज्ञोऽत एव ॥ १९ ॥

अर्थ—ज्ञाता है.

विवेचन—कपिल बौद्ध वाको ज्ञान मात्र कहेते है. ज्ञाता नहि. न्याय वाकों–ज्ञान वामें आता जाता रहता है ऐसा कहेते है. वेदांत वो ज्ञानरुप भी है और ज्ञाता भी है ऐसा कहेते है. वामें ज्ञान भी तो हेहि. वो ज्ञान आता जाता नहि किंतु चीमनीके दीपकी प्रभाकी नांइ संकोच विकाश पाता है; वातें आया गया बढा घटा कही सकते हैं

वाको " विज्ञाता " श्रोता बोद्धा मंता विज्ञानात्मा विज्ञानमय " ऐसा कहीकेहि श्रुति पहिचान कराती है. परंतु वो परमात्मा नहि. परमात्मा विभु और सदा ज्ञाता है. वाका ज्ञान संकोच विकाश नहि पाता न वो अणु है. त्यों जीव विभु नहि है. वाका " सर्वगत " कहे तो सर्वतें सूक्ष्म होनेतें सर्वमें हाथीकी देहतें चीट्टीकी देहमें भी जाइ सकता है.

सूत्र—उत्क्रांतिगत्यागतीनाम् ॥ २० ॥

अर्थ—निकलनां, जानां, आनां ।

विवेचन—यह अणु है तवहि तो होहि सकता है. देहमेंतें नीकला स्वर्गमें गया. पीछा मनुष्यदेहमें आया. ऐसे मति शरीर भिन्न असंख्य चेतनोंका व्यवहार निकलनां आनां जानां होहि रहा है. वोहि उनका अणुत्व सिद्ध करता है.

सूत्र—स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २१ ॥

अर्थ—आप करके और उत्तर कहे.

विवेचन—दो वातें करके. आप करके विभु रहे तो देह वियोगकी उत्क्रांति कही जावे. घट फूट गया. आकाश वामेंतें निकल गया. यों कहेनां विभु हो तो भी बने परंतु " उत्तर " जो पीछे गति अगति पूर्व सूत्रमें कही वो तो विना अणुके होहि नहि सके यातें अणु है येहि ठीक है.

सूत्र—नाणुरतच्छ्रुतेरितिचेन्नेतराधिकारात्॥२२॥

अर्थ—अणु नहि. श्रुति ऐसा नहि कहती है. करके कहे तो वो ठीक नहि. वो इतरके अधिकारकी श्रुति होनेतें,

विवेचन—" आत्मा " शब्द,–अणुकों आत्मा, और विभुकों परमात्मा–उभयकों श्रुतियें लगती है. परंतु जहां " महानज आत्मा " कहा वहां परमात्माका अधिकार है. आत्माका नहि.

सूत्र—स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॥ २३ ॥

अर्थ—आपके लीये शब्द और मापभी है वातें.

विवेचन—" शब्द " श्रुतिवचन " एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः " यह अणुआत्माको चित् करके जाननां. " ऐसा अणु याकों कहतीही है. और वाका उन्मानभी " वालाग्र शत भागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीव सविज्ञेय " ऐसे वालके अग्रभागकां शतधाभाग करके रहा जो " भाग वाकों जीव जांनो " ऐसा श्रुति समुझानी है. वातें आत्मा अणु है. वो अणुहि है तो सकल शरीरमें वेदना होवे तो वो केसे जान सकता है ? आप अणुज्ञान स्वरुपके साथ ज्ञानवान है. दीप छोटा रहेपर रश्मीयें वडी होवे सो यहां और मततें प्रथम दृष्टांत देके कहते हैं.

सूत्र—अविरोधश्चंदनवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—विरोध नहि चंदनकी नांइ.

विवेचन—हरिचंदनका विंदु देहमें एक जगे कीये तो सकल शरीरमें शीतता व्याप्त होजाती है. वाके गुणशक्तितें तैसे वो आपके योग्य आपके ज्ञानके ज्ञानगुणसें शरीरमें नखशीख व्यापीके जुडता है. ज्ञाता तो हैहि. और ज्ञान करणभी है. फीर जीतनां वाका विकाश उतनां अधिक ज्ञाता होवहि.

वो चंदन विंदु देहमें एक जगे रहेता है. वैसी याकी स्थिति कहां! शंका समाधान उभय है.

सूत्र—अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमा द्धृदिहि ॥ २५ ॥

अर्थ—अवस्थिति विशेप होनेतें ऐसी याकी नहि-यों नहि. याकी हृदयमें है.

विवेचन—ऐसा जान पडता है. जैसे चंदनबिंदु एक जगेमेंहि ठहरता है. वैसा आत्मा नहि रहता. वो तो सकल शरीरमें स्वरुपतें है ऐसा नहि समझनां. याकी स्थिति तो हृदयमेंहि कही है. और शरीरमें याकी शक्ति है वो आप नहि है. श्रुति. हृदयमें-आत्मा है-वो एक सो एकभी नाडीसें बाहेर नीकलता है इत्यादि कहती है.

चंदन एक देशमें ठेरके सर्वत्र नहि व्यापता-वो अचित् द्रव्य विकारी होनेतें स्वरुपतेंभी सूक्ष्मतासें व्यापता है. यातें अब स्वमतसें दृष्टांत देके स्थिर करते है.

सूत्र—गुणाद्वाऽऽलोकवत् ॥ २६ ॥

अर्थ—अथवा गुणतें आलोककी नांई.

विवेचन—आपके ज्ञान गुण करके व्यापता है. यह कहेनां ठीक बनता है. जैसे यह लोकमें मणि सूर्य एक जगे रहेपर अपनी प्रभा किरणोंतें बहु देशमें-व्यापते है-तैसे आत्मा हृदयमें रहीके सर्वत्र ज्ञानतें व्यापता है. स्वरुपतें नहि. गुण गुणी दो वस्तु है. उनकों व्यतिरेक दृष्टांततें समुझावते है कि-ज्ञानस्वरुप कहे तो मात्र ज्ञान नहि. ज्ञान गुण और है. जैसे

सूत्र—व्यतिरेको गंधवत् तथा च दर्शयति ॥२७॥

अर्थ—गंध सरीख व्यतिरेक तैसेहि दीखावते है.

विवेचन—जैसे गंधवाली पृथिवी यों गुणतें जानी जाती है-तैसे ज्ञाता सो यह जानता हूं सो "मैं" यों आपके ज्ञानतें जानते है. और स्पष्ट करते है.

सूत्र—पृथगुपदेशात् ॥ २८ ॥

अर्थ—पृथक् उपदेशतें.

विवेचन—श्रुति ज्ञाता-और वाका ज्ञान दो है. ऐसा पृथक् कहती है. "न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते" विज्ञाताके "विज्ञानका" लोप नहि होता है. ऐसे दो कहती है वाका ज्ञान-नाम होनेका हेतुहि वामें ज्ञान गुण यह है. यों सूत्र स्पष्ट करता है.

सूत्र—तद्गुण सारत्वात्त द्व्यपदेशः प्राज्ञवत् २९

अर्थ—वो गुण सार होनेतें वाका वो नाम है प्राज्ञकी नांइ.

विवेचन—ज्ञानगुण सार होनेतें "ज्ञान" विज्ञान" ऐसा श्रुतिमें वाको कहती है. जैसे "प्राज्ञ" कहे तो परमात्माका "आनंदगुण" सार होनेतें "विज्ञान" ऐसा कहती है. परमात्माको "आनंदोब्रह्म" सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" याहि रिति यहांभी समझनां.

गुण, धर्म, विशेषण, यह दो प्रकारके है. एक उपाधिक पृथक् सिद्ध जैसे दंडी कुटुंबी. फोजदार. और दुसरे स्वाभाविक अपृथक् सिद्ध जैसे काला कमल त्यों, यह ज्ञानगुण वाका अपृथक् सिद्ध है. सूत्र कहता है.

सूत्र—यावदात्माभावित्वा च्च न दोष स्तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

अर्थ—"वो रहे वहांलों यह रहता है वातें दोष नहि. ऐसा देखनेतें."

विवेचन—आत्मा अविनाशी, तैसे यह ज्ञानगुणभी है. आगंतुक नहि. फीर कभी नहिभी दीग्व पडता है. तो वो अभिव्यक्त नहि भया है—जैसे

सूत्र—पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

अर्थ—पुंसत्व आदि सरीख याकी होके अभिव्यक्ति योगतें.

विवेचन—पुरुषमें सात धातु है. वामें शुक्र पुरुषत्व पुरा प्राप्त भये अभिव्यक्त होता है. सो वामें होही के होता है. कोइ नया नहि आता है. तैसे आत्मामें ज्ञानगुण होके प्रलयमें शुशुप्तिमें, वामें रहा वाकीहि अभिव्यक्ति जाग्रत दशामें श्रष्टीमें होती है. तात्पर्यकी जीवात्माका स्वरुप ज्ञातृत्वहि है. वो ज्ञानवालाहि ज्ञानस्वरुप है. वो मुक्त दशामें फीर ज्ञातातो सदा ज्ञाताहि रहेता है. ऐसे अनेक श्रुति वचन है.

" सर्वेहि पश्यः पश्यति सर्व माप्नोति सर्वशः "

यह देखनेवाला सर्व देखता है. और सर्वको सर्व प्रकार पावता है. इत्यादि वातें याको वैसाहि माननां ठीक है. " सर्वगत " वा " ज्ञान मात्र " माने तो दुषण रहेते हैं. वो आप कहेते हैं.

सूत्र—नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—नित्य उपलब्धी, अनुपलब्धिका प्रसंग वो कोइ अन्य और नियम होवे.

विवेचन—क्योंकि जो सर्वगत रहे तो सर्वको नित्य अनुपलब्धी वो ज्ञानमात्र रहे तो नित्य अनुप–लब्धि औरका ज्ञान नहि होनां चा·

हीये. और येहि नियम है; देखीयेकि हमारे शरीरमेंहि हम और हमाराहि हम जानें. यह जो नियम है सो नहि. सर्वका सर्व जाने वा कोइ कुछ न जाने ऐसा नहि किंतु-ज्ञान स्वरूप-अणु ज्ञाता, प्रति शरीर भिन्न; येहि रिति माने तो सर्व व्यवस्थारहती है. वेदांतमत वोहि है. सत्य वोहि है. अब एक और वाकी अचित् तत्वतें विशेषता कहते है. वामें भी मतभेद है. वो

[कर्त्रधिकरणम्]

सूत्र—कर्त्ता शास्त्रार्थवत्वात् ॥ ३३ ॥

अर्थ—कर्त्ता शास्त्रका अर्थवत्व होनेतें. ॥

विवेचन—आत्मा अकर्त्ता-प्रकृतिका कर्तृत्व, औपाधिक कर्तृत्व, ऐसे मतोंकी शंकाओंका निराकरण करते है. क्योंकि श्रुति स्मृतिके वचनोंतेंहि सब उठावते है परंतु व्यासजी आत्माकोहि कर्त्ता कहेते है. और वाका प्रबल हेतु " शास्त्रका अर्थवत्व " यह कहते है. शास्त्र कहे तो " शासन " वो ज्ञाताकोहि दीये जावे-कर्त्ताकोहि सुनाये जावे, उनकोहि लीये, शास्त्र हो सके. जडकों हुकम कैसा ? वा लीये कर्तृत्व कैसा ? अचित्में वो नहि है. करे एक, और भोगे दुसरा यह भी नहि बनता. वोहि न्याय होहि " जो करे सो भोगे " और वो दो वो आत्माकेहि-लीये हैं. स्वर्ग नर्क वाको वाके कर्मके फलमें मीलते है-यह अनादितें सर्वत्र घोप रहे पर प्रकृतिका कर्तृत्व ठहरानां बनहि कैसे सके ! अथवा आत्माका अकर्तृत्व भी कैसे ठहरे !

सूत्र—उपादाना द्विहारोपदेशाच्च ॥ ३४ ॥

अर्थ—उपादान और विहारके उपदेशके होनेतें.

विवेचन—आत्मा कर्त्ता है-वाकी कृति-यह प्राणोंको लेके आप-

के शरीरमें यथा काम वर्तता है ऐसे उपादान–लेनां–विहार करनां यह सर्व कथन श्रुतियें कहतीहि हैं. और शास्त्र मात्रमें.

सूत्र—व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देश विपर्ययः ॥ ३५ ॥

अर्थ—व्यपदेश होनेसें क्रियाओंका नहि तो निर्देश उल्टा हो जावे.

विवेचन—श्रुति " जो यज्ञ करता है वो फल पावता है " यह सर्व वैदिक क्रिया जो कही सो आत्मा कर्त्ता नहि तो कही क्यों? करे कोन? भोगे कोन? यह बकवादहि ठहरे. देव ऋपी सर्व क्रिया करके–ईन्द्र–शतः ऋतु कर्त्ता, होके–बनता है. वातें आत्मा कर्त्ता हैहि. जो विज्ञानका अर्थ बुद्धि कीये तो निर्देश उलट जावे. करणकों उपदेश केसे बने? तलवारको लकडीको क्यों कहे "तुं वहां जा, यों कर." आत्माहि कर्त्ता बुद्धि तो करण है. " विज्ञानं यज्ञं तनुते " यज्ञ कर्त्ता विज्ञानकों कहे तो–आत्माहि है. वोहि भोक्ता होताहि है.

आत्मामें कर्तृत्व नहि माने तो.

सूत्र—उपलब्धि वद नियमः ॥ ३६ ॥

अर्थ—उपलब्धि सरीख नियम न रहे.

विवेचन—जैसे कहीं गयेकि जाननेका ज्ञातृत्व जीवमें न हो तो नियम न रहे वैसे प्रत्येक जीवमें स्वतः कर्तृत्व न होतो नियम न रहे. विभु माने तो नित्य सर्व क्रीया करे. अकर्त्ता मानेतो कोइ कुछ करताहि नहि. ऐसा ठहरे. सर्वगत माने तो सर्वकी कृतिका फल सर्वकों; अकर्त्ता माने तो काहुतें कुछ बनेहि नहि. वातें प्रतिशरीर भिन्न अणु ज्ञाता आत्मा कर्त्ताभी है. सो आप आपकी कृतिके फल्हि भोगते हैं.

वैसा नही तो फीर कोनका क्या ! मन-अंतःकरण-बुद्धि कोनकी वो फीर ज्यादा, कोनकी कमती-फीर.

सूत्र—। शक्ति विपर्ययात् ॥ ३७ ॥

अर्थ—शक्तिका विपर्यय होनेतें ॥.

विवेचन—करे बुद्धि और विनां कीये भोगे आत्मा-यह कहां का न्याय ! जाकी कर्तृत्व शक्ति नाहिकी भोक्तृत्व शक्ति न रहे तो वाका उलटा पन होजावे. पुरुषकोंहि सर्वत्र भोक्ता कहा है तो कर्ता भयाहि-कर्म पीछेहि तदनुगुणहि-भोक्ता तो होता है.

सूत्र—समाध्यभावा च ॥ ३८ ॥

अर्थ—समाधीका अभाव होनेतें.

विवेचन—बुद्धिका कर्तृत्व माने तो यह भी टंटा है. "समाधीमें" समाधीका करनेवाला-कर्ता आपकों बुद्धितें अन्य मानता है. माननांहि चाहीये. वैसा अनुभव होनां चाहीये. आप प्रकृतितें भिन्न हैहि. फीर-में-प्रकृति हौं-ऐसी समाधी होती है क्या !

वो कर्तृत्व सर्वदा क्यों देख नहि पडता ! वोहि अभिव्यक्त करे, न करे, तव है नहि है करके कहे; बोले तवहि बोलनेकी शक्ति है. और न बोले तव क्या हममें नहि ! वैसे कर्तृत्व हममें हैहि.

सूत्र—यथा च तक्षोभयथा ॥ ३९ ॥

अर्थ—जैसे खाती-वैसे उभय प्रकार.

विवेचन—चाहे लकडा वांसी लेके समारे, चाहे न संवारे इच्छा भइ तो करे. न भइ तो नहि. हमाराहि कर्तृत्व हममें है. बुद्धिका नहि. अचेतनहि तो वाका नाम. जामें स्वतः कर्तृत्व न हो. ज्ञाता कर्ता येहि

तो अचित तत्वतें विलक्षण ऐसी आत्माकी पहिचान हे. पशु भी वो जानते हेंकि अब अमुक देहमें ज्ञाता कर्त्ता रहा, नहि रहा. वोहि चेतन. अब आगे बढे.

अचित् तो स्वतः कर्त्ता नहि तो परतंत्र द्रव्यहि भया. परंतु चित्का यह कर्तृत्व स्वतंत्रहि हे क्या ? वामें कछु-विशेष समझनें जेसा हे ! होनांहि चाहीये. सत्ता पाये रहे अमलदारकी नांइ-वाका कर्तृत्व हे. आखीर सरकारकों परतंत्र हे.

(परायत्ताधिकरणम्)

सूत्र—" परात्तु तच्छ्रुतेः " ॥ ४० ॥

अर्थ—परायत हे ऐसा श्रुति कहती हे.

विवेचन—सर्वके भीतर वो पेठके सर्वकों भमाता हे. सर्वका शास्ता हे. अंतर्यामी हे. ऐसे वचन हे. वामें येहि सार हेकि वाके विना चेतन कुछ कर नहि सकता. ऐसे जीवका कर्तृत्व इश्वरके परतंत्र रहे पर क्या करनां न करनां वो चाहनां चेतनकी इच्छा पर इश्वरनें छोड दीया हे. वातें इश्वर करा दीये पर भी जीमेदार नहि. जेसे राजा आपकी सत्ता अमलदारकों–एक होद्दा सोंपके देता हे. फीर वो राज्यसत्तासें सर्व कुछ करता हे. वो राजाहि कराजाता हे; ऐसे वो राजाके परायत्त कर्तृत्व रहे पर आपकी इच्छाका उपयोग करनेको स्वतंत्रता भी वाकों दी गइ हे. वोहि तो " अधिकार " पाया हे. वातें जवाबदारी वाके उपर रहती हे. परमात्मा करा देता हे. जेसा जीव चाहे वैसा, और वाका परिणाम फल भी वैसा देता हे. वामें और अधिक कृपा करके अमलदारोंकों कायदा दीया हे वाकी नांइ वानें विधि निषेधरुप शास्त्र उनकों दीये हे सो समझके करनां चाहीये. समुझे न

समुझे तो भी फल तो वो नियमानुसारहि होगा. ऐसा चेतनका कर्तृत्व परायत्त होके वो स्वतंत्र भी है. इश्वर वाका सर्व प्रकार सहायक है वो भी एक करणहि समझो.

सूत्र—कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषेधा वैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४१ ॥

अर्थ—कीये प्रयत्नकी अपेक्षा, तो, विहित - प्रतिषेधकी व्यर्थतादि न होनेसें.

विवेचन—" सत्य वदो. " " धर्माचरण करो. " "यज्ञ करो" " दान करो " " हिंसा मत करो " यह सर्व आज्ञा विधि निषेधकी व्यर्थता तब नहि जब वो चाहे तो हम करें. चाहें नां करें ऐसे है. और सर्वके अनुभवकी वार्त्ता होके हम यह जाने रहे पर कभी सत्य बोल ते है और कभी नहि. वो हमकों हमारे मन वाणीकों सर्वेश्वरकी सहाय न हो तो न बोल सके वोहि—बुलाता है तब बोल सकते है. ऐसे हमारा कर्तृत्व वाके परतंत्र रहे पर वो भीतर रहा अपेक्षा करता हैकि हम, क्या क्या इच्छा, क्या निश्चय, क्या करनां चहते है? वो देखके फीर पीछे वो अनुमोदन करता है सहायी बनता है. इतनी स्वतंत्रता-वानें हमकों दी हैं जैसे दो समान पुत्रकों समान धन देके पिता वेपार करने देवे. वामें एक जुगारमें गुमावे—अन्य व्यापारमें वढावे. उनका फीर हिसाव लेके पिता आगे उनतें काम लेवे. जैसे राजा योग्यता देखके अमलदार बनावे. फीर काम अमुक मुदत ठहराइ हो. वहांलों देखे. फीर तपास करके बदल्या—शिक्षा—इनाम—देवे वोहि हिसाव है. कोइको दुर्बुद्धि सुबुद्धि भी इश्वर देता है करके कहते हैं. वो भी पूर्वके भले बुरे कृत्योंके फलमें खास बात है. अभक्त भक्तोंके लीये ऐसा कहा जाता है. असुर सुरका अर्थहि -

पूर्व धर्मके फलतें पाई योग्यता है. तात्पर्य अंत ईश्वरके परायत्त सर्व है. यह जो सत्य है. त्यों वो सत्य संकल्पके नियम वामें हमको जो हक दे रखे हैं, वोभी सत्य है. और वातें हम वढचढके अंत वाके समान भोगवाले वाहिकी कृपातें हो-सकते हैं. वो हम कर्त्ता है और यो कृतिका फल वाके वश, वाके नियम-कृपा-के वश है वातें ऐसे हम परायत्तभी हैं और कर्त्ताभी हैं. परंतु हममें बुद्धिका कर्तृत्व वा कर्तृत्व हैहि नहि. यह सर्वथा अठीक है.

इतना जीवतत्त्वका भिन्न विवेचन करके अव वाका ब्रह्मके साथ संबंध जोडते हैं. क्योंकि वो ब्रह्मका शरीर, अंग, अंश, धर्म, गुण, शक्ति जो कहो सो है. अचित्चित् उभय तत्व हैं. उनके स्वभाव भिन्न हैं. परंतु वो उभयमें शरीरी एकहि है. वो एककेहि शरीर उभय वर्ग कहे तो अचितके विकार मात्र और जीव वर्ग मात्र है. वातें उनकों वाके अंशभी कहे तो ठीक है. और वो वातें भिन्न कहे अभिन्न कहे यह शरीर शरीरी व्यवस्था करनेतें सब घटता है. सूत्रकार वातें कहेते हैं.

(अंशाधिकरणम्)

सूत्र—अंशो नाना व्यपदेशात् अन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयते एके ॥ ४२ ॥

अर्थ—अंश नाना व्यपदेशतें और अन्यथाभी एक पेदाशकी तव कहेतें.

विवेचन—जीव वर्ग ब्रह्म-जगत कारण,-का अंश सर्वदा है. श्रष्टी प्रलय मुक्त कोईभी अवस्थामें वो अंश सो अनंतका टुकडा तो नहि हो सकता, त्यों आप सर्वज्ञ वो अल्पज्ञ, आप ईश वो अनीश-वो आपहि भया-योंभी नहि. फीर अंश कहींकेभी कही " नानात्व " क-

धनभी कीया है. कहीं अन्यथा कहे तो वाका "एकत्व" भी कहा है जेसे एक शाखामें उनको "ब्रह्मदासा ब्रह्मदासकीतव" ऐसा कहा है तातें अंश–सो शरीर : विभूति–धर्म–त्रण–शक्ति–या प्रकारहि ठीक है. जातें गुणगुणी शरीर शरीरी धर्म धर्मी शक्ति शक्तिमानको एकभी कहे. भिन्नभी कहे वो अंशी यह अंश यों कही सके. एसाहि अर्थ लेके जीवको अंश श्रुतिमेंभी कहा है. वहां पादशब्द धरा है चार अंशवाला "चार पादवाला" ब्रह्मकों कहीके.

सूत्र—मंत्र वर्णात् ॥ ४३ ॥

अर्थ—मंत्रके वर्णतें॥

विवेचन—पादोऽस्य विश्वाभूतानि–यह विश्वभूत वाका पाद–कहे, तसे जीव वर्ग वाका एक भाग एक अंश–सो शरीर करकेहि–वैभव करकेहि–होहि सके. और हैहि–वो ऐसे अंश हैहि.

सूत्र—अपिस्मर्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—स्मृतिभी कहती है.

विवेचन—"मम वांशो जीव लोके" मेरा अंश जीव लोकमें "जीव भूत सनातन" है–ऐसे पुरुषोत्तमका अंश, दोनो प्रकारके पुरुष, भूत, और कूटस्थकों कहे हैं. सो आप उनके भीतर धारक नियंता होकेहि वहां कहे हैं. वोहि अर्थ दृष्टांतनें सुदृढ करने है कि अंश कहे तो नानात्व और एकत्व दोनों बने. दोनोंके खास धर्म–भिन्न रहीके.

सूत्र—प्रकाशादिवत्तु न एवं परः ॥ ४५ ॥

अर्थ—प्रकाश आदि सरीख ऐसा पर नहि.

विवेचन—दीप और वाका प्रकाश–यो भिन्न है. पर भिन्न कीये

विवेचन—वो देखाव मात्र वास्तविक सत्य नहि:- जैसे मनुष्य नहि: किंतु वाका छाया होवे, तैसे—वो वाद, युक्ति-सिद्धांतका आभास है. क्योंकि एकहि सब भया हो तब फीर:

सूत्र—अदृष्टानियमात् ॥ ५० ॥

अर्थ—अदृष्टका न नियम रहेनेतें.

विवेचन—वो आभासवाद ठीक नहि—कोनका कर्म कोनके साथ एक चेतनहि कर्त्ता भोक्ता.—वहां यह नियमोंकी कहां पंचाती चले! केसे व्यवस्था बने! बडीहि गडबड हो जावे.

सूत्र—अभिसंध्यादिष्वपि चैवम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—संकल्प करने आदिमेंभी वैसेहि गडबड होनी चाहीये.

विवेचन—एक काममें हांहि कोनकी और नांहि कोनकी. उदासीनता कोनकी; और आग्रह कोनका ! एकहि चेतन हो तो जगतमें एकहि संकल्पानुसार एकहि प्रकारको कृत्य एकहि प्रकारके भोग सबके होंनें चाहीये सो नहि बातें एक चेतनवाद ठीक नहि:

सूत्र—प्रदेशभेदादिति चेन्नांतर्भावात् ॥ ५२ ॥

अर्थ—घट मठ आदि उपाधीतें प्रदेशभिन्न होजाते है केहे-तोभी क्या ? वा सर्व एककेहि अंतर भाव होनेतें.

विवेचन—कर्तृत्व भोग्यत्व एककाहि लागु होनो सकै. हाथ पे प्रदेश भेद रहे पर जहां जब आग छुवे तब असर एक जाका अंतरभाव है वाकीहि होती है. वातें यह एक चेतन—वाद सर्वथा ठीक नहि. या प्रकार ऐक्य होंहि सकता नहि ऐसा ऐक्य हैहि नहि. किंतु जो प्रकार कहीं आये—शरीर शरीरी समझाई आवे, वोहि वेदांतका ऐक्य है वोहि योप है. यह युक्तियोंके खंडन

प्रकरणमें जीतनें कुतर्क उठना संभव उतनें अचित चित ईश्वरके विषयमें वेद बाह्य कुदृष्टी सर्वके कहीके समाधानपूर्वक सिद्धांतको अविचल करते भये यह पाद यहां पूरा करते है; वामें चित् शरीरतत्वका अणुनित्य ज्ञाता कर्त्ता भोक्ता परायत्त आका अंश कहीके मुमकार समुझाया है अब अचित् शरीरके विषयमें विशेष कहीके शेष पादतें अध्यायकी पूर्ती करते है. पूरे ब्रह्मका पूरा स्वरुप पूराज्ञान--सशरीर पूरे कारणका पूरा कार्य समुझांके भया है सो सुदृढ करते है.

यहां द्वितीया ध्यायका तृतीयपाद इति.

॥ द्वितीयाध्याय चतुर्थपादः ॥

परब्रह्म तो—कारण, कार्य—दशामें स्वरुपतें एकसा रहता है. परंतु वाका शरीर कारण दशामें ते सूक्ष्ममेंतें—स्थूल—कार्य होनेमें अचितके वियत् आदि विकार होते जाते है. और चित्तके ज्ञानकादि विकाश होनेतें स्वरुपतें वो दुसरा प्रकार (अन्यथा) नहि होते है. वातें उनकी उत्पत्ति नहि होती है. ऐसा कहा और वो प्रसंगमें जीव चितके स्वरुपका विशोधन कीयांकि वो नहि—उत्पन्न होता है ऐसा अनादि अविनाशी है. संकोच विकाश सो वाका ज्ञान पाता है. एसा ज्ञानवान; और वो ज्ञान आप ज्ञानस्वरुपहि होनेतें सदा आपमें है और रहेगाहि—वैसेहि वामें कर्तृत्वभी है. वो सर्व चेतन—ज्ञातृत्व कर्तृत्ववाले अपने ज्ञानतें सर्वमें व्यापक रहे पर आप अणु और परमात्माके परवश वाको तो शरीर—अंश है. वैसेहि प्रकृतिभी वो ब्रह्मविना नहि रहीहि सकती—यह आगे समुझाय गये है. परंतु वो कार्यरुपमें जो चोवीश प्रकारकी होती है वामें जो स्थूलरुप,—विकार—पृथ्वी जल तेज

आदी होते हे उनके स्वरुपरचनाभी समुझाये गये. परंतु वाके सूक्ष्मरुप विकार, जो इन्द्रिय और प्राण जीनकों–अचित् पदार्थ मात्रके साथ संबंध नहि है किंतु चित् विशिष्ट अचित्–बद्ध–जीवात्माकेहि साथ संबंध है वो क्या, कैसे, यह–कार्य–होके रहे है ? सो ठीकठीक अब समझाते है. क्योंकि " हम " जो एक पिंड है–यामें वोहि हमारे–जीवके–मंत्री प्रधान कार्यभारी है. पंचमहाभूतका तो पुतलाहि मात्र है. फीर जीवकोभी मात्र ज्ञान नहि किंतु ज्ञानवान कहा–वो ज्ञानके संगी जो है उनका शोधनभी जो साथ समुझे तो एक पिंडका ठीक ज्ञान हो. यह वेदांत ब्रह्मविद्यामय हे उनमें ब्रह्मको जाननेका उपाय–उपासना–कही है वो प्रतिक अप्रतिक दो प्रकारकी होनेतें, प्रतिक कहे तो अवर तत्वद्वाराभी परमात्माकी उपासना यामें कही है. और वहां वो वो तत्वहि परमात्माके वाचक, वो परमात्माके शरीर होनेतें–और वो वो शरीरद्वारा परमात्माकी उपासना करनेकी होनेतें कहे है. और वास्तविक भी देखे तो वो प्रत्येक परमात्माकी शक्तियें वडी जबर, एक दुसरी विलक्षण ऐसे महत प्रभाववाली है कि उन्हीका सब कुछ कहे तो चल सके. यातें श्रुतियोंमें वो वो शक्ति शरीरके वाचक शब्दका प्रयोग परमात्माके लीये करनेतें अर्थ ग्रहण करनेमें वहां संदेहभी उठता है कि यह शब्द यदि वो तत्वकेहि वाचक है तो आपहि अनादि है क्या ! तो फीर अनादि सो कीतनें तत्व ! यह वेदांतमें क्या अडबड है ! ऐसे स्थानोमें ऐसी शंकायें दूर करनेकोहि सूत्रोंकी आवश्यकता सिद्ध भयी है. त्यों यह अचित्‌भी तो एक तत्व है. परब्रह्मकी कार्यावस्थामें वो प्रधान भाग लेता है वातें तों प्रधान कहा जाता है. वाके विकार चोवीश सामान्य मान लीये है. परंतु तत्वगणनामें व्यास समासपद्धतीसें न्युनाधिक संख्या प्रकारभी कहेजाते है. वहां तत्वोंके विकार निश्चय करके कीतने, वोभी शंकास्पद होजावे, और श्रुतियोंपेंहि वो

शंका आ वैसेकि वो परस्पर विरुद्ध क्यों स्त्रियोंकी संख्या बतावती है? वो शंका शमनार्थभी यह सूत्र उच्चारी है. वो प्रकरण यहां अब मारंभ होता है. आकाशादि स्थूल तत्वोंकी उत्पत्ति अत्यन्तर्ते वायु तेज जल पृथ्वी पर्यंत कहीं चुके. वो सबमें सर्वात्मा वोहि सबका मुख्य कारण और वाकीहि वो कार्यावस्था है यों समुज्ज चुके. अब इसे मीतर.

(प्राणोत्पत्त्याधिकरणम्)

सूत्र—तथा प्राणाः ॥ १ ॥

अर्थ—तैसे प्राण ॥

विवेचन—प्राणकों जीववत् ब्रह्मका कार्य माने. आकाशकी नांइ नहि. क्योंकि श्रुति " पूर्व ऋषी रहे " करके प्राणोका प्रलयावस्थामें होनां कहती है. तो " तथा " कहेतो जीव सरीखे प्राणोंकोभी (इन्द्रीयोंका नामभी प्राण है) नहि उत्पन्न होते हैं. ऐसा पूर्वपक्ष है. श्रुतिके अर्थतें उठीभयी शंका है यह समाधानका सूत्र है तथा कहे तो वियत् आदिवत् प्राण उत्पन्न होते हैं. " सत्तुहि रहा. " एतस्मा ज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च " करके प्राणोंकी उत्पत्ति स्पष्ट कही है. यहजो " ऋषय " करीके प्राणकी श्रुति कही सो परमात्माके लीये वो शब्दका प्रयोग कीया है एसा वहांहि प्रकरणकों पुरा देखे तो सिद्ध होता है वहां " ऋषयः " ऐसे बहुवचन है. परंतु वो.

सूत्र—गौण्य संभवात् तत्प्राक् श्रुते श्च ॥ २ ॥

अर्थ—वो गौणी असंभवते और पूर्व श्रुति होनेतें.

विवेचन—बहु शक्ति कहेतो बहु शक्तिवाला ऐसा बहुवचन गौण है. एकके हि लीये है. क्योंकि बहु जगत् कारण हो यह असंभवित है. और श्रुतिभी वो तब एकहि रहा कहती है.

सूत्र—तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॥ ३ ॥

अर्थ—वो पूर्वक होनेते वाचः

विवेचन—परमात्मायुक्त वाच-प्राण-समझनां. परमात्मा शरीरी वो शरीर. वातें वो परमात्माको हि नाम है. वाच-वाणी-प्राण-सर्व वामेंहि रहे, वो सर्व अव्याकृत रहे, वो पूर्वकहि ब्रह्म रहा. वो एकहि दीखाता रहा. फीर नाम रुपवाला भया. वातें वो सर्व पीछेतें भये. येहि वागादि इंद्रियें, वो कार्यरुप हैं. वो तब नहि रही. यह सार है. प्राण कहे तो इन्द्रियें वो उत्पन्न भयी है. आकाशकी नांइ यह ठहरा अब कीतनी हैं? वामेभी शंका है.

(सप्तगत्यधिकरणम्)

सूत्र—सप्तगतेर्विशेषितत्वा च ॥ ४ ॥

अर्थ—सात जानेमें, खास होनेतें ॥

विवेचन—जब आत्मा देहको छोडके जाता है तब संग श्रोत्र त्वक चक्षु जिव्हा घ्राण बुद्धि और मन ऐसे सात संग जाती हैं; ऐसा श्रुति कहती हैं; तो वो सात होनी चाहीये. यह ठीक नहि. अधिक भी दीखती हैं! अनुभवसिद्ध है. जैसे

सूत्र—हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हस्त आदि तो रहे हैं यातें ऐसा नहि है.

विवेचन—सात नहि. किंतु एकादश है. पांच ज्ञानेंद्रिय, मन, वैसे पांच कर्मेन्द्रिय भी—जामें हस्तादि भोगके उपकरण उनके भिन्न कार्य वो जीवके रहे देखपडती हैंहि. वातें सातहि नहि है. मन, बुद्धि, चित, अहंकार; यह तो मनकेहि भेद है. इन्द्रिय तो एकहि

वो भीतरकी "अंतरेन्द्रिय" कही जाती है. वोंतें अंतःकरण भी याका नाम है. श्रुति स्मृतिभी इन्द्रियें एकादश है ऐसाहि कहती है. गमन आदिमें कमती रहेनेतें इन्द्रियें उतनीहि है. यों नहि ठहर सकता. सब पटेवाले संग स्वारीमें नहि आये पर ओफीसमें जीतनोंकी नीम नोक उनके नियतकाम भिन्न भिन्नके साथ जब-जीव उन सबतें काम लेता है-तब "करण" होने तें काम देती है. वो सब गीणती चाहीये. अब वो जैसे पृथ्वी रेहेनेको सबके लीये एक, तेज एक, आकाश एक, ऐसे यह इंद्रियें नहि. वोतो प्रतिशरीर भिन्न अर्थात् विभु नहि है. किंतु

(प्राणाणुत्वाधिकरणम्)

सूत्र—अणव श्च ॥ ६ ॥

अर्थ—वो अणु है.

विवेचन—इतनी छोटीकी हम पास बेठे वो जीवके साथ चली जाती रहे पर देखभी नहि सकते-उनमें फीर.

सूत्र—श्रेष्ट श्च ॥ ७ ॥

अर्थ—और श्रेष्ठ.

विवेचन—वो "प्राण" मुख्यप्राण-वो सबका प्रबल सहायी होनेतें इन्द्रियेंभी प्राण नाम पाई है. वो रहे वहांलोंहि सब ठीक रही सकती है. सब वो एकके साथ ग्रथीत है. वो क्या है? वाके दो रुप दीखते है. और दो नामभी देते है. वायु मात्र जो एक भूत है सो, वा वाकी क्रिया विशेष!

वायुक्रियाधिकरणम्)

सूत्र—न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ८ ॥

अर्थ—नवायु क्रियामें प्रथक् उपदेश होनेतें.

विवेचन—न वायुमात्र, न क्रिया मात्र. क्योंकि प्रथक् उपदेश श्रुतिमें दोनोंके प्रथक् नाम है. " एतस्माज्जायते प्राणो, मनः सर्वेन्द्रियाणि खंवायुः ऐसे प्राण और वायु दो कहे है. न क्रियामात्र-न और तत्व. क्रियावाला वायु द्रव्य सो प्राण है.

यह प्राण सो वायुका विकार. सो जैसे अग्नि है वैसा और भूत है क्या ? नहि.

सूत्र—चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॥९॥

अर्थ—चक्षु आदि सरीख वाके साथ उपकरण होनेतें.

विवेचन—वो एक और छठवा भूत नहि है. पांचभूतमें वायु है, सोहि है. परंतु यहां और रुपमें वोहि तत्व जैसे चक्षु आदि आत्माके उपकरण है तैसे यह वो इन्द्रियोंके साथ शिष्ट वडा मददगार-उपकार करके रहता है. वो दीखता तो नहि. जैसें चक्षु आदि अपना काम करते भये करण दीखते हैं-तैसे. फीर करण कैसे ?

सूत्र—अकरणत्वा च न दोपस्तथाहि दर्शयति।१०।

अर्थ—अकरण होनेतें न दोप है तैसाहि देख पडता है.

विवेचन—करण-क्रिया-अकरण-अक्रिय खास कोइ काम करता नहि दीख पडता. यह करणनेत्रादिकोंकी नांइ वो जीवका उपकारी नहि दीखता है. वो दोप नहि है. वाका तो वडा उपकार है. श-

रीर और इन्द्रियोंको धारण करनेमें वाकीहि क्रिया उपकारी है. ऐसा श्रुतिमें देख पडता है. वो निकले तो सर्व निकलनें लगते है. वोहि तो प्राण अपान व्यान समान उदान ऐसा पंचधा होइके शरीरमें इन्द्रियादिको धारण करता भया जीवका वडा उपकार कर रहा है.

यह नाम भेद काम भेद तें पांच कहे तो पांच तत्त्व है क्या ?

सूत्र—पंचवृत्तिर्मनो वद्व्यपदिश्यते ॥ ११ ॥

अर्थ—मन सरीख पांचवृत्ति व्यपदेश है.

विवेचन—जैसे एक मनका वृत्तिभेदसें नामभेद—काम संकल्प विचिकित्सा. श्रद्धा अश्रद्धा—धृति—ह्री—धी—भी—यह सर्व मन है." करके वचन है. तैसे यह प्राण अपान व्यान समान उदान यह प्राणहि है. और तत्व नहि है.

श्रेष्ठाणुत्वाधिकरणम्)

सूत्र—अणुश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—और अणु.

विवेचन—निकलते हैं. प्रवेश करते हैं. जीवके संग जाते हैं तो अणु भयेहि.

जीवोंको जो अचित् तत्वहि विलक्षण अनेक आकारमें शरीरमेंहि सहाय कर रहा है. अथवा परमात्माका कारणावस्थामेंतें कार्यावस्था होनेमें. एकके वहुरुप होनेमें. वो वहुमेंतें प्रत्येक " रूप "में वो अचित् तत्व कीतनी प्रकार विचित्र विकृति पाके काम कर रहा है. वो अभी वहिर्दल उनका शोधन कीया. यह इन्द्रियें जैसी प्रत्यक्ष नहि दीखती, कान गोलकमें श्रवण ग्रहण कीया जावे. वहांलों कहेकि श्रवणेन्द्रिय है.

न सुने तो मानेकि गइ. कब कहां कैसी, रहा, गइ, वो चक्षुका विषय नहि. वैसी वो सूक्ष्म है. वो फीर वैसीहि नहि. उनमें औरभी है. सो उनके अभिमानी देवताओंका शक्तितें प्रवेश वो वो इन्द्रिय अभिमानी वो वो देवभी है. जो परमात्मातें भिन्न जैसे भूतोंमें जलका वरुण तैसे हैं. वो सर्वका उनमें शक्तितें रहेनां परमात्माकी आज्ञा प्रेरणातें है. तबहि वो इन्द्रियोंकि स्थिति प्रवृत्ति है. वो देवशक्तिके साथ इन्द्रियशक्ति ऐसी सर्वेश्वरकी, उभयशक्ति, तीसरे प्राकृत तत्वके वो आकाररुप शक्ति चोथी वो जो देह गोलकमें रहे वोभी वाकी शक्ति सर्व वाके शरीर वो शरीरी वाके परवश ऐसे अचित कार्यरुपभी वो श्रीहरि आप कीहि शक्तियोंका उत्थापन करके वो बना है. क्या आश्चर्य है ! यह इन्द्रियोंमें देव है वो कहीतो गये हैं. " अभिमानी व्यपदेशस्तु " सूत्रमें श्रुतियें बहुत या लीये है. अब यह देवोंकी हमारे एक देहके कारोबारमें ईतनी बडी सहाय है यह हम जानतेभी नहि. फीर वो हमारे संकल्पतें कहांसे आके रहे. सहाय करे !

सूत्र—ज्योतिराद्यधिष्टानं तु तदामननात्
प्राणवता शब्दात् ॥ १३ ॥

अर्थ—अग्नि आदिका अधिष्टान तो वाके संकल्पतें होनेतें. प्राणवाले शब्द होनेतें.

विवेचन—" प्राणवता " वो प्राण कहे तो इन्द्रियोंवाले जो जीव उनमें जो प्राणोंमें वो वो देवका निवासस्थान—अधिष्टान भया है. वो ज्योति आदि देव जो उनमें आईके बसे हैं, सो " तत् आममनात् " तत् वोहि " परमात्माके " अभि मुख होके मनतें संकल्पतें है. ऐसा " शब्दात् " शास्त्र केहता है. वो सर्वकी स्थिति, प्रवृत्ति, स्वरुप, तेहि परमात्माके परतंत्र श्रुतियें कह रही है. " जो अग्निमें जो आदित्यमें—

जो वायुमें रहा है " करके अंतर्यामी ब्राह्मणमें सर्वमें वो रहीके–उनका नियमन करता है ऐसा कहाहि है; त्यों " भीषास्मात् वातः पवते " आदि श्रुतिभी वाके भयतें वायु अग्नि सूर्य इन्द्र अपनां काम कर रहे है करीके कहती है. और वाके प्रशासनमें सर्व जगत धारी रहें है. ऐसे परमात्माके आधीन–देव–इन्द्रियोंमें आइके वसें. तब इन्द्रियें हमकों काम दे रही है. वो खास उपकारी न इन्द्रियें, न देव; वोहि देवाधिदेव है. जो आप ऐसे कार्यरुप अचित्‌काभी सर्व प्रकार शरीरी होके सर्व वाके विकारसेंभी साक्षात परंपरा वसके बना भया जगत चला रहा है. वो खास कवतें है.

सूत्र—तस्य च नित्यत्वात् ॥ १४ ॥

अर्थ—उनका नित्यत्व होनेतें.

विवेचन—सर्वका परमात्माके वश रहेनां नित्य है. वो स्वरुप सिद्ध है. कोइ नयी वात, नया मीलाप उनका और परमात्माका नहि है. वो वो आकारमें नहि रहे तबभी उनके बीजरुपमेंभी आप रहा. आपके संकल्परुप प्रवेश करकेहि " सत्–असत् भया " करके श्रुति कहती रही है. सर्व जगतका नियंता भीतर रहीकेहि है. अर्थात् वो अचित् कार्यरुप वा प्रकार वा विस्तार वा शरीरतें हो रहा है!!

प्राण शब्द इन्द्रियोंके लीयेभी प्रयोग कीया है. यह स्पष्ट सूत्रकारहि करदेते हैं.

(इन्द्रियाधिकरणम्)

सूत्र—त इन्द्रियाणि तत् व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥ १५ ॥

अर्थ—जो इन्द्रियें वो व्यपदेश होनेतें अन्यत्र श्रेष्ठ होनेतें.

विवेचन—श्रेष्ठके अन्यत्र श्रेष्ठ प्राण व्यतिरिक्त जो प्राण कहे

जाते है सो तो इन्द्रियें. और श्रेष्ट वो तो प्राण और इन्द्रियें वास्तविकमें ओरहि है.

सूत्र—भेदश्रुतेर्वैलक्षण्याच्च ॥ १६ ॥

अर्थ—भेद श्रुतितें विलक्षणतातें.

विवेचन—श्रुति " यातें प्राण मन इन्द्रियें होती है. " करके भेद कहती है. चक्षु, कान, मनतें प्राणका विलक्षणत्व भी समुझा जाता है वो श्रेष्ट है. सर्व इन्द्रियें चुप रहे शुपुप्तिमें वो अपना काम कीयेहि जाता है. वो शरीर और इन्द्रियोंको धारण होनेतें इन्द्रियोंको भी प्राण कहते है.

यह सर्व इन्द्रिये प्राणको शरीरमें धारण करनेमें परमात्माके संकल्पकी प्राधान्यता उनकी स्थिति प्रकृति परमात्माके आयत, ते सेहि उत्पत्तिभी है. कार्यका स्वरुप कार्यरुप जो जगत नाम रुपवाला-कीया गया सो कारणावस्थामेंतें वोभी वर्तेहि. सूक्ष्म प्रकृतिकों संकल्पतें क्षोभ पमायके,-मिश्र करायके, वातें अंत तेज अनादिभूत प्रकटायके वामें कहेतो कारणमेंतें यहांलो आपहि आपके यह शरीरको कार्य दृशामें लायके फीर वामें यहजीवको जगानेको आपके संकल्परुप जीवके साथ अनुप्रवेश करके वो जीवद्वारा सर्वको फीर विशेष नाम रुपवाला करा वना भया है. यह सद्विद्यामें विस्तारतें है. वो रिति कर्त्ताभी आपहि है. और ब्रह्मादि सर्व पीछे भये है. वो अंत कही दीये ऐसे कार्यभी आप है. कार्य प्रकरण यहां पूरा होता है सो कहते हैं.

(संज्ञामूर्तिक्लृप्त्यधिकरणम्)

सूत्र—संज्ञामूर्त्तिक्लृप्तिस्तुत्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ॥ १७ ॥

अर्थ—नाम, रुप, क्रीया, ऐसे तीनवाल्या करता है—उपदेशतें.

विवेचन—नाम रुपवाला तो जगत् त्रिवृत करण करके तेज अन्न जल प्रथम होके उनकों मिश्रण तीनका मीलाप—और उनतें नामरुप क्रीयावाला जगत करनां यह परमात्मातें है. ब्रह्मातें नहि. ब्रह्मा तो तीन तत्वका मिश्रण कहो—कि पांच कहीके पंचीकरण कहो—चाहे एकके त्रिगुणका मिश्रण कहो—परंतु प्रकृतिमेंतें अंडभी वने, पीछे वामेंतें पुरुष आकारमें प्रकट भये ता पीछेका जगत करनेवाले है. वोभी परमात्माकी सहायसें, वो कर्तृत्वभी श्रीहरिका दीया भया—परंतु मूल तो "अनेन जीवेन आत्मनाऽनुप्रविश्य नाम रूपे व्याकरवाणी" करके श्रुति कहती है. सो जीव जाका उपकरण—और वाके द्वारा जो नाम रुप करावनेवाला, सो जीव होहि नहि सकता—वो तो जीवका शरीरी जो अचितका शरीरीभी रहा वोहि है. आपहिनें आपके जीव शरीरद्वारा आपके आचित् शरीरमें नाम रूप करवाये—आपभीतर होके संकल्परूप प्रवेश करके करवाये—ऐसे आप कारणरुपमेंतें कार्यरुप, संकल्पतें शरीरद्वारा आपस्वतः अधिकारी रहीके भया है. यह वेदांतका घोष है. जीवका वा प्रकृतिका स्वतंत्र कर्तृत्व नहि है. वामेंभी कारणमें कार्यदशामें लानेंकों त्रिवृत करण तो वाकाहि है. और जगेभी श्रुतिमें "अन्न पाये तो तीन प्रकारका होता है. जो मोटा भाग रहेता है सो मांस—जो छोटा सो मन, ऐसेहि जलका है—तेजकाभी है—"अन्नमय मन" "जलमय प्राण" "तेजमय वाक्" यह सूक्ष्मरुप उनके उनके है. यहभी एक प्रकारका त्रिवृत करण है सो जीवकृत—वो जीव खाय पीये तो होता है. सो यह नहि वो तो.

सूत्र—मांसादिभौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥१८॥

अर्थ—मांस आदि लेके भूमिका—जैसे और दोके लीये कहा है वैसा समझनां.

विवेचन—कही चुके अंन–मन–भी होता है. मांसरुपभी होता है पुरीपमलभी–वेसे जल–प्राण मुत्रादि जो जो क्रम कहे हैं वो सर्व तीन प्रकार चला जाता है वो त्रिवृत करण श्रुतिमें जीवकृत कहा है.

मुख्य जो त्रिवृत करण कहोकि अव्याकृतमेंते व्याकृतदशामें आवनां कहो, वो तो सर्वेश्वर श्रीमन्नारायणतेंहि है. वामेंते फीर आगे सृष्टी चलके अनेक प्रकार–होतीहि है. जैसे यह देह पोषणका क्रम कहा–वहां तेज अंन जल तीनभी मिश्र है. परंतु वामें नाम मात्र तेज सो.

सूत्र——वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ॥ १९ ॥

अर्थ—विशेषतें तो वो वाद है वो वाद है.

विवेचन—जामें जाकी विशेषता सो वाका नाम होता है जैसे मीठाश बहु होनेतें मीठाई कही जावे. जामें घृत दुध अंन रहेपरभी–तेसे यह तत्त्वोंके नाम यद्यपि वो मिश्रण है–तोभी जामें जाका बहुत्व प्राधान्यत्व है. सो वाका नाम है. वो वाद है. दो वेर अध्याय समाप्ति-के लीये है. हम जीव खाते पीते जीते क्या क्या वोहि कर्त्ताकी कृपा चतुराइसें हो रही है. वाका अनुभव लेते भये या प्रकार तनइन्द्रियें जीवोंके ज्ञान और स्वरुपके साथ वाके आधीन जैसे पिंड वैसेहि ब्रह्मांड है. हम क्या है. वोहि मुख्य है. वाका शरीर विभूति अंश सो हम तो है यह जगत या प्रकार कार्य सत्य है. वोहि है. वोहि कारण है. वो सत्य सदा दो तत्त्व विशिष्ट एक अद्वितीय सत्, ब्रह्म आत्माका वाचक अंतर्यामी दिव्य देव नारायण सो ब्रह्म है.

सर्व अचित् चित् तत्वके स्वरुप स्थिति प्रकृति वाके आधीन स-र्वदा है. न देव न मनुष्य न पृथ्वी न आकाश न देह न इन्द्रिये. न प्राण–न मन–न धन–न जन–न स्वर्ग–न अपवर्ग कही कोइ कभी स्व-तंत्र है. जो स्वतंत्र शेपी स्वामी सो एकहि संपूर्ण ज्ञान शक्ति युक्त

स्वतःहि परिपुर्ण और आनंदघन आनंदवान अनंत होके ऐसी अनंत विभूतिवान वो विभूति भी दोनों प्रकार–जहां जीतनी जैसी है होती है सो आप भीतर रहीके आपकी इच्छा नियमके वश–वो सर्व याका शरीर जो कुछभी है कहांभी है, कबभी है. जीतनी विचित्रता विविधता सो वाकी शक्तियें वैभवोंका विस्तार है. ऐसा सर्व साधन सामान शक्ति गुण स्वरुपवाला ब्रह्म संक्षिप्तमें कहेतो अचित् - चित् विशिष्ट कारण कार्य सत, जगत; वामें आप फीर एकरुप अनेकरुप दिव्य रुप अदृश्य दृश्य सर्व है. वा विना कुछ भी नहि. यातें वोहि सर्व है. वैसा वो एकहि अद्वितीयहि सर्वत्र एक प्रकार ब्रह्मात्मक ही सब कुछ हम तुम वोहि जगत भी वोहि नानात्व नहि. ऐसा जाने बुझे माने अनुभवे सो पुरा ज्ञानी. वो एकका ज्ञान कहोकि सर्वका ज्ञान कहो येहि सत्य है. यातें विरुद्ध चित् अचित् वा इश्वर सृष्टी वा प्रलय जन्ममरण वा देव मनुष्यके विषयमें जो कहे सो ठीक नहि. ऐसा दो अध्यायतें श्री वेदव्यास स्वामीने श्रुतियोंके संदेहोंकी निवृत्तिपूर्वक उन्हीके आधारतें उन्हीके सारभूत सिद्ध कीया हमकों दीया हमनें तो वो वैसेहि स्वीकार कीया. अनुभव तो अधिकार होगा तब होगा. वो तो उपाय करनेंतें होता है. वोहि बात अब आगे आती है. यातें यहां अब.

—द्वितीय अध्याय चतुर्थ पादका इति है—

श्रीमते रामानुजायनमः

तृतीयाध्याय प्रथमपाद.

अखिल जगतका एक कारण, जो समग्र दोषकी गंधतेंभी रहित, और अपरिमित उदार गुण सागर, सकल इतरतें विलक्षण, ऐसा पर-

ब्रह्म--जाकी उपासना मुमुक्षुकों करनी वो कैसा है ? सो दो अध्यायतें कहा. अब तृतीयमें " उपासना " प्राप्तीका उपाय, और चौथेमें प्राप्तीका (मुक्तिका) स्वरूप कहेंगे. वामें यह तृतीयमें उपासना जो उपाय कहा जाता है वा विषयीक विचार करते हैं. वामें प्रथम जो होनां चाहीये ऐसा उपायका पूर्व अंगही कहें तो क्या है ? कि इतर विषयमें वितृष्णा और जाकों पावनेकी वाकी अतितृष्णा यह दो बात उत्पन्न होनी चाहीये. उपाय कीये सोभी वो रुचीके अनुगुण मंद शीघ्र कनिष्ठ उत्तम प्रकार होते हैं. वो ईच्छा करनेवाला जीव जाकों अभीलों प्राकृतमें रुची है; वाकों प्रथम अच्छी प्रकार स्मरण करावनां चाहीये कि ऐसे प्राकृत संगहि चढे तो वाते क्या क्या दुर्दशा ! भ्रमण, और जाग्रत स्वप्न, शुषुप्ति, मूर्छा, मरण, लोकांतर पाये पर भी फीर गीरनां, अवतरनां यह सर्व रहता है. वातें वो ठीक ठीक समुझें तो, वाका स्मरण बना रहे तो, वामें वितृष्णा बनी रहे. और फीर वैसेहि वो प्रकृति संबंध छूटे तो जो पावनें योग्य जाकी आशातें प्रकृतिकों छोडनां वो कल्याण गुणाकर, अति सुखरुप, और सुखकर है. यह समुझाये तो वामें तृष्णा अति भी उत्पन्न होती है. यातें प्रथम और द्वितीय पादमें वो विचार है. ऐसे उपाय प्रकरणका आरंभ वो जो "जीवकों" लेके है वाका प्रसंगगत अध्यायसें सूत्रोंमें संकलीत करलीया है. क्योंकि वहां अंतमें प्रसंग यह रहाकि नामरुप पावनेंवाले जीवका सूक्ष्म देहमें तें बंधनमें तें त्रिवृत होनेतें कैसे स्थूल देह कोन तें वो पावता है वो " संज्ञा मूर्ति " आदि सूत्र तें कहा अब यहां वा लीयेहि "तत्" शब्द उपयोग करके यहां सूत्र यह प्रसंग उठाता है. कि जीवको वो देह पाये तो छुट्टी पाये–जागीर पाये ऐसा नहि है, फीर वामें तें तो जानां पडता है; वो कोन प्रकार ! संग कुछ भी रहीके जाता है–फीर ये विचार करनां चाहीये,—जहां गये वहां सर्व

ग्निमें होमा जाता है सो रेत देह पाता है. वहांसें स्त्रीकी योनीमें गेरा गयाकि फीर बाकी पुरुषकी देह बनती है. ऐसे पांच आहुती पांच अग्निमें पाये तो जैसे प्रथम यज्ञ अग्नि-फीर स्वर्गरूप अग्नि, फीर पर्जन्य, पृथ्वी, फीर पुरुष अग्नि, फीर योषिता अग्नि–ऐसे पांचमी आहुती पाये तो हम पुरुष नाम पावते हैं" यह हमारा एक प्रकारका भ्रमण, यह तो सुकर्मका परिणाम परंपरा सर्वत्र वो सूक्ष्म देह साथ होती है. भूत सूक्ष्म सदा हमकों लगे रहते हैं. स्वर्ग जाते, और फीर स्वर्गमें यह पांचोरुपमें, अंत मनुष्याकार पावतेभी वो परिष्वंग होते है. वो सर्व जगे "आप" जल शब्द है. श्रुतिमें वो नाम सूक्ष्म देहका है जाके साथ हम रहेतेहि है. जैसे अंनमें, वीर्यमें, जलमें-तबभी वो केवल जल तो नहि है. उपनिषद् प्रक्रियासें सर्व तत्त्व त्रिआत्मक है. तेज पृथ्वी और जलका मिश्रण है. परंतु फीरभी "आप" शब्द जो धरा है सो बहुत्व होके है–है तो तीनों तत्व

सूत्र—त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ॥ २ ॥

अर्थ—त्रिआत्मक होनेतें, भूय होनेतें.

विवेचन—बहुत होनेतें. जल नाम है. केवल जलतें देह आरंभ नहि होती है. बीजमें तीनों है. देहमेंभी शुक्र शोणित संयोग कारण. फीरभी लोहु बहुत वो "आप" रुप गीना गया है वो बहुत दीखताहि है. वैसे श्रुति "आप" शब्द प्रयोग करती है. अब यह भूत सूक्ष्महि संगहि जाते है कि कोइ और भी संगी होता है ?

सूत्र—प्राण गतेश्च ॥ ३ ॥

अर्थ—प्राण जाते है. ॥

विवेचन—इन्द्रियें संग जाती है. उनके आश्रयभूत भूतसूक्ष्म भी जाते है. सब बीजमें है. तब तो "सूक्ष्म देह" कहेते हैं.

सूत्र—अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ॥४॥

अर्थ—अग्नि आदिकी गति श्रुति कहती है सो वैसे नहि. भाक्त होनेतें.

विवेचन—मर जावे वो पुरुषका अग्नि वाणीमें लय होता है इत्यादि इन्द्रियोंमें रहे देवोंकी लय-गति-उनमें सुनतें है सो ? देव भी तो इन्द्रियोंके अधिष्ठाता है. वो इन्द्रियका जो हो सो देवोंका वो उनके अधिष्ठाताहि है. उनकी गति कही है.

अब थोडा यह प्रकरणमें श्रुतिके शब्दमें अर्थ समझनेमें संशय उत्पन्न होवे वैसा है. जो वहां प्रश्नोत्तर है. वामें प्रथम प्रश्न सुननेमें वहां "श्रद्धा" शब्द है. "आप" शब्द नहि वातें यह अर्थ सुसंगत नहि होगा ऐसी शंका है. वाका समाधानभी वहांहि है.

सूत्र—प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः ॥ ५ ॥

अर्थ—प्रथममें श्रवण न होनेतें नहि ऐसा कहे तो वो ठीक नहि. वो वोहि है घटीत है.

विवेचन—यहां श्रद्धा शब्द है. वाका अर्थ "आप" भी होता है वैदिक प्रयोग ऐसा है. वातें वोहि प्रसंग है. फीर उत्तरमेंभी स्पष्ट "आप" शब्दहि है. तो यथा प्रश्न तथाहि उत्तर होता है. प्रश्न कुछ- और उत्तर कुछ-ऐसा अर्थ कीये तो असंगत है. हमको लेनेका तात्पर्य यहकी पुरुष स्वर्गमें गये तोभी वंधनमें-और फीर गर्भमें आनाहि पडता है. वाको वंधन छुटतेहि नहि है, मरें तो छुटे, वा स्वर्गमें गये तो पार पहुंचे यह समझ भूलभरी है.

अभी वोहि प्रकरणका शोधन चलता है. श्रुतिके अर्थके संशय दूर करते है. सूत्रोंका वोहि तो मुख्य प्रयोजन है.

सूत्र—अश्रुतत्वात् इतिचेन्नेष्टादिकारिणां प्रतीतेः ।६।

अर्थ—नहि सुननेमें आवनेतें ऐसा कहेतो नहि इष्टादि कारीयोंको प्रतीत हैं.

विवेचन—वहां जीवका खास नाम नहि सुना जाता. "श्रद्धा" "आप" यह शब्द है. ऐसा कहेतो ? नहि ऐसा नहि. और यहांकेहि वाक्योंमें जीनकों ब्रह्मका ज्ञान नहि. जो सकामी है ऐसे इष्ट आदि यज्ञ आदि करनेवालोंकों वो नीकी मीलता है. उनकी गतिकाहि यह प्रकरण है. " जो यह ग्राममें इम पूर्तदत्त उपासतो है. वो धुम्र होता है. " वहांसे आरंभ करके " सोम राजा " होता है. वो देवोंका " अंन " होता है. देव उनका भक्षण करते हैं " वहां पुण्य हो. उतने पुरे भयेकि फीर वो यह मार्गमें पीछे फीरता है. " यह सर्व प्रकरण जीवकाहि है. फीर और प्रश्न है कि " सोम राज " और भक्षण करते है कहा यह क्या ?

सूत्र—भाक्तं वाऽनात्मवित्वात्तथाहि दर्शयति ।७।

अर्थ—वो अमुख्य अनात्म वित होनेतें ऐसा दीखाया है.

विवेचन—यह अनात्म वित्की वात है. उनकेहि लीये यह कथन है. सोमके समान भोगते " सोमराज " फीर देवके दास तो वहां रहेतेहि है. वातें उनका " भक्षण " कहे गये, देव भक्षण तो कुछ भी करतेहि नहि. वो " न खाते है. न पीते है. देखके तृप्त होते है. ऐसा श्रुति कहती है. यातें आप " श्रद्धा " सो जीव " भाक्त " मुख्य जो आत्मवित् सो नहि. अनात्मवित्के लीयेहि यह सर्व शब्द, सर्व प्रकरण है. देववाणी–गुढ है. तबहि सूत्रोकी आवश्यकता है.

स्वर्गमें जाके जो पीछे आवते है तो उनकों देह मीलती है वो कोनसी ! कैसी ! जो यहां पुण्य कर्म, सकाम करते है वो आपके पुराने बंध काटनेका काम मुलतवी रखते हैं. क्योंकि नयी प्रकारका सुख पावनेकों नये कर्म खास जो करते है वाके उनकों सद्य फल मीलते है उतने पुरे हो जावे. वामे पुरानोंको असर कुछ नहि होती. वो बने रहते हैं तो फीर वो कर्मोंके अनुसार उनकों नया जन्म मीलता है. वा लीये शंकापुर्वक समाधान करते हैं.

(कृतात्ययाधिकरणम्)

सूत्र—कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ॥ ८ ॥

अर्थ—कर्म पुरे भये तो विना भोगेके साथ (बंधनवाले) ऐसा श्रुति स्मृतितें है. जो मार्गतें गये वातें वा औरतें.

विवेचन—कर्म पुरे भये तो पीछे नीचे तो आनांहि होता है. वामें दो मार्ग है. वोहि वा दुसरा. परंतु उनके स्वर्गीय कर्म भोग रहे तब पीछे आते है ऐसा कहेनेतेंहि फीर उनकों और कोइ कर्म भोगनें बाकी नहि यों नहि समझनां " कर्म भोग रहेते आवते है " सो स्वर्गके लीये वचन है. जो यहां छोडके गये है वो " भोग रहे " करके कहा है वाके अंतर्गत नहि है. तात्पर्यकि कर्म पुरे भये सो स्वर्गकी खरची और जो वीना भोग कर्म सो वो पा चुके. उनके पूर्वके शेप अनादिके बंधन—जाकों काटनेको तो निष्काम आराधनादि करनां चाहीये. वो नहि कीया वातें वो बाकी है. उनके अनुसार श्रुति कहती हैकि उंच नीच, ब्राह्मणं चंडालकी, सिंह कुत्तेकी योनिः यथा शेप कर्म विपाक—के योनि प्राप्त होती है. " रमणीय चरणवालेकों रमणीय

योनि कपूय–खोटे आचरणवालेकों कपूययोनि. स्वर्गतें गीरपे मनुष्यहि हो यह भी नियम नहि. तवहि दो मार्ग कहे. सूत्र—(फीर शंका)

सूत्र—चरणादिति चेन्न तदुपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ॥ ९ ॥

अर्थ—चरण होनेतें ऐसा कहे तो नहि. वो उपलक्षणार्थ है. ऐसा कार्ष्णाजिनी स्वामीका मत है.

विवेचन—" चरण " कहे तो " आचार "–स्नान संध्यादि–वातें यह श्रुति " कर्मके फल विपर्यीक बात कहेनेवाली नहि है. वातें कर्म शेष होके वो वो योनि मीलती है. यह अर्थ ठीक नहि. ऐसा कहे तो एक आचार्य कहेते हैं–" चरण " का अर्थतो " आचार " हि है. परंतु यहां उपलक्षण करके " कर्म " के स्थान पर उनका प्रयोग कीया है.

फीर उन्हीके प्रति प्रश्न और उनका उत्तर है.

सूत्र—आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात् ॥१०॥

अर्थ—वो अनर्थ कहे–ऐसा नहि. उनकी अपेक्षा होनेतें.

विवेचन—जब आचरण हेतु न हो तो फीर आचरणका पालन निरर्थक है क्या ? ऐसा उन्हीकों प्रश्न कीये तो वो उत्तर देते हैं कि–नहि–आचार है सो कर्म करनेके अधिकार प्राप्त करानेवाले है. आचारवान् पुरुषकाहि कर्ममें अधिकार होता है. स्नान संध्या कीये तो यज्ञ पुजाकी, दान, जप, करनेकी योग्यता आती है. ऐसे उनकी अपेक्षाभी है–वोभी या रीति सार्थक है. यह एक मत है. और आचारी कहेते है—

सूत्र—सुकृत दुष्कृते एवेति तु वादरिः ॥ ११ ॥

अर्थ—सुकृत दुष्कृत वोहि तो ऐसा वादरि स्वामीका मत है.

विवेचन—चरण सो वोहि पुण्य पाप-उपलक्षणार्थ नहि वाहितें फीर जन्म, उन्हीके शेप रहे अनुसार-और येहि श्रीवेद व्यास स्वामीका मत होनेतें आप यह प्रसंग पूरा करके और अधिकरण उठाते हैं. सार यह आयाकि स्वर्गमें गयेतें बंधन सब बने रहेते है. जो भोगनेहि पडते है. वातें चाहियेकि वो काटनेका सदाका दुःख जानेका उपाय करे.

जो मर जावे सो सब चंद्रमाके लोकको पाइके फीर दृष्टी अंन वीर्य होके मनुष्य देहमें आवे ऐसा क्यों नहि? क्योंकि श्रुति यहां " जो यह लोकतें जाते हैं ऐसा कहती है वातें सूत्र है.

(अनिष्टादिकार्यधिकरणम्)

सूत्र—अनिष्टादि कारिणामपि च श्रुतम् ॥१२॥

अर्थ—जो इष्टादिकारी नहि उनकोंभी और श्रुति है.

विवेचन—वातें वोभी चंद्रलोकमें जाते है ऐसा क्यों न माने? अभी वोहि पूर्वपक्षकी पुष्टीके सूत्र है.

सूत्र—संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गति दर्शनात् ॥ १३ ॥

अर्थ—यमका शासन अनुभव करके जो योग्यहि हो उन्हीको आरोह अवरोह है. उनकी गति दीखाइ है.

विवेचन—वातें सर्वतो मरे तब यमपास जाके वाकी आज्ञानु-

सार सुख दुःख पाते है. ये चढने पडनेकी गति दीखाइ है. याका उपयोग इतर जो इष्टादिकारि नहि करते है वैसा श्रुतिभी कहती है.

सूत्र—स्मरंति च ॥ १४ ॥

अर्थ—ऐसा स्मृति कहती है.

विवेचन—कि सर्व यमके वश होते हैं.

सूत्र—अपि च सप्त ॥ १५ ॥

अर्थ—फीर जो पापकारी हो तो नर्क सात है.

विवेचन—उनकोंतो वहां गति हे.

सूत्र—तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः ॥ १६ ॥

अर्थ—वहांभी याका व्यापार होनेंतें याका विरोध नहि.

विवेचन—वोभी यमवश्यताहि है. कर्मानुरुप लोकमें दुःख पाके चंद्र आरोह होके वहांतें फीर अवरोह होता होगा. ऐसा कहे तो ठीक नहि है. चंद्र आरोह होनां क्या! यहांतें आरोह होनांहि सहज नहि. दो प्रकार चढनां है. एक फीर पडते है. एक फीर नहि पडते है. उनके लीये दो मार्ग " देव, पितृयान् " नामतें भिन्न सो जो दो प्रकार उपाय खास कीये तो वोहि वो पाते है सर्व पाते है सो वो सर्व जो वो वो उपाय करते है. वो जो उपाय नहिं करे वो नहि पाते है. ऐसा वहां श्रुतिका तात्पर्य है.

सूत्र—विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॥ १७ ॥

अर्थ—विद्या कर्म यह दो वालेकोंहि प्रकरण-ऐसा होनेतें.

विवेचन—प्रकरण अनुगुण अर्थ करनां चाहीये. सर्व शब्द वो प्रकरणवाले सर्वको लगे. जो विद्या उपाय करे सो देवयानतें चढके

नहि पडे; जो " कर्म " पुण्यकर्म उपासे सो चढके पडे. तात्पर्यकि चढे उतरे यह मार्ग वोहि इष्टादिकारीका है. इतरका नहि. और खोलते है.

सूत्र—न तृतीये तथोपलब्धेः ॥ १८ ॥

अर्थ—तृतीयमें नहि वैसा देख पडनेतें.

विवेचन—तृतीय स्थानमें शरीरका आरंभ करनेमें पांचों आहुतीकी अपेक्षा नहि. जो चंद्र आरोह अवरोह हो. केवल पापकर्मवाले है सो तो तीसरेहि स्थानमें जानेवाले है उनकों न विद्यावाले जानेका. वो पुण्यकर्म करके जानेवालेका स्थान है. वातें वो लोकोंको चंद्रमें जानां नहि होता. ऐसा श्रुतिमें दीख पडता है. जैसे उनके जाने आनेकी श्रुतियें है. ऐसे इनके लीयेभी श्रुति हैकि वो ऐसे चढतेहि नहि. यहांहि जन्मतें मरते भटकते रहते है. और फीर ये सूत्र येहि कहेता है कि चंद्र आरोह अवरोह वीना देह बनेहि नहि ऐसा नियम नहि है. वो विनांभी बनती है. वों कानिष्ठहि क्यों? उत्तमभी बने. योनितेंहि जन्म यह नियमहि नहि. जैसे.

सूत्र—स्मर्यतेऽपि च लोके ॥ १९ ॥

अर्थ—स्मृति कहती है. लोकमेंभी.

विवेचन—स्मृतितें देख पडता हैकि पुण्यकर्मवाले रहे पर कोइ ऐसेभी हैकि जो यह लोकमें वीना पंचाग्निके पेदा भये जैसे द्रुपदी, धृष्टद्युम्न, प्रचेता.

सूत्र—दर्शना च्च ॥ २० ॥

अर्थ—देख पडता है. औरभी

विवेचन—यह नियमकी कोइ जरुरत नहिकि चंद्रमें गये विना जन्म न पावे. देखीयें श्रुति. " यह भूतोंके तीन बीज है. अंडज-जीवज-उद्भीज वो कहां चंद्रमें चढके गीरते है. वीचमें स्वेदज यहां नाम श्रुतिनें न कहा. वातें शंकाका समाधान कर देते हैकि.

सूत्र—तृतीय शब्दावरोधः संशोकजस्य ॥२१॥

अर्थ—तीसरा शब्द अवरोध संशोकजका.

विवेचन—तृतीय "उद्भीज" के साथ संशोकज कहे तो स्वेदजका अवरोध-संग्रह उनके भेल समझे गये है.

यह सब दृष्टांततें सिद्ध कीयाकि केवल पापकारीको चंद्र आरोह अवरोह नहि है. मात्र पुण्यकारीके लीये वो है सोभी भोग चूके फीर येहि संसार घटमाल-वामें क्या क्या स्थिति-कीतनें नर्क-कैसी कैसी कंगाल योनियोंकी माप्ती-यह सर्व प्रकृतिकेहि संगकों चाहनेका परिणाम है. वो जीवकों आपकेहि उपर बीती भयी वार्ता होनेतें खुब विचारके स्मरके चेतनां चाहीये. और अब प्राकृत संबंधतें छुटनेकोंहि प्रबल प्रयत्न करनां ऐसा दृढ मन करनां चाहीये. थोडा समय तो सुख पाते है. और सर्व योनितें पुण्य कर्मवाले ठीक है कि भला करके सुख-उत्तम भोगी-होते है. परंतु वो जब वहांतें गीरतें है तब उनकों जो अंतर जो देह मीलती है सोभी उनके-अवतारकी नांई भोगरुप है क्या?

(तत्स्वाभाव्यापत्त्यधिकरणम्).

सूत्र—तत् स्वाभाव्यापत्ति रुपपत्तेः ॥ २२ ॥

अर्थ—उनके स्वभाववाले होना घटित है.

विवेचन—देह तो वाका नाम जामें सुख दुःख हो.-यह जीवको

कर्मका फीर संबंध तो योनीके साथ होता है. वाते वहांलों तो मात्र उनका प्रकृति संबंध वैसा वैसा हो जाता है उतनांहि. फीर.

(नातिचिराधिकरणम्)

सूत्र—॥ नातिचिरेण विशेषात् ॥ २३ ॥

अर्थ—देह नहि होना विशेषतें ॥

विवेचन—वो स्थिति एकर्मेतें अन्यरुप जलदी होये जाती है ऐसा विशेष वचन है.

(अन्याधिष्टिताधिकरणम्)

सूत्र—अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलापात् ॥ २४ ॥

अर्थ—अन्यके अधिष्टित भये परभी पूर्वसरीख कहेनेतें.

विवेचन—जल सरीख अन्नमें भी जो जो वो कहा वो सर्वका एक हिसावः पुण्य पाप भोगनां मार्गमें हेहि नहि.

सूत्र—॥ अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ॥ २५ ॥

अर्थ—अशुद्ध ऐसा कहेतो नहि शब्दतें.

विवेचन—वो वो संबंध अशुद्ध है तो पाप योनी क्यों न गीनी जावे ! वो उनकों खास नहि मील्या. मार्गरूप मात्र है. तव कुछ भोग नहि देता. ऐसा शास्त्र कहेता है. अंत पहुंच गये.

सूत्र—॥ रेतः सिग्योगोऽथ ॥ २६ ॥

अर्थ—फीर रेत सिंचनके साथ योग.

विवेचन—कर्मका योग होता है.

सूत्र—॥ योनेः शरीरम् ॥ २७ ॥

अर्थ—योनी करके शरीर पहुंच गये.

विवेचन—शेष कर्म अनुसार जो योनी ठहराइ गइ हो. वामें रेतके सिंचन साथ गीरेकी आरंभ भया. हमारे कर्मतें प्रारब्धानुगुण देह बना. आये बहार. फीरभी क्या शांति है ! मनुष्यदेहमें कहां एकहि अवस्था है. ? वस यहां पांचमी आहुती लों पहुंचा देनेतें पाद-पूर्ति करते है. अब आगे विचार द्वितीयपादसें—की यहां फीर देहमें आइ रहे पर भी क्या क्या स्थिति होती है.

—इति तृतीय अध्याय प्रथम पाद—

तृतीयाध्याय द्वितीयपादः

उपायके प्रकरणके आरंभमें यह उपाय करनेकी आवश्यकता समुझाई गइ है. विचारनां चाहीयेकि संसारमें हमारी क्या स्थिति है ? जो जो उपाय सुखी होनेकों कर रहे है. और कोइ आपकों सुखी है करके मान रहे है—हो—उनकोंभी अधिक विचार रखनां चाहियेकि यह सर्व तजवीज कवलों काम लगेगी ? पलकमें विनां चेताये आंख मुंदी· की हो चूका. यहांका सर्व यहां. और हम कहां ! वोतो जब होगा तब होगा. देखा जायगा. ऐसा कहो तो भले. परंतु तब फीर उपाय कर· नेका अवकाशभी तो नहि रहेगा. अभी जब अवकाश है तबहि करनां चाहीये. मरने पीछे लोक स्थान स्थिति है. तब यह कुछ काम नहि लगेगा. वो हमारा बनाया नहि. न हमारे वशमें रहेगा. याका पुरावा यहांही देहमें मीलता है. वो विचारपें अब लाते है. यहांहि हमकों

नित्य वो श्रीहरि परलोकका अनुभव येहि देहमें कराइ रहा है: तव वहां न राजा न ऋषी न क्रूर न असूरकी खुशी काम लगती है. वो क्या है?

(सन्ध्याधिकरणम्)

सूत्र—॥ संध्ये सृष्टिराह हि ॥ १ ॥

अर्थ—स्वप्नमें सृष्टी कहेतेहि है.

विवेचन—" संध्या " जन्ममरणके बीचमें-वा जागृत शुषुप्ति भान बेभानके बीचमें एक स्थिति है. जामें श्रुतिभी कहती है " रथ नहि वहां रथ, पथ नहि वहां पथ, सृजता है. वैसेहि हम क्या क्या नित्य देखते हैं. यह भी सृष्टीहि है. " यह कोन करता है! और तो कोइ नहि देख पडता है. वाका भोक्ता जीवहि है. तो वोहि कर्त्ता होनां चाहीये. श्रुति देखे तो यहांभी शंकाका स्थान है. वाते सूत्रमें वोभी निर्णय कर देते हैं. पूर्वपक्ष हैकि.

सूत्र—॥ निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ॥ २ ॥

अर्थ—और एक श्रुति " पुत्रादयका निर्माता कहती है.

विवेचन—जीव सत्य संकल्प, शक्तिवाला है. और श्रुति " कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः " ऐसा कहती है. " सहिकर्त्तेति " वो कर्त्ता है ऐसा वचन है. तो जीवहि क्यों कर्त्ता न हो! एक श्रुतिमें पुत्रादिकका निर्माता कहा है. वो जीवकोंहि कहा होगा. उत्तर

सूत्र—॥ माया मात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्त स्वरूपत्वात् ॥ ३ ॥

अर्थ—माया मात्र तो है समग्र करके अभिव्यक्त स्वरुप नहि होनेतें. ॥

विवेचन—यह जैसे यहां जीव कर्म करता है और फल देखता है. मकान बनाता है. वामें फीर आप पुत्र पौत्र रहेते है ऐसी सृष्टी नहि है. यह तो " माया मात्र " सर्व प्रकार विचित्र ! देखी और उड गइ ऐसी सृष्टी है. सो जीवमें वैसी सृष्टी बनानेका न अभी सामर्थ्य है. न यहां वाके पास वैसी सामग्री है. यह सत्य हैकि वो सत्य संकल्प है परंतु अभी नहि. वाका समग्र ज्ञान जब अभिव्यक्त हो तब सो अभी नहि भया है. वो भी कुछ आपकी इच्छातें नहि.

सूत्र—॥ पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्य स्यबंध विपर्ययौ ॥ ४ ॥

अर्थ—परके संकल्पतें तो तिरोहित वातेंहि वाका–बंध और वातें विपरीत.

विवेचन—जीवतें " पर " बडा भीतरहि है. वाके संकल्पतें वाकी वो स्वाभाविक सत्य संकल्पत्व शक्तिभी तिरोहित आच्छादित ढपी गइ है. वाके बुरे कर्मोंके फलमें शिक्षामें वो राजाकी सत्ता कमती की गइ है. वो सत्ता कमती जास्ती मीलनी क्या. एकंदर बंध और मोक्ष सर्व याका वातेहि है. वोहि याके ज्ञानकों ढांपता है. एक प्रकार अनुभव कराता है. मायामय विचित्र सृष्टी करके दीखाता है. वो बील्कुल ढांप देता है. फीर बाहिर्मे जगाता है वा और देहमें भेजके वहांकी सृष्टीका अनुभव कराता है. ऐसे बंधनमोंहि फीराया करता है. और वोहि जब कृपा करे तब यह सर्व ज्ञान खोल देके वाको मुक्त करदेता है. तब फीर वो सत्य संकल्पत्वभी भोग सकता है. अभी तो विचारा बंधनमें है. एक वा दुसरे प्रकार बंधन लगाहि है. जा करके, वाके स्वाभाविक ज्ञानशक्तिभी तिरोहित हो गये–हो रहे है. वो बंध सो वो ज्ञान तिरोहित होता है सो !

सूत्र—देहयोगाद्वा सोऽपि ॥ ५ ॥

अर्थ—देहके योगतें अथवा वोभी.

विवेचन—संसार दशामें देहका योग वोहि बंधन, और प्रलय-दशामें वोहि कहे तो "माया"-प्रकृति सूक्ष्मरुपमें-वो मायाशक्ति आपहिकि आपहिके वश अचित् तत्व है. वाके उपर जीवकी सत्ता क्या चले? वो तो वाके बंधनमें है. यातें यह स्वप्न कर्त्ता वोहि है. जाके वश वो अचित्तत्त्व और जाके स्वाधीन यह चित्तत्त्वकेभी ज्ञानका संकोच विकाश है. ऐसे हम जीव तो वाके परतंत्र हैं. और वाहिके वश हमारी बंध मुक्ति है तो चाहीयेकि वाहिकी तृष्णा, तज-वीज, खोज करे! स्वप्न जीवकृत नहि. वो परमात्माका भविष्य विचारभी सुचन करनेंवाला है. सूचकको शुकन इमलोक-कहेते हैं. वो सूत्रकार कहेते है.

सूत्र—सूचकश्चहि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ।६।

अर्थ—और सूचक है श्रुति कहती है. और वाके ज्ञाता कहेते हैं.

विवेचन—चढती वा पडती होनेकी हो-वाके पूर्व स्वप्न आवे-वातें जान पड जाता है, ऐसा श्रुतितें सिद्ध है. "जब स्त्रीको देखे तो मंगल" "काले दांतवाले पुरुषका देखे तो-अमंगल" ऐसे वचन हैं. फीर ऋषीयोंनें वाका विस्तार कहा है. तात्पर्य स्वप्न जीवकृत नहि ईश्वरकृत है. हमारी वो स्थिति ईश्वरके हाथ है. वोहि विचारते यह संसारको वडा-स्वप्न कहेते हैहि. आंख मुंदी की नयी सृष्टी-यह सर्व छीना लाया जाता है. जागीर दस्तावेज सब ओरोंके लीये. और हमको तो जहां भेजे वहां नयी छोटी अशक्त अज्ञान देहतें भाषा और खानां पीनांभी नयी रीति सीखनेतें आरंभ करनां पडता है. उतनें दुर कहां जावें! यहांहि शुषुप्तीमें गयेकि गया सर्व, वा पल राजा महेलमें और

केदी जेलमें एक सरीख हो जाते हैं–सर्व सामग्री वश रहे परभी ! वो क्या होता है ! कोन करता है ! कैसे होता है. सूत्रकार कहते हैं.

(तद्भावाधिकरणम्)

सूत्र—तदभावो नाडीषु तच्छ्रूतेरात्मनि च ।७।

अर्थ—वाके अभावमें नाडीमें वा लीये श्रुति हैं वो आपमें.

विवेचन—जब जाग्रतभी नहि रहेते हैं. और वाका अभाव कहे-तो स्वप्नभी नहि आता है तब हम एक खास नाडीमें होते हैं. ऐसा श्रुति कहती है. वाके दो नाम–वो दो नाडी " हृदयमें पुरीतति हीतामें सतके साथ मीलके " ऐसा समुझाया है. " सत " फीर पुरी तति " हीता " ऐसे तीन स्थान सो महेलमें खाटमें तैसे एकमें दुसरी वामें तीसरेके साथ वो सो रहता है. और

सूत्र—अतः प्रबोधोऽस्मात् ॥ ८ ॥

अर्थ—यातेंहि जागनां.

विवेचन—यामेंतें यह स्थितिमें डुब गये-मर गये. जो न जगेतो गये. न हमारी वंशतातें यह होता हैकि हम अमुक कलाक मिनिटको परवश भये, न कभी हो सकते हैं. वैसेहि जागनांभी वाकेहि वश. ज्ञानका संकोच–एक नाडीमें पुर दीयेकि हो गया. फीर वामेंतें निकालेकि ज्ञान खोला. वोभी फीर चाहे, स्वप्नमें चाहे संसारमें (चाहे हम अपनी ओरतें कहेते हैंकि बावरापनेमें) सर्वथा वाके परतंत्र हम और हमारा ज्ञानहि है. फीर राज्यसत्ता जन धन रहो न रहो. सर्व वाके पीछेहि है. आपंहि ज्ञानवान बेभान (वातें) हो जाते हैं. यह नित्यके अनुभवके उपर भी हम आपकों स्वतंत्र मानके वाकों भूल बेठे हैं !

सो कीतनी बडी भूल है ? हमकों मरके मीटनां नहि है. सतके पास नित्य जाकेभी वोहि रीति अभी अभागी है. वातें पीछे आते है. ऐसा श्रुतिसिद्ध है. वहां कोइ कल्पना करेकि सतके साथ मील गया. सोतो गया. नया जीव जागके आता होगा. वामेंतें नीकलता होगा—ऐसा नहि है.

(कर्मानुस्मृतिशब्दविध्यधिकरणम्)

सूत्र—स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्द-विधिभ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ—वोहि तो कर्म अनुस्मरण शब्दविधितें.

विवेचन—पूर्व कीये कर्म शेप छोडके सोये सो हमकोंहि भोगनेके हैं. फीर हम वोहि है. ऐसा अनुस्मरणभी होता है—तवहि आगे सव व्यवहार वरावर चला जाता है. श्रुति—शब्दभी "व्याघ्र वराह सिंह वृक जो हो सो होता है—ऐसा कथन है. और येहि ठीक है. नहि तो सतके पास गये पीछे नहि आये तो भले वुरे कर्मोंका क्या ठीकांना ! व्यवस्था कहां ! जव सर्व वंध कर्मतें सविधि उपाय करके विशुद्ध होके सतकों जा मीले तवहि याके पासतें पीछा फीरनां नहि होता. दो तरफी मीलनांहि तव है. जव उभय मीलाप समय एक दुसरेको जांने— सो अभी आवरण रहेनेतें जीव सतकों नहि जांन पहिचान—अनुभव सकता है. अर्थात् जाता है वैसाहि पीछा आता है. वाके संगके प्रताप उतनां समय शांति—मीलती है. इतनी निःस्वार्थ निर्हेतु—कृपा पुज्य पिता सर्वके उपर वीना कहे चहेभी करता है. परंतु हमकों वाका पुर्ण लाभ लेनेकी कहां प्रवल इच्छा ! यातेंभी और चढके हमारी एक और स्थिति पलकमें ठोकर लगनेके साथ हो जाती है. सो क्या !

(मुग्धाधिकरणम्)

सूत्र—मुग्धेऽर्द्ध संपत्तिः परिशेषात् ॥ १० ॥

अर्थ—मुर्छा अर्ध संपत्तिशेष रहेनेतें.

विवेचन—वो अर्ध संपत्ति कही गइ है. जीतेभी है. और मरतेभी है. जो वामेंतें जागे तो जीये, और नां जागे तो गये. तब सूक्ष्मप्राणोंका देहके साथ संबंध रहेता है. सर्व प्राणका पुरा नहि. ऐसा मध्य अवस्था है. अब वाके आगे जागे तो त्रिताप भोगहि रहे हैं. मरेतो गये. नर्क वा कोनभी योनिमें! वातें जाग्रत अवस्थाका लाभ ले लेवें! हमारी सर्व स्थिति यहांकी भी यह पादमें या प्रकार कही चुके. वा परतें अब हमकों यह प्राकृत संबंधतें वैराग्य लाइके परमात्मसंबंधका विचार करनां चाहीये. जैसा यह संबंध लगा है, वैसाहि तो वाकाभी संबंध लगाहि है. वो हमारेहि भीतर " अंतरयामी अमृत " दिव्य देव एक श्रीमन्नारायण " हृदयकमलमें विराजमान है! अहाहा! वो कैसा है! प्राकृत भोगतें केवल विरुद्ध, प्रकृति संबंधतें जीतनी हानी सो तो वामें नहि. और जीतने आनंद सो सर्वका समुद्र. वो आपहिके लीये नहि. हमारे लीये भी. सर्व अनिष्टका निवारक और सकल श्रेयका देनेवाला. सोभी वो परमपदमे वाके धाममें गये तबहि ऐसा नहि. वैसा हो तो वो तब काम लगे. हमकों तो अनिष्ट निवारककी अभी जरुरत है. वैसेहि वाकी कृपाका लाभ लेकी-कुछ रस पानेकी भी, जा तें यह प्राकृत भोगका मोह पुरा छुट जावे. वो उभय बातें वाके स्वरुप सिद्ध लक्षणहि हैकि-वो "दोषतें दुर-और गुणोंतें पुर " अथवा " दोषोका टालक " और " सर्व श्रेयका दाता " यह श्री जहां रहे वहां वैसाहि है. स्थान कोइ भी. वाको बाध वाके यह गुण शक्ति स्वभाव प्रभावका संकोच कर नहि

सकते हैं. तात्पर्य यह डर नहि पानां, न शंका करनां की हमारे साथ यह प्राकृत देहमें स्थानमें आइके प्रकट भये तो जैसे हम, सत्यसंकल्प स्वरूपते रहे पर याके संबंधतें वाका संकोच आयां है. वैसा वाकों आता होगा.

(उभयलिंगाधिकरणम्)

सूत्र—न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि ॥ ११ ॥

अर्थ—नहि स्थानमें रहे परभी परके उभय लिंग सर्वत्रहि. प्रसिद्ध है.

विवेचन—यह वधाइसी वार्त्ता हैकि वो परब्रह्म कहेतेहि समझ लेनांकि " अखिल हेय प्रत्यनिक " और " कल्याणैकतान् " बस यह सर्वत्र वाके उभयलिंग है. कहांभी रहेतो! क्योंकि वाको कोन क्यों कैसे कर्त्ता मात्र बंधन करे! कर्त्ता मात्र वाकेहितो वश है. आचित् चित्की स्वरुप स्थिति प्रवृत्ति आपकी ईच्छानुसार लीलारुपहि तो वो कर रहा है. देहके भीतर वानें वाकों वसनां और मौज है. वो हमकोंभी वो प्रतिकुल होनेका हेतु (कही चूके हैंकि) " याका संबंध " नहि, किंतु हमारे पाप है. पुण्य भोग समय येहि तो स्थान कैसा सुख देता है! जीव मुक्त भये तो स्वेच्छासें एक तीन–पांच सात हजार देह धारण करते है. ऐसी श्रुति है. तो वो तो सदा मुक्त है. श्रुतिहि वाका स्वरुप जैसे सत्य, ज्ञान अनंत, "वैसे आनंद" भी स्वरुपतें कही रही है. त्यों वाकोंहि " अपहत पाप्मा विजरो वि-मृत्यु विशोकोऽविजिगित्सोऽपिपासो " ऐसे पाप, जरा, मृत्यु, शोक, आदि अखिल हेयका (प्रत्यनिक, विरोधी कहीके " संगहि " सत्य-

काम-सत्यसंकल्प ऐसे कल्याणगुणगणवाला " समस्त कल्याण गुणात्मको सौ " ऐसें अनेक वचनतें कहही रही है. वो हमकोंहि वधाइ है. हम चहेतो वो हमारे " हेय " का विरोधी है. "हेय" जो जरा मरण जन्म व्याधि-आदि दुःखोंको दूर कर सकता है. वो सत्य काम सत्यसंकल्प हैहि. और वो सर्वत्र सदा शंका उठाके समाधान कर लेते है-मुक्तावस्थामें जीव सत्यकाम है. परंतु वृद्धावस्थामें नहि. वैसे यह परब्रह्म भी देहवासी भया तो अवस्थाभेद भयी. तो वो भेदतें वाके धर्मभेद, स्थिति शक्तिभेद होनाहि चाहीये.

सूत्र—॥ भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ॥१२॥

अर्थ—भेदतें ऐसा कहे तो नहि प्रत्येकमें वो वैसा नहि ऐसा कथन होनेतें.

विवेचन—जो शास्त्रसें हम जानते मानते हैं कि वो भीतर जीवके साथ दुसरा भी है. वोहि वेदांत, वाके लीये वहांहि कहता है कि वो वैसा नहि होता है. अंतर्यामी ब्राह्मणमें प्रत्येक स्थान वाके गीनाये. पृथ्वीतें लेके आत्मापर्यंत सर्वमें वो है-सर्व वाके शरीर हैं ऐसा कहें पर वाकों " अमृत " भी वहांहि कही दीया है. फीर वहां वो बंधनरुप वाकों न होनेका हेतु भी कहा है कि " अंतर्यामी " आप नियमन करता है. वो मौजके लीये सेनापति बना है. कोइकी आज्ञासें निर्बंधसें नहि और एक श्रुति तो यह कंठतः कहती हैकि वाकों यह कुछ नहि लगता. वाका स्मरण सूत्रकार कराते हैं.

सूत्र—॥ अपि चैवमेके ॥ १३ ॥

अर्थ—और एकमें हैहि (कहते है)

विवेचन—" द्वा सुपर्णा " यह श्रुतिमें दोनों समान वृक्षपें रहे

पर एक पिपल्के फल खाता है. अन्य नां पाइके प्रकाशता है." ऐसा कहा है. अर्थात् या विषयमें श्रुतियोंका एक कंठघोष है. और वातें सूत्रकार भी वाका उभय लिंगत्वहि सुदृढ कीये जाते है और शंका हैकि " अनेन जीवेन " करके आप-जीव करके भीतर पेठके नाम रुप करनेवाले भये सो आपहि एक बहु प्रकारके नामरुपकरनेवाले भये है, ब्रह्महि तो जीव भया है. ऐसेहि तो कारण कार्यकी ऐक्यता सिद्ध होवे. फीर विधि निषेध कर्म भोग वाकों क्यों नहि ?

सूत्र—॥ अरूपवदेव हि तत्प्रधानात् ॥ १४ ॥

अर्थ—अरूपवतहि वो प्रधान होनेतें. ॥

विवेचन—नामरूपवाला जीव कहाजाता है. आप वामें अरुप सरीख है. वो शरीरादि नामरुप जीवके कर्मानुगुण जीवकोंहि वो देह तें भोगने-करनेंको दीये गये हैं. वातें विधिनिषेध भी-वामें सत्ता देके वाकेहि लीये कहे हैं. आपका तो त्रामें प्रधानत्व. वो सर्वका निर्वाह करादेनां यह काम है. ऐसा रूप सो तो जीवका-और आप अरुप सरीख है. श्रुति " नामरुपका जो निर्वाहक सो भीतर आकाश ब्रह्म " ऐसा स्पष्ट कहती है. वातें आपतो और उपकारी सहायकारी वो नियंता है. कर्मके फल देनेवाला भोगानेवाला है. भोक्ता नहि है. जैलमें कैदी नहि. जैलर-आपकी शक्ति सत्ता जैल निवासमें हि अमलमें आती है. ऐसे परमेश्वर परब्रह्म उभय लिंग सर्वत्र है.

औरभी सुदृढ करते है. नया प्रसंग जहां जहां शंका उठतीही है और लोक श्रुत्यर्थमें भ्रमतेहि हैं वहांहि सूत्र है. श्रुति ऐसीहि गुढ सहायकी अपेक्षित है. जैसे सत्य ज्ञान अनंत ब्रह्म " यह तो वाका निर्गुण स्वरुप सो ठीक है कि वो सत्य-ज्ञान-प्रकाश-ऐसा अनंत स्वरूपतेंहि है. फीर भी वो सर्वज्ञ-सत्यसंकल्प, जगतकारण, सर्वा-

तरात्मा, सत्यकाम, आदि जो कहा सो " नेति नेति " " ऐसा नहि. ऐसा नहि " कहीके निषेध कर दीया है. वाते स्वरुपमात्र ज्ञान प्रकाश–अनंत उतनांहि ऐसाहि ब्रह्म है. वामें गुण शक्ति आरोपित है उनका अपवाद करनां चाहीये. वो अध्यस्त है–वास्तविक नहि–ऐसा कहे तो.

सूत्र—प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रकाश सरीख अव्यर्थ न होनेतें.

विवेचन—" जैसे सत्यज्ञान अनंत ब्रह्म " यह वाक्यमें कहा अर्थका स्वीकार कीये तो व्यर्थ नहि–वैसेहि सत्यकामादि गुण शक्ति कथनवाली कीतनीहि श्रुतियोंमें कहे अर्थकों स्विकारे तोहि उनकी व्यर्थता न-ठहेरे–वातें स्वरुपप्रतिपादक श्रुतिके तुल्यहि गुणप्रतिपादक श्रुतियोंकाभी स्वीकार करनां चाहीये. एकही प्रकरण–प्रसंग–प्रश्नोत्तर एककेहि लीये समग्र कथन होके, वामें भागत्याग–अपनी बुद्धिसें, अमुक श्रुतिका अर्थ लगानेको–एककोहि सार्थक करनेको दसका अनादर कीये तो–उनकों यथार्थ नहि बोलनेवाली ठहराये तो–सर्व वेदांत अविश्वासपात्र हो जायगा और सत्यके शोधमें अव्यवस्था हो जायगी. क्योंकि प्रमाणकेहि उपर आक्षेप आ पडेगा! कोई श्रुति स्वरुपमात्र कहे, कोई गुणमात्र कहे, कोई रुप कोई स्वरुपके गुण, कोई शरीर–उनके गुण शक्ति वो सर्वके अर्थकों एकत्र करते भये जो ठहरे, वैसा ब्रह्मकों माननां चाहीये. हमारी समझकी न्यूनतातें कभी कहीं परस्पर विरोध दीखे तो वो बुद्धिका दोष–वेदांतमें–श्रुतिमें–लगादेके वाकों आरोपित नहि कर देनां. वाका समाधान ढुंढनां. ढुंढे तो कोईभी आचारीसें–वडेसें मीलही जायगा. हमारी बुद्धिअनुसार प्रमाण व्यवस्था नहि करनां–तर्कको प्रतिष्ठा नहि हैहि–प्रमाणानुसार हमारी बुद्धि

बनावनां. अर्थात् वाकों संपूर्ण स्वीकारनांहि. सत्यज्ञान स्वरुप ब्रह्म जो कहा वो वाके स्वरुप कथनमात्र पर है. वो उतनीहि बात कहेती है.

सूत्र—आह च तन्मात्रम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उतनांहि कहती है.

विवेचन—जो जीतनां कहेनेको आइ. वो उतनां कहे तो फीर वामें औरभी गुणादि है. वो तब वानें नहि कहे. वातें उनका निषेध नहि ठहरता. राजाकाहि वर्णनका प्रसंग रहे वहां वाकों एक कहे तो वाको राणी नहि. वा सेना राज्य कुछ वानें नहि. कहा; वातें नहि. यह वोहि वचनतें नहि ठहरता. और वचन लाते है. वोभी प्रमाण माननां. उभयका संग्रह करनां. वैसा कीये तो हमकों उतनां अर्थ अधिक मीलेगा. सर्व शाखा न्याय कीये तो पूर्ण ज्ञान मीलेगा. श्रुतिमें ऐसाहि क्रम है. येहि उनकी व्यवस्था है. वो सर्व प्रमाणिक परस्पर सहायक है. श्रुतिकों काटनेवाली श्रुति नहि हो सकती. वो लीये व्यासजीहि सूत्रतें उत्तर आगे देते है. पहिले गुणशक्तिका स्थापन करले की.

सूत्र—दर्शयति चाथोपि स्मर्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—दिखाते है. और स्मरणभी कराते हैं.

विवेचन—वाके गुणशक्तिके लीये श्रुति स्मृति दोनों हैं.

" तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ॥

" सकारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता नचाधिपः ॥

" नतस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ॥

" परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाच ॥

" यःसर्वज्ञ स सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः ॥

" भीपास्मात् वातः पवते भीपोदेति सूर्यः ॥

" स एको ब्रह्मणः आनंदः! आनंद ब्रह्मणो विद्वान्नबिभेति कुतश्चन ॥

" निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम् " इत्यादिसें कडोंका अनादर क्यों हो सके! यह प्रकरणोंका निषेध कीये तो वेदांत रहेहि नहि. वो सत्यज्ञान अनंत स्वरुप इश्वरोंका इश्वर, देवोंका देव, कारणोका कारण–स्वामी–जाका फीर न कोइ कारण न स्वामी–न वाके समानकी अधिक कोइ है. वामें अनेक वडी वडी शक्तियें. वो सर्व स्वाभाविक वो सर्वज्ञ सर्ववित् है, वातें देवमात्र कंप रहे हैं, ऐसा नियंता वो अन्य आनंदमात्रका मूल ऐसा भोग्य वो पाये तो फीर निर्भयता. ऐसी वातेंहि कृतकृत्यता है, और वो सदा अविकारी विमल–कहेतो–हेय प्रत्यनिक और कल्याणसागर ऐसे उभय लिंगवाला है. परस्पर विरोध हैहि नहि. निर्गुण सो प्राकृत गुणरहीतः वोहि " एकलिंग " हेय प्रत्यनिक, और सगुण सो स्वाभाविक दिव्य श्रेयगुण वो दुसरा लिंग ऐसा वो उभय चिन्ह खुबी विशेषणवाला वो एकहिहै. जैसे स्वरुपतें अनंत तेसेंहि गुणतेंभी अनंत तो है. यहतो मुख्य कहेते है. सो मात्र श्रुतियेंहि नहि कहती है किंतु शेष ब्रह्मा नारद वेद सर्व गुन गाते है करके सर्व बोलते है. बुझते हैं. फीर गीताजीकों देखे तो वोहि " उभय लिंगत्व " सुस्पष्ट होता है. वोहि तो वाका असाधारण लक्षण है. हांहि वाकीहि नांइ खुबीकोहि ए क्यों कहै ? वो उभय प्रकार खुबीवालाहि हैं. विमल होके कल्याणगुणयुक्त है वो गुण भी तो दिव्य–स्वाभाविक है. प्राकृत नहि है. प्रकृति नहि–सारही सबभी वो तो रेहही वो सर्वगुण सदा है. स्वरुपसिद्ध सतकेहि है. वातेहि इक्षण वाकाहि आनंद प्रदत्व कहा है. सर्वत्र श्रुतिमें एकसा कहा है. वैसाहि प्रमाणिक स्मृतियोंमें भी कहा है प्रस्थानत्रयमें तेंहि देखे तो.

"यो मामज मनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम्" अज अनादि वोहि

लोकका महान ईश्वर वोहि ज्ञानी करके मोको जानतेहि है. " यह सर्व जगत वाके एक अंशमें स्थित है ऐसा विभूतिमान भी वाको कहा हैहि " मेरे अध्यक्ष होनेतें चर अचरकी उत्पत्ति " ऐसा जगत-कारण कहा है. वोहि उत्तम पुरुष—क्षर—बद्ध, और अक्षर मुक्त, उनतें अन्य परमात्मा-और वोहि तीनों लोकमें रहेनेवाला जो अव्यय सोहि धारक नियंता-वोहि उत्तम पुरुष हैं. " इत्यादि बहुत स्पष्टतम वचन है-वातें वो अज अनादि अविकारी अव्यय होके ईश्वर कर्ता पुरुषोत्तम स्वाभाविक सर्व गुण शक्तिवाला हमतें ऐसा विलक्षण विशेष तत्त्व है कि वाको हममें रहे पर प्राकृत धर्म न असर करके वाका उभय लिंगत्व अविछीन्न बना रहता है-वाके जैसा तो वोहि होनेतें संपूर्ण दृष्टांत तो नहि मीलता-तोभी समुझावने-का प्रयास दृष्टांततेंहि करते हैं.

सूत्र—अत एव चोपमा सूर्यकाशादि वत् ॥१८॥

अर्थ—वातेंहि सूर्यकाशादिवत् उपमा है.

विवेचन—जल दर्पण आदिमें सूर्यका प्रतिबिंब रहे तो वो प्रति-बिंबको-कहोकि बिंबको-पुनी-जलके धर्म नहि असर करतें हैं. वैसे परमात्मा सर्वमें रहे पर उनको वा उनकी शक्तिओंको वो देहोंके धर्म बाधा नहि करते है. आकाशकाभी दृष्टांत घटादिकके साथ दीया जावे-ऐसा " जलाधारमें अंशुमान " करके फीर सूर्यकाभी देते हैं. फीर वोहि दृष्टांतमें शंका उठाके शोध लेते हैं.

सूत्र—अंबुवत् अग्रहणात्तु न तथात्वम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जलवत् ग्रहण कीये तो वैसा नहि.

विवेचन—जलमें सूर्य आप नहि गीरता और हममेंतो वो आप

है वाते वो दृष्टांत सर्वदेशी नहि वनता. वो दो दृष्टांत भीलाके भाव समझनां ठीक होगा. उनमेंतें जीतना अंश उपयोगी है उतनां अंश लगानेसें " सिंह सरीख वलमें " पराक्रम " लेना वैसा स्पष्ट करते है.

सूत्र—वृद्धिहासभाक्त्वमंतर्भावादुभयसा-
मंजस्या देवं दर्शनाच्च ॥ २० ॥

अर्थ—वृद्धिहासभाव मात्र याके अंतर्गत लेके उतनां भाग उभयमें लीये तो समंजस हो जावेगा.

विवेचन—ऐसाहि दीखातेभी है. पृथ्वी आदिमें रहा परमेश्वर पृथ्वी आदिके वृद्धि ह्रासातें निर्लेप रहे है. वो कैसा जैसा सूर्यका जलमें वेशक वहां वो साक्षात नहि. उतनां अंश न्यून है. यहां साक्षात होके कहेनां समझनां. वाकी पुरती फीर घट और आकाशका लीयेतो हो जाती है. वो भीतर रहेपें, घटके रहेने—फूटनेतें आकाश निर्लेप रहता है. वैसा भीतर रहीके वा वाहिर रहीके देह रहे. जावे वो वृद्धि क्षय पायेतोभी आप सदा एकरुप एक स्वभाववान " उभयलिंग सर्वत्र " हैहि येहि वेदांतका थोप है. वाके स्वरुपमात्रका स्वीकार करके फीर " नेति " शब्दतेंहि यह सर्व वेदांतमें कहा ऐसा यह उभयलिंगत्व ठहराके फीर वाहिका निषेध करते है ऐसी जो शंका उठेतो वा लीये समाधान आप. " नइति " सो " ऐसा " नहि कहीके जो कहा वाका निषेध नहि करनेको है. किंतु इतनांहि नहि यातें इति नां समझो. ऐसे प्रकृत देखे तो वहां प्रकरणमें कहा वाको " एतावत् " का प्रतिषेध करनेको वो इति शब्द है. और वाका पुरावा पुष्टीभी वहांहि है. सूत्रकार कहते हैं.

सूत्र—प्रकृतैतावत्त्वंहि प्रतिषेधति ततो ब्रवी-
ति च भूयः ॥ २१ ॥

अर्थ—प्रकृत उतनांहि है ऐसा प्रतिषेध करते है, पीछे तबहि बहुत कहे हैं.

विवेचन—वो परमात्माके रुपका वर्णन करके आरंभ है. ब्रह्मके दो रुप है. " मुर्त " और " अमुर्त " ऐसे प्रकृतिके स्थूल-सूक्ष्म दो रुप परमात्माके शरीर जो कहेतेहि आये हैं सो जैसे और जगे " शरीर " कहे है. वैसे यहां " रुप " कहे हैं. फीर यहां एक अचित तत्वके दो विभाग, पृथ्वी जल आदि साकार सो "रुप" और वायु आकाशादि " अरुप " दोनोका शरीरी वो एक-ऐसा ब्रह्म है कहा. जैसे अन्नमय-प्राणमय मनोमय-वहां तीन शरीर कहे. वो तीनों अचितके फीर उनतेंहि मर्यादा नहि है. वैसे यहां भी आगे वाका दिव्य रुप भी " एतस्य पुरुपस्यरुप. यथा महा रजतवास करके कहा है. जैसे यह हमारा शरीर एकरुप-और भीतर " अंगुष्ठमात्र " दुसरा ज्योतिरुप-वोभीं-वाकाहि कहा है. जैसे सूर्य अक्षीमें दुसरा दिव्य कहा है वैसा दुसरी प्रकारका वा दिव्य यह प्राकृत दोनो शरीरोंका एक शरीरी वाकोहि कहीके फीर भी कहाकि " नेति नेति " न इति न इति " फीर कही यातें अन्य परम नहि ऐसा नहि है. वाका शरीर अनेक प्रकार अनेक आकार है. वो सर्व वाहिका कहीके फीर वाकोंहि परम कहीके वाकेहि लीये और अधिक वहांभी कहा है. जैसे " अथ नामधेय सत्यस्य सत्यं, प्राणा वै सत्यं, तेषा मेष सत्यं " नाम धारता है-वो सत्य देह-वामें प्राण सत्य कहे तो जीव, उनमेंभी सत्य कहे तो परमात्मा-ऐसा मात्र प्राकृत शरीर शरीरहि नहि-किंतु जीवोंकाभी जीवन-आप सत्य-जीवें सत्य-शरीर सत्य-सर्वका शरीरी

आप–वो मात्र दो प्राकृतरुपवालाहि नहि. किंतु यह जीव जीवनभी वोहि है ऐसा वहांहि कहा है. जो वाको रुप न हो तो आरंभमें ब्रह्मको दो रुप करके कहीके फीर वो नहि नहि है क्यों कहे! लीखके भुंस डाले! कबुलत, दस्तावेज, लीखके बदल जावे, ऐसी नेति नेति कहेनेवाली श्रुति है. ऐसा अर्थ जो करे सो व्यासजीकों श्रुतिको संमत नहि है दो प्रकृति "परा" " अपरा " कहीके " मेरेमें सर्व प्रोत. मेरेतें परतर नहि " मेरी इयत्ता कोइ नहि जानते है " ऐसा जो गीताजीमें और अन्यत्र वेदांतमें भी ठोरठोर कहा वैसाहि यहां है. वो मात्र ऐसा मूर्त अमूर्तरुपवालाहि क्यों नहि सो और सुदृढ करते है. वो.

सूत्र—तदव्यक्तमाह हि ॥ २२ ॥

अर्थ—वाको अव्यक्त कहेते हैं.

विवेचन—फीर उतनाहि वा वैसाहि क्यों कहे! यह तो सर्व साधारणरुप शरीर है. वाका खासरुप कैसा है. सो कोन कहै! श्रुति कहती है. वाका रुप " आंखसे नहि देखा जाता " " न कोइ वाणीतें वाको कही सके!" तव क्या वो काहुको कभी देखहि नहि पडता! ऐसा रहे तो वो है, ऐसा है. वाका शरीरी है. करके कहेनेवालोंका कथन क्यों प्रमाण गीणा जाता! वो जैसा है वैसा अद्भूत भी बराबर प्रत्यक्ष होता है. वाका सर्व रुप गुण शक्ति प्राकृत अप्राकृत हस्तामलक होता है. सर्वमें वो सर्व विशिष्ट होके एक कैसे रहा है. वो सर्व बराबर अनुभव होता है. परंतु सर्व नेत्रकों सर्व मनको नहि. वाको देखने अनुभवने योग्य जो नयन मन बनावे. जीनकी ऐसी योग्यता भयी हो, उनकों और तबहि–वो वेद्य होता है. वो साक्षात मीलता है. वाको मीलावनेके लीयेहि तो यह सर्व वेदांत श्रवण कथन पठन पाठन प्रयास है. वाकी प्राप्तीका उपाय हेहि. और वाका यहां नामभी कह

देते हैं. वो उपाय, श्रुति स्मृति सकल शास्त्रप्रतिपादित क्या? सकल जन सुविदितभी है कि जो करके "अव्यक्त" है सोहि देख पडता है. अव्यक्त तो अभि हेहि. परंतु.

सूत्र—॥ अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।२३।

अर्थ—परंतु संराधनमें प्रत्यक्ष अनुमानतें. ॥

विवेचन—"सं" उत्तम प्रकार " आराधन " " सेवन. प्रीणव भक्तिरुप लगनी–निदिध्यासन–पुजन कोइभी प्रकार–" अनन्यभक्ति " वाका जो नाम दीये सो–त्रो करके वा प्रत्यक्ष होता है. ऐसा श्रुतियें स्मृतियें सब कहती है. " यमे वैष वृणुते " आदि श्रुतियें. " भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया " आदि स्मृति कीतनी लीखे ! जगत सब जानता है कि " भक्ति प्रियो श्रीहरि " परमात्मा भक्तितें पाया जाता है. वो उत्तम प्रकार होना–वोहि उपाय है. वाका स्वरुप ठीक ठीक समझनां चाहीयें. उपाय तो येहि है. सिद्ध है. प्रथम साधनरुप होता है. आरंभ बीजरुप छोटा होता है. वो करते करते " ब्रह्मभूत " होके पराभक्ति मीलाके. फीर वतें परमज्ञान–जो " ज्ञातुंद्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं " वो "अनन्य भक्ति " सो बाहिकी लगनी. निदिध्यासनतें अभ्यासतें होती है. तब फीर प्रकाश–प्रकाशी, शरीर–शरीरी–सर्वत्र–आपमें–आपभी तैसे फीर वोहि अन्य सर्वभी है ऐसे सर्व विशिष्ट वोहि है. ऐसा एकत्व अनुसंधान दर्शन होता है. बहुतको भया है. ऐसा वेदांतमेंभी दृष्टांत है.

सूत्र—प्रकाशादिवच्चा वैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रकाशादिवत् अविशेष–और प्रकाशभी–कर्ममें अभ्यासतें.

विवेचन—कोन कर्ममें ? जो अभी उपाय संराधन कहे, वाका

अभ्यास कीये तो. वो वारंवार कीया कीये तो, साधन दशामेंतें सिद्ध दशामें आया जाता है. वो उपाय जो साधनरुप भया सो सिद्धरुप भक्ति सो पराभक्ति–ज्ञान सो पर ज्ञान अनुसंधान सो साक्षात अनुभव होहि जाता है. क्योंकि उपायभी सत्य, और फलभी सत्य है. यथार्थ होनां उतनीहि अगत्य है. कर्ममें अभ्यास रहेतो परिणाममें जैसे प्रकाशके साथ सूर्य दीखे तैसे आपके अमूर्तमूर्त–रुपके साथ शरीरी वो रुपभी–और भीतर वो आपभी सर्व यथावस्थित अनुभवमें आइ जाते हैं. जैसा ज्ञान वामदेवको भया करके, प्रह्लादजीको भया करके, श्रुति स्मृतियें कहे है. जैसा है वैसा दीखे तो विशिष्ट है. सो विशिष्ट दीखे. अभी हमकों बहिर्दल्ल ज्ञानमात्र है. वाके साथ भीतरकाभी वो सर्वत्र है. सो सर्वत्र. और उभयलिंग विशिष्ट है–सो वैसाहि तव देख पडता है. फीरभी याका इति क्या कहे ! कोन कहे ! कैसे कहे ! वाके रुप स्वरुप गुण वैभव सबके लीये " ब्रह्म " वडा, शब्द ठीक नहि. पूर्ण नहि. यथावस्थित लिंगतो वोहि ठीक है. जो अब कहेते हैं.

सूत्र—अतो अनंतेन तथाहि लिंगम् ॥ २५ ॥

अर्थ—यातें अनंत करके कहा है. वैसाहि लींग है.

विवेचन—वो सर्व बाबतमें स्वरुपतें अनंत तैसे अनंत कल्याण गुण–गणौघ महार्णव–शेषशारद नारद–ब्रह्मा–वेद वाके गुण गाये तोभी पार नहि पाते हैं. यह चिन्ह वाके गुणोंकि अनंतताका कोनतें छुपा है ? वो नयी बात, सुना ऐसा कोन आस्तिक बुद्धिमान, प्रश्नभी करेगा ? " नेतिनेति " सो येहि या प्रकार है " उभयलिंग " और अनंत और वोहि हमारे लीये वधाइसी बात है ? वातेंहि प्रकृति.. हय तैसे वो " उपादेय " है, और वो प्राप्त हो सकेंगे ऐसाभी धैर्य है.

ब्रह्मके दो रुप कहे. अचित् तत्वकों ब्रह्मका शरीर–कहीं, ब्रह्म

कारणका कार्य कहा. सो कोन प्रकार! वो यहां फीर सुस्पष्ट करलेते है. वामें एक प्रकार तो–पूर्वपक्षतें कल्पना करके कहते है!

सूत्र—उभय व्यपदेशात्त्वऽहि कुंडलवत् ॥२६॥

अर्थ—उभयका कथन होनेतें अहि-कुंडलवत् होवे.

विवेचन—ब्रह्महि जगत अचित् भया–सो स्वरुपतेंहि होवे जैसें सर्पहि गोलाकार शीर पुच्छ एक करदीये तो वाका "कुंडलाकार" न कीये तो लंबा "सर्पाकार"–एकहिको "सर्प" और "कुंडल" कहे है तैसे ब्रह्महि कारण कार्य–स्वरुपतेंहि अचित् बन जाके यहरुप पाया है क्या! अथवा—

सूत्र—प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ॥ २७ ॥

अर्थ—प्रकाश आश्रयवाला–वा–तेज होनेतें.

विवेचन—जैसे दीपकों प्रकाश–तैसे ब्रह्मको प्रपंच है. वातें वोहि भया कहेते है. अंत ठराव–

सूत्र—॥ पूर्व वद्वा ॥ २८ ॥

अर्थ—वो दो नहि.

विवेचन—तो पूर्व कहीं गये तैसे. वोहि तीसरा विकल्प शेष रहेता है और वोहि सिद्धांतभी है. आप तो सदा उभय लिंगवाला है. परंतु यह प्रपंच आपका शरीर होके वाका संकोच विकाश होता है–वातें आपहि सूक्ष्म विशिष्ठ, सो स्थूल विशिष्ठ, ऐसे विशिष्ठत्व करके "अहिकुंडल" "तेज तेजी" कहो. परंतु पूर्वके कथनोंके अविरोधसें–वाका "उभय लिंगत्व रहीके" वो स्वरुप गुण शक्तितें जैसाका वैसा रहीके फेरफार अचित्में होता है. यह निर्णय वेदांतका है.

सूत्र—प्रतिपेधाच ॥ २९ ॥

अर्थ—और प्रतिशेध होनेतें.

विवेचन—ब्रह्म स्वरुपतें निर्विकारीहि है. वाका परिणाम होनां-कहेनां तो वेदांतमें निषिद्ध है-सर्व श्रुति वाकों निर्दोषहि कहती है. "स वा एष महान् अज आत्मा अजर अमर" इत्यादि. अचित धर्म तो वामें सर्वथा नहि. त्यों दिव्य कल्याणमय स्वरुपहि है. ऐसाभी रही-के अर्थात् वोहि उभय लिंगवाला आप रहीकेहि सूक्ष्म-चित् अचित् विशिष्ट कारण-और स्थूल चित् अचित् विशिष्ट कार्य--भया है. या रि-तिहि अनन्यत्व सुसंगत रहेता है--यातें वोहि सिद्ध है.

अब सार देखें-यह परम प्राप्य-सो कैसे है ! सकल जगत वाका शरीर होके वो सर्व वाके वश है, फीर आप निर्दोष होके कल्याणगुण-पूर्ण-बडाई-और भलाईकी परिसीमावाला है. परत्व और सुलभत्व वाका सर्वत्र समुझाया गया है. अब अंतकी शंकाकाभी निराकरण कर लेते है की फीर यातें तो कोई बडा नहि है ? यामें और हेतुभी सिद्ध हो जावेगा कि वो आपके कल्याणगुणका उपयोग हमारेहि लीये करता है ! हमारा उपाय होता है ! पतीतपावन-अधमओधारनका बिरद प्रसिद्ध है. वो जैसा पर वैसा सुलभभी है. यह स्पष्टतर होनांभी चाहीये. यातेंपर कोई नहि होवे तबहि तो वो अंत उपास्य-और फीर वाकी योग्यता उभयभी वैसीहि-सिद्ध होना आवश्यक है.

(पराधिकरणम्)

सूत्र—परमतः शेतून्मान संबंधभेदव्यपदे भ्यः ३०

अर्थ—यातें पर सेतु मापवाला संबंध और भेदके कथनतें.

विवेचन—यह जो कहा, यातें और बडा कोइ होनां चाहीये

(अतः यातें परश्रेष्ट.) क्या आधारसें ऐसी शंका उठी ? प्रथमतो " सेतु " श्रुतिवाक्यों " एप सेतु " करके कहती है. तो वो तीरके पार पहुंचनेका साधन भया. फल फीर और चाहीये तैसे फीर " मापवाला " " उन्मान " " चारपाद " " सोल कलावाला " श्रुतियोंमें कहा है. और जो अंत श्रेष्ठ है सो तो " अनंत है. " फीर संबंध " सेतु कहे तो सामनेके तीरके साथ संबंधवाला तीरहि नहि. अमृतका सेतु " कहेतो अमृतकी प्राप्ती करावनेवाला-प्रापक-पावनेका अमृत सो और रहा-प्राप्य वो नहि भया. वैसा व्यपदेशभी है. " परात्परं पुरुष मुपैति दीव्यम् " ऐसे परतेंभी पर श्रुतिमेंभी कोई है. करके कहेते हैं. वातें कोइ यातें पर है ऐसा शंकाके समाधान बहुत सूत्रतें क्रमशः करते हैं.

सूत्र—सामान्यात्तु ॥ ३१ ॥

अर्थ—" सामान्य "

विवेचन—सेतु कहे तो लोकोंका " संकर " न हो जावे. वातें कहे है.वो मर्यादारुप है. मर्यादा रखनेवालेकोंभी मर्यादा कहेते है. कायदा हुकम करता है. कहे तो सरकार समझे जाते है वैसे.

सूत्र—बुद्ध्यर्थः पादवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—उपासनाके लीये पाद सरीख.

विवेचन—मनुष्यकी बुद्धिमें आवे वा लीये वैसाहि दृष्टांत देते है. जातें मनुष्य सद्य.समझके वाकी धारणा बांध सके. वो वाके लीये विचार-उपासना कर सके. चतुष्पाद सो यह जगत एक पाद कहा तैसेहि और प्रकार कलादिक पादादिक कहे है. वोभी बुद्धिमें उतारनेकों उतनां है. करके कहा है.

सूत्र—स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जो नाप कहा की अंगुष्ठमात्र है सो हृदयस्थान विशेषको लेके प्रकाश आदिके सरीख कहा है.

विवेचन—जैसे दो बारीका प्रकाश बस है वो उपाधीको लेके कहा जाता है. फीर

सूत्र—उपपत्तेश्च ॥ ३४ ॥

अर्थ—घटता है.

विवेचन—संबंध घटित है. तारक वोहि है. प्राप्यहि मापक है. " जाको वो वरे " वो जापें कृपा करे सो वाकों पावे. तो वाकी कृपा उपाय सो वो आपहि भया.

सूत्र—तथान्य प्रतिषेधात् ॥ ३५ ॥

अर्थ—तेसे अन्यका प्रतिषेध होनेतें.

विवेचन—परात्पर सो तो प्रकृतितें पर आत्मा वातें पर सो ये है, फीर वातेंभी परतो कोइ कया होवे? कोइ नहि है. ऐसा अन्यका निषेधभी यहांहि कर दीया है. जातें कोइ बडा नाहि. जाके कोइ समान नहि. तो अधिक कहांसे! तात्पर्यकि सिद्ध भया कियेहि अनंत लिंगवाला वो अनंत कल्याण गुणसागर हमारा उद्धार करे. और वो हमारे लीये ऐसा मोटा सो ऐसा छोटा होनेवाला है. हमारे लीये आप अमृतका सेतु होजानेवाला है. आप वरके आपके समान करनेवाला, हमकों है, तो वामेंहि सर्वथा अत्र राग और अन्यमें विराग करनां चाहीये. जहां जो है सोभी तो वातेंहि है.

सूत्र—अनेन सर्वगतत्व मायामशब्दादिभ्यः॥३६॥

अर्थ—या करके सर्वगतत्व व्यापक शब्दादितें ॥

विवेचन—"तेनेदं पूर्ण पुरुपेण सर्वम्" यच्च किं च जगत्सर्वम् दृश्यते श्रुयितेपि वा अंतर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायण स्थितः" ऐसी अनेक श्रुतितें पुरुप करकेहि यह जगत पूर्ण है. जो जगत है–जामें सर्व दीखता और जो सुन पडता है. उनके भीतर और बाहार व्यापीके नारायण रहा है. और "वेदाहमेतं पुरुषं महांतं आदित्य वर्ण तमसः परस्तात्–तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यते अयनाय" करके श्रुति आप अनुभव कथती है कि वो परमपुरुप नारायणकों आदित्य सरीख तेजोमय वर्णवाले दिव्यरुपमें–फीर वो तम कहे तो "प्रकृति" वातें जो "पर" कहे तो "श्रेष्ठ" ऐसा हमें वाकों अनुभवते है. और वाकोहि हम अनुभवे तो अमृतत्व मीलता है. वोहि अमृत होनेतें वोहि उपाय भी है. वाको पावनेका और उपाय नहि. फीर यातें कोइ वडा फल भी नहि है–तत्व नहि है. तैसे याके विना–वाकों मीलनेका मीलावनेका और उपाय भी नहि है. और जो वो आप विना कहे चहे सर्वमें व्यापके धारीके भयाहि रहाहि है ऐसा धारक रहा है तैसे तारकभी तो हेहि.

वाके विना और गति अंत तो नहि. परंतु आदि वोहि है भि और वो परलोकमें तो ठीक परंतु देवलोकमें–और यह लोकमें भी नहि है. क्योंकि जो कुछ जाननां करनां सो फलके लीये वो सूत्रकार कहीदेते है.

(फलाधिकरणम्)

सूत्र—फलमत उपपत्तेः ॥ ३७ ॥

अर्थ—फल यातें घटित है.

विवेचन—सर्व वाकेहि शरीर है. उनमें जो कुछ भोग्यत्व सो

याकोहि लेके है. वो दीलानां वाकेहि वश है. कर्म तो जड है. वृक्ष, पशु, मनुष्य, देव फल देते हैं करके कहेते है. सो कब, कीतनां, कैसा? वो दीवावें, तब, उतनां, वैसा सर्व देव ऋषी–वाके अधिकारी वाकी ओर तें वाके–नियमानुसार–वाका दीवायाहि फल देते है. वो फलभी कीनका? कोन कहांसे वो सामग्री लाये? वो फीर कोनकी है जो आप अपनी ओंरतें देवे? सर्व सरकारीहि है. साक्षात वा परंपरा वो फल जो जो रस्तेतें मांगो–वातें नियमका बराबर पालन कीये तो वो दीलाता–देता है.

सूत्र—श्रुतत्वा च ॥ ३८ ॥

अर्थ—श्रुति होनेतें.

विवेचन—“ स वा एष महानज आत्माऽन्नादो वसुदानः एष ह्येवानंदयाति ” वोहि महान अज आत्मा अन्न वसु देता है, आनंद करावता है. यामेंभी पूर्वपक्ष है जो पूर्व मिमांसा का मत है. “ अथा तो धर्मजीज्ञासा ” करके कहा है. सो धर्ममें श्रद्धा करावनेकों धर्महि फल देता है. ऐसा जैमिनी आचार्य कहेते हैं.

सूत्र— ॥ धर्मं जैमिनिरत एव ॥ ३९ ॥

अर्थ—धर्म जैमिनि यातेंहि ॥

विवेचन—ऐसा जैमिनि आचार्य अपनां मत प्रसिद्ध करते है. यज्ञ याग कैसे कीये तो क्या फल मीलेंगे. वो बडे विस्तारतें सीखाते हैं. सर्व प्रकार अनिष्ठकी निवृत्ती और इष्टकी प्राप्तीके उपाय “ धर्म ” “ कर्म ” हिहैं वोहितें फल है. ऐसा कहेते हैं. रोजगारतें रोटी, नोकरीतें धन–यह ठीक बात है. परंतु वो देनेवाला कोन ! वो कर्म साक्षात नहि देता है किंतु वातें कदर करनेवाला वोहि सत्य देने-

वाला है. और वो देवाधिदेव " श्रीहरि " है जाका नाम पढ़के वे-
आरंभ कीया जाता है और पुरती होता है. यह ज्ञान धर्मके साथ वना
रहेना चाहीये प्रथम धर्ममें लगे फीर वामेंभी देव फल देते है यह
समुझा जावे और फीर सर्व देव देवाधिदेव श्रीहरीके आधीन है. यह
समुझा जाय तो जो धर्म कर्म है सो वाकी आज्ञा पालनरुप हैं और
वाते प्रसंन होके वोहि धर्म अर्थ काम देना दीलाता है. यह पुरा स-
मुझा जावे फीर कर्म केवल नश्वर परिमित है. और श्रीहरी अनंत
स्थिर फल है. वोहिका आराधान वोहि धर्म कर्मको समझके वोहि हेतु
अनुष्ठान कहे तो वो अनंत फल मीलता है वोहि समुझानेको वेदांत है.
और वोहि यहां जैमिनीके मतके भी उपर कहेते होके येहि अंतकी वात
है कर्म करने चाहीये मनुष्य देव सर्वके प्रति कर्तव्य नियत हैं वो सर्व
सेवा सर्वेश्वरकी है. वो प्रसन्न होवे, और वाते हमारे वंध छोडे, और
आपके अनुभवमें सदा जोडे, यह उपाय और फल हैं और वो देने
करानेवाला ऐसा दिव्य गुणवाला अनंत उदार सर्वेश्वर है. वो यथा
कर्मफल देता है. तो हमको येहि उद्देशतें याहिके उचित वाहिकी
आज्ञानुसार कर्म धर्ममें लग जानां चाहीये फीर वो फल वातें मीलेगा
हि. क्योंकि कर्त्ता भर्त्ता संहर्त्ता नियंता वोहि सर्व फलप्रदाताभी है.
यह व्यासजीका वेदांतका अंत निर्णय है. चेतन वाके परतंत्र है वो
स्वामी है यह सेवक है येहि स्वरुप है. वाका पुरावाहि यह लोक और
परलोक है अस्थिर और नित्य भोग है. दोनो सत्य हैं उभयका नाथ
देनेवाला एकहि है.

सूत्र—पूर्व तु वादरायणो हेतुव्यपदेशात् ॥ ४० ॥

अर्थ—पूर्व कहा वो बादरायण हेतु व्यपदेशतें.

विवेचन—पूर्व कहा वो परमपुरुष श्रीमन्नारायणहि फल देने-

वाला है. ऐसा भगवान बादरायण सूत्रकारका मत है. वाका हेतुभी कहा है. " यज्ञ " तें फल कहेतो " यज्ञ " सो क्या ? "यज" सेवा-सेवन आराधन; सो कोनका ? वो वो देवका. वो क्यों कीतनां फल देते है ? वो वेद पुरुषकी आज्ञाके बंधे हुवे वाके नियमानुसार वो उनका अंतर्यामीहि है. सर्वका देते है. वो सरकार है देव सर्व वाके अधिकारी है वातेंहि वाके " तनु " करके श्रुति गीता स्मृति आदिमें वो कहे गये है. वो तनु फल देते है कहेतो येहि सुज्ञ समझेंगे कि " तनुवाला " " अहं हि सर्व यज्ञानां भोक्ताच प्रभुरेवच " " यज्ञ नारायण " " यज्ञविष्णु " वोहि आराधनका फल देनेवाला है. करके प्रमाण है. वाहिका सर्व वेदमें आराधन और वेदांतमें उपासन कहा है. वोहि वेद्य है वोहि प्राप्य है और आनंदकी वार्त्ता हैकि वोहि प्रापकभी होता है. यह अंत रहस्य-उपाय फलका सार है. पूर्ण ब्रह्मज्ञान सो येहि है कि जो परमतत्व वोहि उपाय है वोहि फल है; एक जानें सर्व जाना. एकको मीलायेकि सर्व मील चूका-फीर अधिक क्या चाहीये ? इति.

-वोहि तृतीयाध्याय द्वितीय पादकाभी इति.-

॥ श्रीमतेरामानुजायनमः ॥

॥ तृतीयाध्याय तृतीयपादः ॥

परब्रह्मकोंहि पावनां—वाकों पावनेका उपाय वोहि है. ऐसा कहनेमें वाकी कृपा यह एक बात; और वाकाहि संबंध यह दुसरी. साक्षात संबंध होगा; तब तो बेडा सब पार है. परंतु वैसा वाके साक्षात संबंधकों पावनेके योग्य हमारे करण अभी नहि भये है. हम स्वरूपतें तो शुद्ध है. हमारी रश्मीयेंभी स्वरूपतें वैसीहि है. परंतु अनादि प्रकृतिके संबंधतें वाके द्वारा हमारे कीरणोंका उपयोग हमकों करनेका होनेतें हम वो मल प्रयुक्तहि संबंध कर सकते है. वो फीर जैसा मलका प्रकार—राजस, तामस, वा सात्विक, न्यून वा अधिक-पूर्वकर्मानुसार हमारी देह तो बन गई. अभी प्रारब्धानुसार उनमें विकार रज सत्व तम मय होंगे तब तब हमारा ज्ञान वैसा हो जायगा. तोभी सदा सात्विकके संसर्गमें-सत्केहि संबंधमें—भगवत विषयमेंहि लगे रहेनेका प्रयत्न कीये तो, प्रसादहि अहार, तिर्थहि पान, भगवत्क्षेत्रमें—भगवद्धाममेंहि वास—भगवतसेवामेंहि समय साधनका उपयोग-भगवत संबंधी कार्यकों लेकेहि व्यहवार; यह कीये तो हमारी प्रकृतिमें नये तम रज अंश आते बंध होवे. और जूनेभी सर्व नये सात्विक केहि बाहुल्यते अंत सात्विकहि बन जावे. वा सात्विकका आधिक्य रहेनेतें—अथवा सात्विकहि आहार विचार आचारसें—सात्विकमें जबरदस्ती लगे रहेनेतें (कैसीभी प्रकृति देह मन हो;) अपनां ईष्ट शीघ्र साध ले सकते हैं. वामें जीतनां हमारा प्रयास, उतनांहि वो तत्त्व जाके संसर्गमें हम रहनां चहते हैं—वाका स्वभाव-प्रभाव सहाय करता है. संबंधतें लाभ हानी अवर्जनीय है. वो श्री हरिनें देशकाल वस्तुमें केवल चेतनोंके उद्धारके लीये ऐसा महात्म्य

धरा है कि वो भला अल्पभी असंख्य बुरोंका निवारक हो सकता है; जैसे अल्प दवाई महा व्याधिका, वा अल्प अग्नि वडे तुलराशीका; वो निवारकत्व पावनत्व–और मंगलत्वभी मुख्य आप अखिल हेय प्रत्यनीक कल्याणैकतानका है. वो संपूर्ण दिव्याकारसे जैसे परमपदमें है वैसे " अजायमानो बहुधाभि जायते " वोहि व्यूह विभव, अंतर्यामी, अर्चाभेदसें प्रकटते है वाके संपर्कमें–यहांके बद्ध–मलीन–सहज प्रयासतें येहि उपकरणतें आइ सके–मलमें, कूपमें, वंधमें, पडे, फसे, वो उन्नतिको पाई सके–वाहि लीये वो हममें केवल करुणातें हम सेव सकें. ऐसे बनकर प्रकट रहेते हैं. हम देख चूकेकि सूर्यमें, अक्षीमें, हृदयमें, वो साकार है. जाका हम यह येहि देहमें रहे येहि मनकों विशुद्ध बनाके वाके द्वारा साक्षात कर सकते हैं. वातेंभी सुलभ उपाय तो–सुलभताकी पराकाष्टातो–" अर्चा " है. बहुत शिष्टोंनें वाका " संराधन " वोहि अर्चाद्वारा अर्चन करनां ठहराया है. और पूर्वमिमांसा वाहिको शीखनेवाला है उत्तरमीमांसा–वेदांत–आराधन करना वो–तो कैसे भावपूर्वक वो ज्ञान–विचार–सुधारनेके वास्तेहि है. वामें भी " उपासना " शब्द ठोर ठोर " उप" पास " आसन " बैठना सो मात्र तनतें नहि. किंतु मनतें. वो वाके रुपगुण शक्ति वैभवके यथावस्थित ज्ञान–स्मरण–अनुसंधान प्रेम–उपकार वृत्ति–आतुरता आदि–भाव पूर्वक–होना चाहीये. वो ज्ञान वेदांत देता है. वामें उपासना मात्रमें उपास्यका चिंतवन वो साधन नमन सेवन साथहि होता है. फीर प्रेमका परिणाम कैंकर्यहि है. और वो प्रेमका उत्पादक–गुण चिंतवन है. परब्रह्मके अनंतगुण है. वाका प्रकट न तो अनेक शक्तिद्वारा होता समझाजाता है. वो समझके तदनुगुण वाका चिंतवन करनेकों वेदांतका श्रवण मनन करना बना है. फीर वो चिंतवन करना तो जहां देखे वहां होगाहि.

ब्रह्मकी अनंतता तैसे वेद अनंत वामेंतें हम जीतनां भाग पाये. वामेंभी जीतनोंकों समझनेंकों सूत्र भाष्योंकि सहाय मीली उतनेंकोंहि हम विचार सके. वो सूत्रोंमें अब वो गुणोंकादि विचार करनेवाला यह पाद " गुणोपसंहार " नामतें कहाजाता है. मुख्य उपाय तो उपासना है परंतु वो करना चाहीये. गुणपूर्वक गुणीका सतत विशुद्ध प्रेमी मनतें चिंतवन वो बना रहेनेको फीर क्रियादिभी और करणों-काभी और साधनोंकाभी वा लीयेहि उपयोग प्रथम विधिसें करते है. फीर अभ्यास फीर कीये विना रहाहि नहि जाता क्या वो जीवनहि हो जाता है. और प्रेमीको तो प्रेष्टका सेवन वोहि जीवन है. येहि हमारा स्वरुप है. वो गुह्य अनुभवतें समुझा जावे. भोगा जावे ऐसा है. जो है सो प्राप्त होगाहि. परंतु कब ? उपाय बराबर कीये तो वो येहि है कि वाका चिंतवन बना रखनां. फीर वातें हमारे मल कष्ट के हम विशुद्ध होके वातें साक्षात संबंधमें आवेंगेहि. वा लीये जो जो गुणरुप शक्ति-युक्त वाका उपासन करनां वेदांतमें विविध प्रकार कहा है. उनके नाम " विद्या " है. येहि ब्रह्मविद्या–येहि ब्रह्मको जाननेका पावनेका उपाय है वो सविस्तारतें वो वो उपनिषदोंमें कहा है. वाकेभी फीर अनुष्ठानके लीये तो और उपब्रह्मण और आचार्यादिकी सहाय लेनी होती है. परंतु यह उपनिषदोंमें जो विद्यायें आ गइ है. उनका उपयोग करनेमें परस्पर श्रुतिवचन विरुद्ध वो असंबद्ध सरीखे मंदबुद्धिको दीखे वाका निर्णय जो सूत्रोंतें कीया–सो यह पादमें है. मुख्य उपाय केहि प्रकरणके संशयोंका दूर करनेका ये प्रसंग है. अब वो कोन प्रका र सो सूत्रोंतें हि आरंभ करे.

" विश्वानर " परमात्माकी शक्ति–रुपको समझानेवाली वैश्वा-नर विद्या है. वो वेदांतमें अनेक शाखामें है. एक विद्या अनेक वेर कही है सो वो भिन्न भिन्न होगी क्या ? क्योंकि एक स्थलमें शीरोद्र-

तवालेकों पढावनां ऐसी आज्ञा है. अन्य स्थलमें वैसी आज्ञा नहि है. यहं एक दृष्टांत है. वैसेहि और विद्यायेंभी बहुत जगे वारंवार दीख पडेतो उनका क्या समझनां ! या लीये सूत्र है कि.

[सर्ववेदान्त प्रत्ययाधिकरणम्]

सूत्र—सर्व वेदांत प्रत्यय चोदनाद्य विशेषात् ॥१॥

अर्थ—सर्व वेदांत प्रत्यय विधितें अविशेषतें.

विवेचन—ऐसे सर्व वेदांतका प्रत्यय एकहि " उपासना " है. वो भिन्न स्थानमें दीखे तोभी " चोदनात् " आदि—" उपासीत् " उपासना करो " ऐसी आज्ञा " चोदना " विधि आदि कथन उनके लीये होनेतें वो विशेष नहि. " अविशेष " वोहि विद्या है. ऐसा समुझा जाता है. छांदोग्य, वृहदारण्यक, उभयमें एक प्रकार—विधि आज्ञा होनेतें वो विश्वानर विद्या दोमें कही रही एकहि है. दोनोंका फल ब्रह्मप्राप्ति है, बहुत जगे क्यों कहेते हैं ! वातें भेद होंगे ऐसा कहे तो.

सूत्र—भेदान्नेतिचेदकस्यामपि ॥ २ ॥

अर्थ—भेदतें नहि ऐसा कहे तो एकमेंभी.

विवेचन—समझनेवाले और और रहेतें वारवार कहे; बहुत प्रकार बहुतकों समुझाये हैं. विद्या वोहि है. फीर जो एकमें शीरोव्रत कहा है. अन्यमें नहि कहा सो ? क्यों ? वाका उत्तर.

सूत्र—स्वाध्यायस्य तथात्वे हि समाचारेऽधिकारा सव वच्च तन्नियमः ॥ ३ ॥

अर्थः—स्वाध्यायका तथात्व है. समाचारमें अधिकार होनेतें " सव " (होम) सरीख वो नियम है.

विवेचन—आथर्वणीकोंकेहि लीये स्वाध्याय पूर्ण हो—शीरोव्रत हो-त पढानां ऐसा समाचार ग्रंथमें अधिकारका निर्णय है. सो सर्वके लीये नहि. जैसे होममें वेद भेदतें विधि भेद होवे वातें होम दुसरा नहि होता. वैसे यह उपासन-विद्या-भी एकहि है.

सूत्र—दर्शयति च ॥ ४ ॥

अर्थ—और दीखाते हैं.

विवेचन—श्रुतिमें वैसा देख पडता है कि सर्व वेदांतका एक प्रत्यय है. जैसे छांदोग्यमें "वामें जो है वाको ढुंढनां" तस्मिन् यदन्त स्तदन्वेष्टव्यम्" ऐसा कहीके वो क्या पुछके अपहत पाप्मत्वादि आठ गुणवाले परमात्माका उपासन करना कहा है. तैसे तैतिरीयकमें "वहां भी दहर-गगन विशोकतामें जो अंदर है. वाका उपासन करनां ऐसा कहीके गुणाष्टक विशिष्ट परमात्माका उपासन कहा है. वो उभय एक विद्या है. उभयमें एकमें कहे गुणोंका उपसंहार इतरमें करनां उचित है. "सर्व शाखा प्रत्यय न्याय" हार गुंथनेको सर्व शाखातें जहां जहां उपयोगी पुष्प हो सो चुंट लेनां वैसा करना.

सूत्र—॥ उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत्समाने च ॥ ५ ॥

अर्थ—उपसंहार अर्थभेदतें विधिशेषत्व समानमें.

विवेचन—सर्व वेदांतमें ऐसे उपासना समान रहे तो वामें वेदांतमें कहे गुणोंका उपसंहार करनां. एकठे मीलाके वैसा श्रीहरि है. हमारा उपास्य है. यों चितवन करनां. "विधिशेष सरीख" अर्थभेद रहे तो विधि पूर्ण त्यों अर्थ भी संग्रह कीये तो पूर्ण होता है. वातें एक विद्याकों बहुत जगे कही. वातेंहि विद्याभेद नहि समझनां. त्यों

वहु जगे कहेनेका लाभ भी पूरा लेनां सो सवमेंतें अर्थ संग्रह करके लेनां यह एक सामान्य निर्णय है. जहां जहां वैसा प्रसंग हो वा लीये एक वेर यहां कही दीया. अव दुसरा प्रसंग.

कोइमें विधि-(" चोदनां ") एक नहि होती तो वहां फीर विद्या और ठहरेगी; जैसे वाजी (वृहदारण्यक) और छांदोग्यमें उद्गीथ विद्या है. प्राणका प्रकरण उभयमें है. देवोंने उपासनाकी है. असुरका पराभव भया है यह दो स्थानोंमें.

(अन्यथात्वधिकरणम्)

सूत्र—अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ॥६॥

अर्थ—अन्यथात्व शब्दतें है. ऐसा कहे तो नहि. अविशेषतें.

विवेचन—यद्यपि एकमें प्राणोंको-हे प्राण ! तुम उपासना करो, ऐसी प्रार्थना है. उनका कर्तृत्व है. और इतरमें-हे प्राण ! तुम असुरका पराभव करो. ऐसे प्राण कर्मस्थान है. वो उनका अन्यथात्व शब्दतें है. परंतु वातें फल एक-असुरका पराभवहि होनेतें विद्या एक समझे. विधि भेद रहे तो क्या हरकत है ? फल तो एक है ऐसा पूर्वपक्ष है. वाका उत्तर.

सूत्र—॥ न वा प्रकरणभेदात्परोवरीय स्त्वादिवत् ॥ ७ ॥

अर्थ—वा नहि. प्रकरण भेदतें परके वरीय स्त्वादि सरीख.

विवेचन—एकमें प्राण उपासनाका विषय है और एकमें उपासनाका कर्त्ता ऐसे प्रकरणहि भिन्न है. विधेय भिन्नतें रुप भेद, और

ग्रिका विधान सो परका वरीयस्त्वादि गुण विशिष्ट विधान है. वो जामें नहि. वातें अन्य भर्या हि.

सूत्र—॥ संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तु तदपि. ॥८॥

अर्थ—संज्ञाते है कहे तो वो कहे तो भी.

विवेचन—एक संज्ञा उभयका उद्‌गीथ विद्या–ऐसा नाम रहे तो वो एक नामवाली. वातें एक विद्या ऐसा नहि समझनां. एक नहि है. जैसे " अग्निहोत्र " शब्द एक रहे. पर उनके प्रकार भेद है.

सूत्र—व्याप्तेश्च समंजसम् ॥ ९ ॥

अर्थ—व्याप्तीमें ठीक है.

विवेचन—अवयवमें उद्‌गीथ आवनेतें वाकी व्याप्ती होनेतें वो नाम होनां ठीक है. अवयव, प्रणव, वोहि उद्‌गीथ वो उभयमें है. परंतु वो एकमें उपास्य. " कर्म " और अन्यमें " कर्त्ता " ऐसा भेद होनेतें विद्या एक नहि. यह भी ठीक है. ऐसे विद्या एक नामकी रहे पर भी, भेद भी होते है. वो वो प्रकरणकों ठीक समझनां–यह भी एक निर्णय है.

प्राणविद्या छांदोग्य और वाजीमें है. वहां प्राणका जेष्ठत्व श्रेष्ठत्व दोनोंमें दो गुण कहे है. और वो दो गुण कौशीतकीमंभी–वोहि प्रकार प्राणविद्या है–वामें–कहे हैं. परंतु वहां तीसरा विशिष्टत्व गुण नहि कहा. जो यह दो स्थानमें कहा है. तो वो विद्या एक वा नहि ?

[सर्वाभेदाधिकरणम्]

सूत्र—सर्वाभेदा दन्यत्रे मे ॥ १० ॥

अर्थ—सर्वे अभेदतें अन्यत्र वो.

विवेचन—वो गुणकों सर्वत्र लेनां. वातें विद्याभेद नहि होता ! वो गुण प्राणमें हेहि. अन्यत्र कहे तो जहां नहि कहे वहांभी लेनां. : जाका असाधारण गुण है. वो नहि कहे तो वातें वो विद्या भिन्न न हो जाती. थोडा प्राणविद्याका प्रकरण कहेनेमें येहि दृष्टांत ब्रह्मः आनंदमयकों लागु होनेंतें वाका प्रसंग वीचमें उठावतें हैं.

[आनन्दाद्यधिकरणम्]

सूत्र—आनंदादयः प्रधानस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—आनंदादि प्रधानका.

विवेचन—" प्रधान " " गुणी " ब्रह्म ! वाके आनंदादि : णभी सर्वत्र लेने. जैसे प्राणका विशेपत्व लेनां कहा, तैसे यह आनं गुणभी परमात्माका असाधारण लक्षण हैं. स्पष्ट स्वरुपके निरुपण वा विनां चले नहि ऐसा है. ऐसे जीतनें गुण हो सो और जगेते ले परंतु वा विना स्वरुपका निरुपणहि पूरा न हो सके ऐसे हो. सो लें नहि तो वाके गुणोंकातो कहां पार है ! वाकेतो कीतनेंहि हेतुको लें कीतनेंहि प्रकार समझाया है. जैसे येहि प्रकरणमें.

सूत्र—प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रिय शिरस्त्व आदिकी अप्राप्ति–वृद्धि क्षय–भेदमें.

विवेचन—"प्रिय शिर चोह दक्षिणपक्ष" इत्यादि यहां जो ब्रह्मका पुरुष विधत्व–रुपक–कहा हैं. वो सर्वत्र नहि लेनां. उनकी अप्राप्ति

" सत्यंज्ञान मनंतंब्रह्म " वचनतें विरुद्ध है. इतर अनेक गुण परमात्माके हैं. सो सर्व, सर्व विद्यामें लगावे क्या ?

सूत्र—इतरेस्त्वर्थ सामान्यात् ॥ १३ ॥

अर्थ—इतरमें तो अर्थ सामान्य होनेतें.

विवेचन—यह जो इतर सो तो अर्थ सामान्य होनेते सर्वत्र लागु करने. वा बीना वाके स्वरुपकाहि पूरा निरुपण नहि होता. फीर वैसा स्वरुपवाला जहां जहां जैसा विशेषण शरीरवाला हो. वहां वो वो इतरगुण खास कहे सो लेने, नहि कहे सो न ले,

प्रिय शीरस्त्वादि तो वो वैसाहि है. वो समझनेंकोहि नहि कहा. किंतु

सूत्र—आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ॥ १४ ॥

अर्थ—ध्यान क्रिया करनेको प्रयोजनके अभावतें.

विवेचन—जैसे आत्माको रथी, शरीर रथ, यों रुपक-समझमें ठीक आवे, तैसे ध्यान करनेको, चिंतवनके लीये, बुद्धिमें लगानां है. और प्रयोजन उनका नहि है. सो जहां कहा वहां सही. अन्यत्र और प्रकार समुझावेंगे. वहां वो रिति समझे. वाको समझावनेके एकहि प्रकार नहि. वाका एकहि रुप रंग न है. यह आनंदगुणतो.

सूत्र—आत्मशब्दाच्च ॥ १५ ॥

अर्थ—आत्मा शब्दतें.

विवेचन—शीर पुछ पक्ष कहींके मुख्य आत्मा—वाको आनंदमय कहा है. सर्वत्र अन्यान्तरात्मा. ऐसे सर्व प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमयका आत्मा करके वाको कहा है. फीर आनंदमयका और आत्मा सो वो क्या ?

सूत्र—आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्मा लेनां जैसें आगेके कहे तैसें.

विवेचन—आपकाभी आत्मा आप. ऐसा वो आनंदमयहि है. आत्मा नामहि आप तैसे आनंदमय सो आप. श्रुतियें कहतीहि है. इत रोंका आत्मा तैसा—आपकाभी आप आत्मा.

सूत्र—अन्वयादिति चेत्स्यादवधारणात् ॥१७॥

अर्थ—अन्वयतें ऐसा कहे तो हो—अवधारणतें. ॥

विवेचन—अवधारण—निश्चय—" पूर्वसें जो अन्वय—संबंध " शारीर—आत्मा सोहि यह—वहांहि फीर यह " आत्मातें सर्व भया " करके फीर कहा है—सो वोहि आनंदमयके लियेहि है. वानें इच्छा कीनी—सो आनंदमयनें—ऐसा जगतकारणत्व वाका कहा है. वातें वो आत्मा सोहि आनंदमय—जैसे सत्य ज्ञान अनंत तैसेहि आनंद गुणभी स्वरुप निरुपक है. वातें वो गुणकों सर्वत्र लेनां.

[कार्याख्यानाधिकरणम्)

सूत्र—कार्याख्यानाद पूर्वम् ॥ १८ ॥

अर्थ—कार्य—आख्यानतें अपूर्व.

विवेचन—प्राणविद्यामें प्राणका वस्त्र जलको (प्राण) कहा है. और भोजनके पूर्व और पीछे आचमन नहि कीये तो अंन नग्न रहेता है " ऐसा छांदोग्य वाजसनेयक दोनोंमें है. सो आचमन करनां विधि है कि प्राणका वस्त्र करके जलमें अनुसंधान करनेको वो कहा है! ऐसी शंकाका समाधान है कि अपूर्व आख्यान्—कथनतें वो कार्यको

अनुसंधान करनां कहा है. आचमन तो श्रुति स्मृति आचारतें प्रसिद्ध है. वातें विधि नहि है.

वाजसनेयकमें शांडिल्यविद्या है. वामें सत्यका ब्रह्म करके उपासन करनां कहीके वो आत्मा " मनोमय प्राण शरीर–भारुप–सत्य संकल्प आकाशात्मा " कहा है. और वामेंहि और जगे वोहि विद्या फीर आवती है. वहां मनोमय पुरुष हृदयमें कहीके " " सर्वका वशी सर्वका ईशान सर्वका अधिपति कहा है. सो विद्याभेद है वा नहि. वा पर सूत्र है—

[समानाधिकरणम्]

सूत्र—समान एवं च अभेदात् ॥ १९ ॥

अर्थ—समान ऐसे अभेदतें.

विवेचन—अधिक गुण दुसरी जगे कहेतें विद्याका भेद नहि हो जाता है. मनोमयत्व आदि समान हेहि. वातें वो एकहि विद्या है.

बृहदारण्यकमें आदित्यमें और दक्षिणाक्षीमें सत्यकी उपासना कही है. वो ब्रह्मकी व्याहृती शरीर करके कही है. वो एक अध्यात्म– और एक अधिदैवत करीके सो एकहि विद्या है क्या ?

(सम्बन्धाधिकरणम्)

सूत्र—संबंधा देव मन्यत्रापि ॥ २० ॥

अर्थ—संबंधतेंहि ऐसे अन्यत्रभी.

विवेचन—जैसे और जगे गुण विशेष रहे तो भी विद्या एक तैसे यहां भी.

अक्षी वा आदित्यमें. परंतु ब्रह्मकाहि संबंध होनेंतें अन्यत्र स
रीख वहां भी समझे ऐसा पूर्वपक्ष करीके उत्तर.

सूत्र—न वा विशेषात् ॥ २१ ॥

अर्थ—वा नहि विशेषतें.

विवेचन—वो एक विद्या नहि. स्थानभेदतें रूपभेद. वातें विद्याभेद

सूत्र—॥ दर्शयति च ॥ २२ ॥

अर्थ—और दिखाते हैं.

विवेचन—वहां श्रुतीभी वैसा अमाप्त देशकी माप्ति करके भे
समझावती है.

फीर येभि नियमहि नहि की स्थानभेदतें विद्याभेदहि हो.

(सम्भृत्याधिकरणम्)

सूत्र—॥ संभृतिद्युव्याप्त्यपि चातः ॥ २३ ॥

अर्थ—धारण व्यापन जो द्युमें है.

विवेचन—तैतरीयमें ब्रह्म वीर्यका धारक और आकाशमें व्याप्त
कहा है. वो जब हृदयके द्युको मसंग हो तो नहि लगे. जहां जीतनां
कहा वैसा अनुसंधान करनां अंगुष्ठमात्र कहेतो आकाश जीतना
नहि. आकाश कहा वहां अंगुष्ठमात्र नहि कहे है. जहां जैसा वहां वैसा.

(पुरुषविद्याधिकरणम्)

सूत्र—॥ पुरुष विद्यायामपि चेतरेषामना
म्नानात् ॥ २४ ॥

अर्थ—पुरुषविद्यामें भी औरका नहि कहेनेंतें.

विवेचन—तैतरीयकमें और छांदोग्यमें पुरुषविद्या है-वो नाम एक रेहपरथी विद्याभेद है. एकमें कहे गुण औरमें नहि कहेनेतें फीर रुप फलकाभी भेद है. तो ऐसे प्रसंगमें एकमें कहे गुण दुसरी जगे-वा-विद्या कही हो-वहां उपसंहार नहि करनां.

आथर्वणिक उपनिषद्के आरंभमें "शुक्रं प्रविध्य" यह मंत्र पढते हैं. साम वा और "देव सवितकारक तैतरीय" "शंनो मित्र" ऐसे जो मंत्र भिन्न भिन्न पढे जाते हैं. वो विद्यांगभूत हैं. वा नहि.

(वेधाद्यधिकरणम्)

सूत्र—वेधाद्यर्थभेदात् ॥ २५ ॥

अर्थ—वेधतें अर्थभेदतें.

विवेचन—सर्वत्र पढनेके नहि. अर्थहि समझावते हैं कि कोनका कब पढनां और कोनकों नहि. "शुक्रं प्रविध्य" यह अभिचार है. वो विद्यांग नहि हो सकते हैं. और विद्या सामर्थ्यके लीये हैं. तात्पर्य यह सर्व विद्यांग नहि है.

छांदोग्यमें "राहुके मुखतें चंद्रकी नांइ पापोंतें छुटीके ब्रह्मलोकमें जाता है" कहा है. आथर्वणिका "पुण्यपाप धोके परम समानता पावता है" कहते हैं. तैसे फीर एक जगे वाके सुहृदोंकों पुण्य, शत्रुकों पाप मीलते है कहते है. ऐसेहि कहीं पाप धोता है. और औरोंको मीलते है. ऐसाभी जो मुक्त होता है वा लीये कहा है तो यहां संशय है कि कर्मका धोनां—हानी—नाश और फीर कर्मका औरोंको उपाय न मीलनां यह दो बात एकके विषयमें क्यों बने? वाका समाधान है.

सूत्र—छंदत उभयाविरोधात् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसा चाहो वैसा उभय अविरोधतें.

विवेचन—पूर्वपक्ष.

सूत्र—गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः ॥ २९ ॥

अर्थ—गति होनेकों प्रयोजन है. अन्यथा विरोध है. यातें उभयथा नहि.

विवेचन—विना शरीर यह देहमेंतें निकले पीछे जो अर्चिरादि मार्गतें विरजा पर्यंत जानां सो कैसे बनेगा! यातें देहमेंतें निकले तब-हि पुण्य पापतें विशुद्ध होता है कहे तो नहि ठीक होता है. कर्मका फल देह-याका जहांलों प्रयोजन है वहांलों याका होनांहि ठीक है. नहि तो फीर, याको विना कर्मकेभी देहतो-जानेकों-होनीहि चाहीये. यातें यहां विशेष कर्मोका क्षय होनां उपपन्न नहि.

उत्तर—समाधान.

सूत्र—उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ॥३०॥

अर्थ—उपपन्न है याके लक्षण अर्थ-उपलब्ध लोक सरीख.

विवेचन—यह देहतें निकलनेके समयहि सर्व कर्म क्षय होनां उपपन्न है. यो गये-कर्म नष्ट हो गये तो देह नष्टहि हो जानां जरुरतहि नहि. यो दुःखद न हो—क्योंकि कर्मतें प्राप्त भयो देह उनकों छुट जावे—जो मुक्त हो जावे फीर जब स्वरुप आविर्भूत हो गये तो यो देहसंबंध लक्षण है. यो अर्थ याको उपलब्ध है. मुक्त तो स्वसंकल्पतें जीतनें चाहे उतनें. शरीर -धारण-कर सकता है.” कर्म शरीर—रहे तो कर्म

[हान्याधिकरणम्]

सूत्र—हानौ तूपाय न शब्द शेषत्वात् कुशाच्छंदः स्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ॥ २६ ॥

अर्थ—हानीमें उपाय. न शब्द शेप होनेतें. कुशछंद स्तुति उपगान सरीख कहा है.

विवेचन—जब एकको हानी एकतें छूटे तो फीर दुसरेकों मीले कहेनां शेप रहेताहि है. ऐसे यहां जो पूर्व कहा–वाका खुलासा–औरतें होता है. कि–वो पाप पुण्यका क्या होता है. एक वाक्य दुसरेका शेप हो गये तो परस्पर सहायक होता है. विरोध नहि आता है. जैसे " कुश लाओ कहा ". फीर अन्य वाक्य " औदंबरी " तो खुलासा भया " छंद पठनां " कहा. फीर " देव असुरोंके स्तोत्र पठनां " फीर " अमुक कहे तो " गान होनां " अमुक पुरुपहि गावे ऐसा यहांभी समाधान हेकि मुक्त होता है. वाके पुण्यपाप सब छुट जाते हैं. यहभी ठीक है. और फीर वो वाके स्नेहि द्वेपी पाते हैं यहभी ठीक है. अब येहि पुण्यपाप कहां छुट जाते हैं, यहभी शंकास्पद है, कहींतो यहां कहते है, कही विरजापें कहते है, तो सूत्र हेकि.

(सांपरायाधिकरणम्)

सूत्र–सांपराये तर्त व्याभावात्तथा ह्यन्ये ॥२७॥

अर्थ—यह देहमेंतें निकलनेके समय फीर कुछ प्रयोजन नहि रहेता.

विवेचन—फीर तभीहि छुट गये जाने तो क्या हरकत है ! और विरजापें गयेपें कहे तो ? तोभी ठीक है.

सूत्र—छंदत उभयाविरोधात् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसा चाहो वैसा उभय अविरोधतें.

विवेचन—पूर्वपक्ष.

सूत्र—गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः ॥ २९ ॥

अर्थ—गति होनेकों प्रयोजन है. अन्यथा विरोध है. यातें उभयथा नहि.

विवेचन—विना शरीर यह देहमेंतें निकले पीछे जो अर्चिरादि मार्गतें विरजा पर्यंत जानां सो कैसे बनेगा! यातें देहमेंतें निकले तबहिं पुण्य पापतें विशुद्ध होता है कहे तो नहि ठीक होता है. कर्मका फल देह-याका जहांलों प्रयोजन है वहांलों याका होनांहि ठीक है. नहि तो फीर, याको विना कर्मकेभी देहतो-जानेकों-रहेनीहि चाहीये. यातें यहां विशेष कर्मोका क्षय होनां उपपन्न नहि.

उत्तर—समाधान.

सूत्र—उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ॥३०॥

अर्थ—उपपन्न है याके लक्षण अर्थ-उपलब्ध लोक सरीख.

विवेचन—यह देहतें निकलनेके समयहि सर्व कर्म क्षय होनां उपपन्न है. वो गये-कर्म नष्ट हो गये तो देह नष्टहि हो जानां जरुरतहि नहि. वो दुःखद न हो—क्योंकि कर्मतें प्राप्त भयो देह उनकों छुट जावे—जो मुक्त हो जावे फीर जब स्वरुप आविर्भूत हो गये तो वो देहसंबंध लक्षण है. वो अर्थ याको उपलब्ध है. मुक्त तो स्वसंकल्पतें जीतनें चाहे उतनें शरीर-धारण-कर सकता है." कर्म शरीर—रहे तो कर्म

रहेतेहि करके कोई प्रयोजन नहि. लोकमें खेत पीलानेको कूप बनाया. वो खेती हो चूके पर वामेंतें जल पानादिक हो सकता है; तैसे वाके सामर्थ्येतें गतिके लीये वो देहहि बना रहता है. जो सूक्ष्म होता है. पुण्य पाप शेषवाला तब नहि रहता. वो वाकों भोगनेको नहि है. वो तो माफ हो गये है. वाको ज्ञान हो गया तो फीर देह रहे पर वो वाकों वैसे सुख दुःखका हेतु नहि रहती.

शंका—ऐसा क्यों माने ? वशिष्ठ मनु आदिकों हर्ष शोक होते देखते है. वो ब्रह्मविद्यातें ब्रह्मनिष्ट हो चूके हैं–वाका समाधान—

सूत्र–यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्।३१।

अर्थ—अधिकार रहे पर्यंत वो अधिकारीयोंके शरीरोंकी स्थिति है.

विवेचन—वातें उनकों करनां भोगनांभी हैं. परंतु उनकोभी देहपात समय येहि गति. येहि प्रकार है. जो विद्या सामर्थ्यतें माफ होवे सो विद्या भयी की फल मील जाता है. प्रारब्ध विद्यातें नहि कटतें सो प्रारब्ध भोगनेहि पडतें है. उनके वडे है. सो बहुतकाल भोगतें हैं.

अब पाप पुण्य धोनेके प्रसंगते अर्चिरादि गतिभी आइ गइ. वाके विषयमें शंकाओंका समाधान करते हैं. शंका ऐसी कि जो जो विद्यामें अर्चिरादि गति कही है उन्हीं विद्यावालोंकी वो गति होती है. ऐसा समझनां कि सर्व ब्रह्मविद्यावालोंकि–वा लीये क्या नियम है!

[अनियमाधिकरणम्]

सूत्र—अनियमः सर्वेषामविरोधः शब्दानु-
मानाभ्याम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—नियम नहि. सर्वको अविरोध–श्रुति स्मृतियोंतें.

विवेचन—अर्चिरादि गति दोकों कही है. आत्मप्राप्तिवालोंकों और परमात्मप्राप्तिवालोंको वा लीये कहे उपाय बराबर करे सो वो पावे. वो फीर कोनभी विद्या करके, वा लीये नियम नहि. जो बराबर उपाय करे सो पावे. ऐसे बहुत श्रुति स्मृति वचन है.

फीर एक अगत्यका प्रकरण हैकि बृहदारण्यकमें अक्षरकों " अस्थूल मानण्व हृस्वम् " आदि कहा है. और आथर्वणमेंभी कहा है—यह गुण यह " धी " सर्वत्र रखनी. यह अदृश्यत्वादि गुणोंको सर्वत्र उपसंहार करने वा नहि !

(अक्षरध्यधिकरणम्]

सूत्र—अक्षरधियांत्ववरोधः सामान्य तद्भावा भ्यामौप सदवत्तदुक्तम्. ॥ ३३ ॥

अर्थ—अक्षर बुद्धि करके तो अवरोध सामान्य वो भावतें औप सदवत् वो कहा है.

विवेचन—" जाडा नहि—पतला नहि " इत्यादि अक्षर संबंधी " धी " ज्ञान—अनुसंधानका सर्व ब्रह्मविद्यामें " अवरोध " संग्रह है. वो भाव सामान्य सर्व उपासनमें होनांहि चाहीये. क्योंकि जैसे सत्य-ज्ञान अनंत आनंद यह स्वरुप निरुपक धर्मगुण है. वैसेहि यहभी है. जैसे वो " कल्याणैकतानता " तैसे यह " अखिल हेय प्रत्यनिकता " दीखाते है. वो उभय परमात्माके असाधारण लक्षण है. वैसे सर्व गंध. सर्वरस—आदि लेने क्या ?

सूत्र—॥ इयदामननात् ॥ ३४ ॥

अर्थ—इतनं कहे हैं.

विवेचन—जो स्वरुपके निरुपक हैं. और तो नहि कहे वहांहि सर्वत्र नहि. यह भी एक बडीवात नीकी भयी.

एक नियम यह भी वेदांतकों समझनेमें लक्षमें रखनें सरीख हैं कि कहीं परमात्माका स्वरुप समुझावनेके प्रसंगमें वाके शरीरकों भी परमात्मा कहीदेते हैं. शरीरीके भावसें वो कहेते हैं ऐसा प्रकरणसें सिद्ध होता है. जीतनें शरीर शक्ति वो सर्व वो है करके कहीके अंत वो सर्व शक्ति शरीरवाला ऐसा सुस्पष्ट कर देते हैं. परंतु एकहि वचन लीये तो संशय रहेता है. ऐसा एक दृष्टांत यहां अत्र देके यह नियम भी समुझा देते हैं.

वृहदारण्यकमें जो साक्षात ब्रह्म—जो आत्मा सर्वांतर वो मोंको कहो—ऐसा प्रश्न होके " जो प्राण करके प्राण लेता है सो आत्मा " करके कहा. वाको " सर्वांतर " वो भूत ग्रामोंके अंतर जो है कहे तो वो जीवकोंहि कहा ठहरे फीर वाकों " जो दृष्टीका विषय नहि—दृष्टीतें देखता नहि ऐसा भी कहा " वाको सर्वांतर कहीके अन्यकों "आर्त्त" कह दीया तो प्रथम तो " आत्मा " जीव—और फीर तो, परमात्मा है वो दो एक कैसे समुझे जावे! और नहि तो वो विद्या एकभी न भयी. यह प्रकरणको लेके सूत्र है.

(अंतरत्वाधिकरणम्)

सूत्र—अंतराभूतग्रामवत्स्वात्मानोऽन्यथा भेदा-
नुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशवत् ॥ ३५ ॥

अर्थ—भूत ग्रामवाला अंतर स्वात्मा; अन्यथा भेद अघटीत है ऐसा कहे तो "

विवेचन—भूत ग्रामोंवाला जो भीतर सर्वभूतोंका " सर्वांतर "

सो तो प्रत्यगात्माहि होगा. ऐसा न हो तो अन्यथा जो प्राणते प्राण लेता है यह भेद नहि उचित है. ऐसा नहि. यहां दोनों परमात्मा विषयीक है. प्रथम तो प्रश्नकों देखें. साक्षात् ब्रह्म मांगते हैं. फीर परमात्माके लीये आत्म शब्द बहुत जगे प्रयोग करते हैं. जब जीव सो जाता है तब परमात्मा आपहि वाका काम वाके लीये करता भी है. वो शिष्य नहि समझा, प्रत्यगात्माकोंहि वो कामका कर्त्ता समझा. तब फीर खोलके कहा-स्पष्टतर कीया है. सो एककेहि लीयें है. जैसे सद्विद्यामें "तत्वमसि" कीतनी वेर कीतने प्रकार कहीके समझाया है. प्रश्न उत्तर एक लेतें है वो उपदेशवत् यह भी समझनां.

ऐसा रहे तोभी विद्याभेद तो लेनीहि चाहीये. एकमें प्राणी प्राण न हेतु है. अन्य वचन-अशनाया आदि उपास्य गुण भेद है. ऐसा कहे तो.

सूत्र—व्यतिहारो विशिंषंति हीतरवत् ॥३६॥

अर्थ—ईतर सरीख यहांभी एकत्र करनां.

विवेचन—सर्वांतरत्व विशिष्ट ब्रह्मकों कहनां है. सो उभयमें एकहि बात है. भेद दीखे सो एककेहि लीये हैं. जैसे सद्विद्यामें वोहि ब्रह्म वोहि कहे तो सबकों एकत्र करते हैं तैसे यहांभी.

सूत्र—"सैव हि सत्यादयः". ॥ ३७ ॥

अर्थ—वो सत् शब्द आदिवाच्य है.

विवेचन—जो फीर फीरके प्रश्नके उत्तरमें कहा है वोहि उपास्य है. "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा" ऐसा कहे गये तो प्रथम जो सत-आदि कहा वोहि सर्वत्र समझते हैं-तैसे यहांभी समझनां. यातें यहांभी विद्या एक है.

" छांदोग्यमें " यह ब्रह्मपुर आकाश पुंडरिक घरमें है. वामें जो है सो ढुंढनां इत्यादि. और वाजसनेयकमें फीर " वो महान् अज आत्मा जो विज्ञानमय प्राणमें जो अंतर हृदय आकाश है वामें सो रहा है." सर्वका वशी सर्वकाहि ज्ञन-ऐसे गुण-यहां वहां भिन्न होनेतें वो विद्याभेद है क्या ?

[कामाद्यधिकरणम्]

सूत्र—कामादीतरत्रतत्र चायतनादिभ्यः ॥३८॥

अर्थ—काम आदि यहां वहां और आयतनादितें.

विवेचन—दोनोमें कामादि गुण वोहि है. और जो विशेषण है उनका आयतनभी एक है. आदि कहे तो सेतु विधरण आदिभी वोहि कहे हैं. ऐसे गुणविशिष्ट परमात्माका हृदयमें उपासना करनां कहा है. उपास्य एक है. स्थान एक है. विद्या एक है.

नेतिनेति कहीके वाजसनेयकमें वाका लोप कहा है. वो गुण अपरमार्थिक है, ऐसा कहे तो.

सूत्र—आदरादलोपः ॥ ३९ ॥

अर्थ—आदर होनेतें अलोप है.

विवेचन—मोक्षार्थिकों उपासना करना चाहीये. वामें गुणोंका उपसंहार करनां कहेते ऐकमें नहो सो अन्यतेंभी मीलानां सर्व शाखासें लानां ऐसा कहेते आये हैं. वहां " अलोप " कैसा—" आदर है " श्रुति गुणगान करनेकोहि है. और वैसी उपासना कीये तो वो अष्टगुणवाला उपास्यभी होता है. सो तद्यइह आत्मान मनुविद्य यह आत्माकों जानके जो जाता है " फीर औरभी स्पष्ट वचन हैकि याके सत्य-

कामोंकोंभी जानके जाता है " तत्क्रतु न्यायतें वो गुणविशिष्टकीही तो उपासना है. उनका लोपतो फलकाभी लोपहि होवें. फीर सर्वस्यवशी सर्वस्येशान " एप सर्वेश्वर एप भूताधिपति एप भूतपाल " ऐसा घोप कर रही है. वातें वाकातो श्रुतिकों आदर यहांहि दीख रहा है. " तस्मिन्काम समाहिताः " " वामें कल्याणगुण रहे है " सत्य कामत्वादि है तवतो सत्का इक्षण सफल होता है. वैसेहि बंधमोक्ष स्थिति हेतु होता है. यातें मोक्षभी है.

सूत्र—उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ॥ ४० ॥

अर्थ—उपस्थितमें वो वचन होनेतें.

विवेचन—" उपस्थिति " उपस्थान ब्रह्मकों पावनां " परंज्योतिरुप संपद्यः " करके वहां वचनभी है. " स उत्तम पुरुप जक्षन् क्रीडन्" आदि कामचारी होता है. करके वाका वडा वैभव—वोभी अष्ट गुणयुक्त होता है—ऐसा दीखाया है—वातें मुक्तिका पुरा फल पावनेंको परब्रह्मको पुरा वाके दिव्य गुणयुक्तहि उपासना चाहीये ऐसा सिद्ध है. वातें दोनों जगे कहे गुणोंका उपसंहार करनां. वो विद्या एकहि है. उपास्य फलभी एक, अधिकारी एक है.

कर्मके अंगमें ॐ गायके जो उद्गीथ विद्या करनेमें आती है वो क्रतुमें नियम करके करनीहि चाहीये क्या ?

(तन्निर्धारणानियमाधिकरणम्)

सूत्र—तंनिर्द्धारणा नियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्य प्रतिबंधः फलम् ॥ ४१ ॥

अर्थ—प्रथगृहि अप्रतिबंध फल—वाके निश्चयमें अनियम वो देख पडता है.

विवेचन—पृथक् अप्रतिबंध फल–यह साक्षात ब्रह्म विद्या नहि–परंतु उपनिषदोंमें कही है वो करनीही चाहीये. ऐसा–वहांहि नहि कहा. "करे चाहे न करे" जो करे तो वाका पृथक् फल ये है कि कर्म विपर्यतर हो–वो कर्मके क्रतुके फलके जो प्रतिबंध हो सो दूर हो जावे. ऐसा वाका पृथक् फल प्रतिबंध दूर करनां ये है.

दहर विद्यामें आत्मा और वाके सत्य कामोंका उपासन कहा है तो गुणोंकाभी चिंतवन वार वार करनांकि नहि गुणीकाहि ?

(प्रदानाधिकरणम्)

सूत्र—प्रदानवदेव तदुक्तम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—प्रदान सरीखहि–वो कहा है.

विवेचन—वारंवार कीया करनां गुण विशिष्टकाहि अनुसंधान करनां. जैसे प्रदानमें इन्द्रके साथ राजाधिराजाय इन्द्राय स्वराज्ञे" इत्यादि कहेनां पडता है तैसे यह मिमांसाका दृष्टांत है. यज्ञका मंत्र है.

तैतरीयक दहर विद्याके पीछे पढा जाता है कि "सहस्त्र शीर्षं देवं विश्वाख्यं विश्व संभवम् विश्वं नारायणं देव मक्षरं परमं प्रभुः" ऐसा लेके सोऽक्षरः परम स्वराट् पर्यंत वो वोहि विद्याका उपास्य है कि सर्व विद्याका.

(लिंगभूयस्त्वाधिकरणम्)

सूत्र—लिंगभूयस्त्वाद्धि बलीयस्तदपि ॥ ४३ ॥

अर्थ—बहुत लिंग होनेंतें वोहि बलीय वोभी.

विवेचन—सर्व वेदांत वेद्य उपास्यके बहुत लिंग हैं. अक्षर शिव

शंभु परब्रह्म परंज्योति परतत्त्व परमात्माके वो शब्द सर्व फीर कोनके लीये हैं? ऐसा असाधारण एक खास नारायण शब्दतें समुझाया है कि वो सर्व वाकेहि नाम हैं. जो वहुत लिंग सो वोहि यह निश्चय प्रकरणतेंभी वो बलवत्तर है. प्रथम श्रुति, फीर लिंग, फीर वाक्य, फीर प्रकरण तो है. वातें लिंग आये तो निश्चय होनांहि है. वोभी कैसे वचन स्पष्ट हैं. सर्व वेदांतका श्रुतिहि एक नाममें तात्पर्य लाती है.

" अंतर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥

यह असाधारण फीर वो " सब्रह्म स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षर परमः स्वराड् " यह सर्व परम ब्रह्मके वैदिक नाम सो वो नारायणके हैं; ऐसा निर्णीत कीया है. अर्थात् उपास्य वेदांत वेद्य वोहि है. यामें सर्वकी संमति है. यह नामतें कोइ वैदिकका अनादर नहि यज्ञ, सूर्य, वेद, नारायण, " सन्यासी भी " नारायण " नारायणतें सवकुछ हि कहेजाते है श्रुतिहि कहती है ब्रह्माते लेके आरंभ सो वातें अंत प्रलयमें वोहि श्रीपति हि रहता है. यह सिद्ध है.

जैसे क्रियामय क्रतु यज्ञ, तैसे मानसिक क्रतु, जैसे द्रव्यमय और मानसिक आराधन होता है वैसे उपनिषद्में " चिताग्नि " क्रतु है. वाका प्रकरण अब उठाते हैं.

वृहदारण्यक अग्निरहस्यमें " मनश्चिता " आदि अग्नि कहे है वो विद्यारुप है, वो क्रियारूप!

पूर्वपक्ष—क्रियारूप है. क्योंकि नामहि क्रतु.

(पूर्वविकल्पाधिकरणम्)

सूत्र—॥ पूर्व विकल्पः प्रकरणात् स्यात् क्रिया-मानसवत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—पूर्वसें विकल्प प्रकरणतें होता. क्रिया मानस सरीख.

विवेचन—प्रमाणमें सर्वमें प्रथम श्रुति है. फीर लिंग वाक्य सार प्रकरण तो अंतमें है. वाते प्रकरणतें श्रुतिका कहेनां बलवान है. वो "विद्या चित" ऐसा वचन है. वहां और वचनोंतें स्पष्टतर कीया है. जातें विद्यामय क्रतुहि ठहरता है.

जो कहाकि विधि फल है वातें क्रियामय होनां संभवित है वाका उत्तर.

सूत्र—॥ अनुबंधादिभ्य प्रज्ञांतर प्रथक्त्ववत् दृष्टश्च तदुक्तम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनुबंध आदितें प्रज्ञांतर प्रथकत्व सरीख देखा और कहा है.

विवेचन—इष्टक चिताके क्रीयामय क्रतुतें यह विद्यामय क्रतुके अनुबंध प्रथक् है. वाके वाके हेतु भिन्न होनेतें यज्ञमें जैसे गृहस्तोत्र शस्त्र वैसे याका सर्व मनतेंहि है. वो वातें भिन्न प्रकारहि ठहरा. जैसे प्रज्ञांतर कहे तो दहरविद्यादितें क्रियामय क्रतु प्रथक् श्रुतितें देख पडता है तैसे यह भी प्रथक् है.

फीर जो अनुप्रवेशका कहाकी क्रियामयमें अनुप्रवेश होगा.

सूत्र—न सामान्यादप्युपलब्धे मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ॥ ४९ ॥

अर्थ—नहि सामान्यतेंभी उपलब्धि मृत्युसरीख नहि लोकापत्ति.

विवेचन—जैसे श्रुतिमें वो यह मृत्यु जो नह मंडलमें पुरुष है. इत्यादिमें संहर्तृत्व आदि सामान्य मात्र है. वहां मंडल पुरुषकों मृत्यु सो वो लोकप्राप्ति नहि होती है. तैसे यहांभी मनश्चिताग्नि कहेनां सो

विवेचन—याका पूर्वप्रकरण देखे तो ऐसा विकल्प होता है कि जैसा मानस कहा है. वैसी याकी क्रिया भी होनी चाहीये तो यह क्रियामयहि समझनां वार दिनके कर्ममें दशमेदिन करनेका कर्म " मानस" नाम क्रियामय क्रतुमें है. वो विद्यामय होके क्रियामयका अंग है तैसे और भी हेतुः

सूत्र—॥ अति देशाच्च ॥ ४५ ॥

अर्थ—अति देशते–इष्टक चिता सरीख.

विवेचन—यह क्रतुका भी सब व्यापार हो और याके अंगभूत मन चित्तादि ऐसे क्रियामय क्रतुके अनुप्रवेश करके क्रियारूप हो वैसा नहि है. समाधान.

सूत्र—विद्यैव तु निरधारणाद्दर्शना च्च ॥ ४६ ॥

अर्थ—विद्याहि है निश्चय करनेतें (श्रुतिमें) दर्शनतें.

विवेचन—श्रुतिमें वाणी, मन, चक्षु आदिका व्यापार इष्टक चिता सरीख इष्टिकातें नहि किंतु मनतें करनेका कहा है. और " यह विद्या है " करके वचनभी स्पष्ट है फीर कहेते हैं मन करकेहि अध्ययन मन करकेहि " हवन–स्तवन " " मशंशन " आदि भी स्पष्ट वचन हैं वातें वो क्रियामय क्रतु नहि है.

यहां विधि और फलके वचन है सो क्रतुमें होते है. वातें विद्या नहि होगी. प्रकरण देखे तो क्रियामय समझा जाता है. ऐसा कहे तो वाका उत्तर.

सूत्र—श्रुत्यादि बलीयस्त्वा च्च न बाधः ॥४७॥

अर्थ—श्रुति आदि बलवान होनेतें बाध नहि है.

विवेचन—प्रमाणमें सर्वमें प्रथम श्रुति है. फीर लिंग वाक्य सार प्रकरण तो अंतमें है. वाते प्रकरणतें श्रुतिका कहेनां बलवान है. वो "विद्या चित" ऐसा वचन है. वहां और वचनोंतें स्पष्टतर कीया है. जातें विद्यामय क्रतुहि ठहरता है.

जो कहाकि विधि फल है यातें क्रियामय होनां संभवित है याका उत्तर.

सूत्र—॥ अनुबंधादिभ्य प्रज्ञांतर प्रथक्त्ववत् दृष्टश्च तदुक्तम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनुबंध आदितें प्रज्ञांतर प्रथकत्व सरीख देखा और कहा है.

विवेचन—इष्टक चिताके क्रीयामय क्रतुतें यह विद्यामय क्रतुके अनुबंध प्रथक् है. वाके वाके हेतु भिन्न होनेतें यज्ञमें जैसे ग्रहस्तोत्र शस्त्र वैसे याका सर्व मनतेंहि है. वो यातें भिन्न प्रकारहि ठहरा. जैसे प्रज्ञांतर कहे तो दहरविद्यादितें क्रियामय क्रतु प्रथक् श्रुतितें देख पडता है तैसे यह भी प्रथक् है.

फीर जो अनुप्रवेशका कहाकी क्रियामयमें अनुप्रवेश होगा.

सूत्र—न सामान्यादप्युपलब्धे मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ॥ ४९ ॥

अर्थ—नहि सामान्यतेंभी उपलब्धि मृत्युसरीख नहि लोकापत्ति.

विवेचन—जैसे श्रुतिमें वो यह मृत्यु जो यह मंडलमें पुरुष है. इत्यादिमें संहर्तृत्व आदि सामान्य मात्र है. वहां मंडल पुरुषकों मृत्यु सो वो लोकप्राप्ति नहि होती है. तैसे यहांभी मनश्चिताग्नि कहेनां सो

विवेचन—याका पूर्वप्रकरण देखे तो ऐसा विकल्प होता है कि जैसा मानस कहा है. वैसी याकी क्रिया भी होनी चाहीये तो यह क्रियामयहि समझनां वार दिनके कर्ममें दशमेदिन करनेका कर्म " मानस" नाम क्रियामय क्रतुमें है. वो विद्यामय होके क्रियामयका अंग है तैसे और भी हेतुः

सूत्र—॥ अति देशाच्च ॥ ४५ ॥

अर्थ—अति देशते–इष्टक चिता सरीख.

विवेचन—यह क्रतुका भी सब व्यापार हो और वाके अंगभूत मन चित्तादि ऐसे क्रियामय क्रतुके अनुप्रवेश करके क्रियारुप हो वैसा नहि है. समाधान.

सूत्र—विद्यैव तु निरधारणाद्दर्शना च्च ॥ ४६ ॥

अर्थ—विद्याहि है निश्चय करनेतें (श्रुतिमें) दर्शनतें.

विवेचन—श्रुतिमें वाणी, मन, चक्षु आदिका व्यापार इष्टक चिता सरीख इष्टिकातें नहि किंतु मनतें करनेका कहा है. और " यह विद्या है " करके वचनभी स्पष्ट है फीर कहेते हैं मन करकेहि अध्ययन मन करकेहि " हवन–स्तवन " " प्रशंशन " आदि भी स्पष्ट वचन हैं वातें वो क्रियामय क्रतु नहि है.

यहां विधि और फलके वचन है सो क्रतुमें होते है. वातें विद्या नहि होगी. प्रकरण देखे तो क्रियामय समझा जाता है. ऐसा कहे तो वाका उत्तर.

सूत्र—श्रुत्यादि वलीयस्त्वा च्च न वाधः ॥ ४७ ॥

अर्थ—श्रुति आदि वलवान होनेतें वाध नहि है.

विवेचन—प्रमाणमें सर्वमें प्रथम श्रुति है. फीर लिंग वाक्य सार प्रकरण तो अंतमें है. वाते प्रकरणतें श्रुतिका कहेनां बलवान है. वो " विद्या चित " ऐसा वचन है. वहां और वचनोंतें स्पष्टतर कीया है. जातें विद्यामय क्रतुहि ठहरता है.

जो कहाकि विधि फल है वातें क्रियामय होनां संभवित है वाका उत्तर.

सूत्र—॥ अनुबंधादिभ्य प्रज्ञांतर प्रथक्त्ववत् दृष्टश्च तदुक्तम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनुबंध आदितें प्रज्ञांतर प्रथकत्व सरीख देखा और कहा है.

विवेचन—इष्टक चिताके क्रीयामय क्रतुतें यह विद्यामय क्रतुके अनुबंध प्रथक् है. वाके वाके हेतु भिन्न होनेतें यज्ञमें जैसे गृहस्तोत्र शस्त्र वैसे याका सर्व मनतेंहि है. वो वातें भिन्न प्रकारहि ठहरा. जैसे प्रज्ञांतर कहे तो दहरविद्यादितें क्रियामय क्रतु प्रथक् श्रुतितें देख पडता है तैसे यह भी प्रथक् है.

फीर जो अनुप्रवेशका कहाकी क्रियामयमें अनुप्रवेश होगा.

सूत्र—न सामान्यादप्युपलब्धे मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ॥ ४९ ॥

अर्थ—नहि सामान्यतेंभी उपलब्धि मृत्युसरीख नहि लोकापत्ति.

विवेचन—जैसे श्रुतिमें वो यह मृत्यु जो वह मंडलमें पुरुष है. इत्यादिमें संहर्तृत्व आदि सामान्य मात्र है. वहां मंडल पुरुषको मृत्यु सो वो लोकप्राप्ति नहि होती है. तैसे यहांभी मनश्चिताग्नि कहेनां सो

ईटकी. चिताग्नि बनावनांहि नहि. जैसे वामें इष्टक चिताग्निद्वारा फल तैसे यामें मनचिताग्निद्वारा फल बस ये वार्त्ता है.

सूत्र—परेणच—शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वा- त्वनुवंधः ॥ ५० ॥

अर्थ—" परेण " ब्राह्मण करके " शब्दस्य " यह मनश्चितादि कथनवाले शब्द" वो "ताद्विध्य" वो विध होनां सो विद्या कहेनेकोहि है—वाका फलभी अन्य वाके अंग वहुत होनेतें अनुवंध है.

विवेचन—परंतु वो उपर कहे प्रकार मानसिक है अर्थात् यह " विद्या " है " क्रतु " नहि है.

दो प्रकार मूल है. आत्मप्राप्ति और परमात्मप्राप्ति वा लीये उपासनाभी आत्माकी और परमात्माकी होती है परमात्मा जाका शरीरी है. ऐसे आत्माकी. सो आत्माकी येहि " यथाक्रतु " जैसा यहां उपासे वैसा वहां पावे. परंतु आत्मातो यहां शरीरवालाहि है. तो एक मत ऐसा है कि वाको जैसा अभी है वैसा जान मानके उपासना करनी ! जो आत्माकी उपासना करनां चहते है वो शरीर विशिष्टको उपासे क्या ?

(शरीरेभावाधिकरणम्)

सूत्र—एक आत्मनः शरीरे भावात् ॥ ५१ ॥

अर्थ—एक आत्माका शरीरमें " भाव होनेतें "

विवेचन—यह एकमत हैकि जैसा यह [illegible] कर्त्ता भोक्ता दीखता है. वैसा वाका अनुसंधान करनां. शर [illegible] है. वाकी जो खुवी अपहत पाप्मत्वादि सो तो [illegible] है. वो

फलानुभव दशारुप है. साधनमें अनुष्ठानदशामें वाका रुप जैसा हो वैसा अनुसंधान करनां. यह मत ठीक नहि.

सूत्र—व्यतिरेकस्तद्भावभावित्वात् नतूपलब्धिवत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—नहि दुसरी प्रकार यातें विरुद्ध वो भाव भावित होनेंतें उपलब्धिवत्.

विवेचन—संसारदशातें मोक्षदशाका जो " व्यतिरेक " और प्रकारत्व है. वातें विरुद्ध यह मलयुक्त है वो विशुद्ध है सो वाहिका अनुसंधान करनां. अपहत पाप्मत्वादिककाहि. क्योंकि जैसा भाव रखेंगे. वैसा स्वभाव स्वरुप हमारा होगा. " यथाक्रतु " न्यायतें जैसेको उपासे वैसे होते है. वातें पूर्व कहा वैसा नहि अनुसंधान करनां. उपलब्धि कहेतो " ब्रह्मकी उपलब्धि " जैसे ब्रह्मभाव भावितको होती है. वैसे यामेंभी शुद्ध भाव भावितकों शुद्धि होती है.

उपायके प्रकरणमें यहभी एक आवश्यक भाग रहा. क्योंकि संसारतें छुटे और परमात्माको न पावे बीचमें मात्र मुक्ति बनी रहे यहभी एक फल है. " मोक्ष " शब्द वा लीयेभी है. तबहि कइ प्रेमी भक्तज्ञानी " हमकों मोक्ष नहि चाहीये " कहेते हैं. स्मृति पुराणमेंभी ऐसे वचन हैं. वाकों चोथा पुरुषार्थ कहेते हैं. परंतु सत्य पूर्णफल तो परमात्मप्राप्ति सो पांचवा परमपुरुषार्थ है. वो विद्यासें प्राप्त होता है. वो विद्यासो तैलधारसरीख वाका अनुसंधान बना रहेनां सो है. वो अभ्यासतें, क्रमतें, बना रहेता है. वाके अनेक नाम–ध्यान, अनुसंधान वेदन, है. वो प्रेम रुपापन्नहि होता है. वातें प्रीति भक्तिभी वाको कही जाती है. वोहि फल चाहीके हमकों तो उपाय करनां. एकहि उपायनें चांदी सोनां दोनों मील सकते होतो सोनांहि क्यों न चहानां ! यह

अंतलक्षमें रखे मुक्ति–अपुनरावृत्ति आनंद यह सर्व आत्मप्राप्तिवालेको है. परंतु वो अणुका अनुभव और यह परमात्मप्राप्ती–सो विभुका अनुभव बिंदु समुद्रका तारतम्य है. यह कभी नहि भूलनां. क्या उपाय करना ? जो ठीक दीखे सो वाके उचित गुणोंके उपसंहार करके परंतु वोहि फलके लीये करनां–यह वेदांतका अंत निर्णय है. तबहि ब्रह्मकी जिज्ञासा–सो जगतकारणका करनी. वो शास्त्ररितिसें वाको ब्रह्म करके फल करके संबंध है. येहि चतुःसूत्री है तो वोहि फल होनां मुख्य कही चूके अब यह उपायका सामान्य नाम–जो ब्रह्मविद्या कहेते है, वामें फीर एक उद्गीथविद्या है. जा लीये कुछ पूर्व कहा है.

प्रणवतें वेद, वेदका वो बीज है. वा विना तो कोईको चलताहि नहि. फीर वाकों गान करके, स्वरभेद करके, उद्गीथके भेद है. प्रणव गानका नामहि उद्गीथ है. वो फीर एक विद्या है. वाका फल है. वो क्रतुके अंगमें–कर्मोंके अंगमें कीजाती है. यद्यपि वो है "गान" अमुक अर्थके अनुसंधानपूर्वक "गान" वातें विद्या कही जाती है. परंतु वो भी उपायकोटीमें है. वातें वा लीये स्फूट करते हैं कि वो उद्गीथमें पांच विध है. साम है वो सर्व शाखामें नहि जो पांच विध उद्गीथ सो स्वरभेद करके है जैसे भिन्न भिन्न राग हो तो वो वहां वहांहि गावे. वा सर्वत्र.

(अंगावबद्धाधिकरणम्)

सूत्र—॥ अंगावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम् ॥ ५३ ॥

अर्थ—अंग अवबद्ध तो शाखामेंहि नहि. प्रतिवेदमें.

विवेचन—सर्व शाखामें क्रतु एक होता है. शाखा शाखाके

लीये जैसे यज्ञ भिन्न नहि. वैसे यह क्रतुका अंग है. तो जहां क्रतु वहां वो होसके और दृष्टांत.

सूत्र—मंत्रादिवद्वा ऽविरोधः ॥ ५४ ॥

अर्थ—वा मंत्रादि सरीख.

विवेचन—अथवा मंत्रका दृष्टांत देखीयेंकि सर्व यज्ञमें प्रयोग होता है. तैसे याका भी सर्व क्रतुमें उपयोग हो सक्ता है.

बीचमें फीर एक वैश्वानरविद्याका खुलासा कहते हैं. वैश्वानर परमात्मा त्रिलोकका शरीरी करके उपास्य है. स्वर्ग. वायु—आकाश—पृथ्वी—आदिकों शरीरके अवयव कहे है. वो व्यस्त उपासना है. वा समस्त—एक व्यक्तिमें—वा—त्रिलोकमें—पिंड ब्रह्मांडका एक न्यायभी हो सकता है. पिंडमेंभी सर्व भावना हो सके है.

(भूमज्यायस्त्वाधिकरणम्)

सूत्र—॥ भूम्नः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा हि दर्शयति ॥ ५५ ॥

अर्थ—समस्तका क्रतु सरीख वडापन होनेतें. वैसा दीखाते है.

विवेचन—जैसे क्रतु कहे तो अष्ट कपाल होता है. तैसा यह पूर्ण विपुल परमात्माका पुरा उपासन है. सर्व जगत शरीर—और वैसेहि उपासकको फलभी "सर्वका अनुभव" ऐसी "भूम" विपुल बात है—छोटी बात छोटे रुपका उपासना नहि है.

अब यह सर्व उपाय जो "ब्रह्मविद्या" आपहि है, जो वो वो उपनिषदोंमें कहा है. उनका पुरा स्वरुप, अनुष्ठान, समझनां गुरुगम्य है. परंतु उनमें जो संशय उठे सो निवर्त करके, उनपें संपूर्ण श्रद्धा जमाइ, उनकी पूर्ण प्रमाणिकता दिखाई, वामें परमात्माका उपासन, और वो वाका गुण विशिष्ट चिंतवन, कहीके "ब्रह्मविद्या" सो क्या?

ऐसा वाका सामान्य स्वरुपभी दीखाके वामें जो जो परस्पर विरोध दीखे ऐसा है–उनकाभी परिहार कीया–तात्पर्य–उपायका स्वरुप–सामान्य संपूर्ण समझाया–फीर वो कोन उपास्यके लीये है. वो श्रीमन्नारायण है. यहभी सुस्पष्ट कीया–वाके अनुसंधानमें कोन गुन तो होनेंहि चाहीये वोभी अखिल हेय प्रत्यनिक–और कल्याणैकतान–उभय लिंग अक्षरत्व–और आनंदमयादिक–सर्वत्र लेनें–यहभी कह दीया–वो करनेवालेकी गति–उनके कर्म शेष–व्यवस्था विषयकीभी शंकाओंका निरसन कर दीया–ऐसा एकत्र उपायका मुख्य बोध तो–देहि दीया–जैसा तत्वका दीया रहा–वामें अब वो जगतकारण श्रीमन्नारायणका कोन रुप उपासें! यह ज्यों खास नहि कहा. त्यों या लिये कोन खास विद्या उपासे–यहभी कोइ प्रतिबंध नहि होनेंतें नहि कहते हैं. जैसे उपास्यके पर, व्युह विभव, अंतर्यामी, अर्चा–करके भेदतें अनेक रुप है वैसे यह उपायके भी अनेकरुप है. अनंत शास्त्र तवहि है. सर्व रुपमेंतें कोनभी एक रुपको पाये तो वो वोहि है. वैसे सर्व उपायमेंतें कोन एकभी कीये तो वो बस है. सागरमें जानेको चहनेवाला कोनभी तटपर जावे, त्यों कोनभी नदी द्वारा जावे, वो एककोंहि पावनेकों सर्व सहायक है. वैसे यहं ब्रह्मविद्या भी एकहि फल–मोक्ष–परमपुरुषार्थ–परमात्मप्राप्ति देनेवाली है. जैसे सद्विद्या, भूम, दहर, उपकोशल, शांडिल्य, वैश्वानर; आनंदमय, अक्षरविद्या; इत्यादि–वो कोइ एक शाखामें है. और कोइ अनेक शाखामे है. वो सर्वतें वेद्य एक है तो क्या वो सर्व विद्या भी एक है? ऐसा नहि.

[शब्दादिभेदाधिकरणम्]

सूत्र—॥ नाना शब्दादि भेदात् ॥ ५६ ॥

अर्थ—नाना शब्दादि भेदतें.

विवेचन—नाम गुण क्रियाके अनुसारहि " नाना " होते हैं. वो विद्या सर्व वैसे नाना हिहै. फीर फलमें क्यों ?

(विकल्पाधिकरणम्)

सूत्र—॥ विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ॥ ५७ ॥

अर्थ—विकल्प अविशिष्ट फलतें.

विवेचन—कोइभी ब्रह्मविद्याका उपासन कीये तो परब्रह्मकी प्राप्ति वो परम फलमें तारतम्य नहि है. वो बहु विद्या उपासे तो बहु. और एक उपासे तो एक गुन फल. ऐसा परब्रह्मके विषयमें नहि होता है. छोटे बडे जलपूरीत घटको पाये तो जलके संग्रहमें तारतम्य है. महासागरकों पहुंच गये फीर तारतम्य नहि. वो सकाम फलमें है की एक करे दो करे. बहुत कर्म करे–उतनें फल वैसे मीले. घोडे, हाथी, गृह, राज्य, निमित्त भिन्न भिन्न–दान–तप–होते हैं. बहुत कीये तो बहुत मीले. छोटे बडे इत्यादि.

सूत्र–॥ काम्यास्तु यथाकामंसमुच्चीयेरन्न वा पूर्वहेत्वभावात् ॥ ५८ ॥

अर्थ—काम्य तो जैसी कामना उतने भेली हो. पूर्वहेतु न होनेंतें.

विवेचन—कामना तो जीतनां कीये उतनी पूरी होती है. वो फल क्रियाके अनुसार परिमितता है. यह बात "हेतु" यामें है नहि. यह तो सर्व फलप्रद है, और अनंत है, एक मीले. सर्व मीला. एकहि विद्यातें मीलताभी है. यह सिद्धांत है.

अब उपायका अंग जो " उद्गीथ "–वा लीये बहुत कहा है प-

रंतु अंत शेप कही देते है वो हे क्रतुके अंगमें तो सर्व क्रतुमें करनां कि चहे वहां होइ सके ! पूर्वपक्ष.

[यथाश्रयभावाधिकरणम्]

सूत्र—॥ अंगेषु यथाश्रयभावः ॥ ५९ ॥

अर्थ—अंगमें जैसा आश्रयभाव.

विवेचन—वो क्रतुका अंग है. तो करनांहि चाहीये. छीन्न अंग क्रतुफल क्या देवे !

सूत्र—शिष्टेश्च ॥ ६० ॥

अर्थ—शासन है.

विवेचन—"उद्गीथ मुपासीत" ऐसी विधि है. आज्ञा है. तो पालन करनीहि चाहीये.

सूत्र—समाहारात् ॥ ६१ ॥

अर्थ—समाहारतें.

विवेचन—उद्गीथका समाहार करनां. ऐसा वामें नियम है. वो नहि वोले नहि जाने तो हानीभी कहा है.

सूत्र—गुण साधारण्य श्रुतेश्च ॥ ६२ ॥

अर्थ—गुण साधारण श्रुति कहती है.

विवेचन—ॐ कहेनां-सुननां-सुनावनां-प्रणव साथहि सर्वत्र उपासन होता है. वातें प्रणवसरीख उद्गीथ विद्याभी नियम करके उपासनी चाहीये. ऐसा पूर्वपक्ष भया. अब समाधान.

सूत्र—न वा तत्सहभावाश्रुतेः ॥ ६३ ॥

अर्थ—अथवा ऐसा नहि. वाका सहभाव श्रुति नहि कहती है.

विवेचन—अंगभावहि तो सहभाव होवे. यहतो जो करेगा तो वीर्यवत्तर होगा. ऐसा ऐच्छिक श्रुतिहि कहती है. क्रतुका फलतो वो न कीयेतोभी होताहि है. यातें " वीर्यवत्तरत्व " प्रतिबंध निवृत्तिशीघ्र-उतनां विशेप लाभ खास फल है. वो न चाहे सो न करे.

सूत्र—दर्शनाच्च ॥ ६४ ॥

अर्थ—देखते हैं.

विवेचन—श्रुतिमें कही चूकेकि यह ऐच्छिक है. जो जो पूर्व कहे वो सर्व विधि, समाहार, क्रतु, अंग, जो वो कीयेतो करनेका है. क्योंकि वो विद्या है. यातें वा लीये विधि आदि सर्व होनांहि चाहीये. परंतु करनीहि चाहीये. ऐसा नहि. जो करनीहि चाहीये, सो तो ब्रह्म-विद्या जाका फल अनंत परमब्रह्म श्रीमन्नारायण वो फीर कोइभी एक हो–बस है–इति है. वैसे यहां

तृतीयाध्याय तृतीयपादका इति.



श्रीमते रामानुजायनमः ॥

अथ तृतीयोध्यायः–चतुर्थपादः

उपायके विषयमें मुख्य उपाय विद्याहि है. यह कहा–परंतु वामें बहुत समझनेका है. वामेंतें आवश्यक कहेते हैं. जैसे पहिले–पुरुषार्थका उपाय विद्याहि है. वा कर्म वो सुस्थिर करते हैं. प्रथम निर्णय कही देते हैं.

(पुरुषा धिकरणम्)

सूत्र—पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ॥१॥

अर्थ—पुरुषार्थ यातें शब्दतें बादरायण.

विवेचन—धर्म अर्थ कामतें मीलानां सो सत्यपुरुषार्थ है. पुरुषकों मीलाने सरीख अर्थ वो है सो यातें कहे तो विद्यातें–प्रमाणमें शब्द–वेदांत कहेते हैं. यह बादरायण स्वामीका आपका सिद्धांत है. और श्रुतिमें "ब्रह्मविदाप्नोति परम्"–"ब्रह्मवित् परम पावता है. ऐसा परम फल ब्रह्मके वेदनतें कहे तो ब्रह्मविद्यातेंहि भया.

परंतु वोहि वेदांतका पूर्व भाग जो कर्मकांड–वाके सूत्र बनानेका अधिकार पाये. और वो बनाये–जातें जीनकी–उन्हीतें परम फल है. ऐसी बुद्धि हो गई है. वेसे जैमीनी कहेते हैं.

सूत्र—शेषत्वात् पुरुषार्थ वादो यथाऽन्ये
ष्विति जैमिनिः ॥ २ ॥

अर्थ—शेष होनेतें पुरुषार्थवाद तेसे अन्यमें ऐसे जैमिनि.

विवेचन—वो स्वामी कहेते है. कर्मका शेष विद्यातो है. वातें-वातें-फल है-" ब्रह्मके जाननेतें परम मीलता है. " यह तो अर्थवाद्-स्तुतिपरत्व वचन है. पुरुषार्थ तो कर्मतेंहि है और वो स्वस्वरुपप्राप्ती.

अब प्रथम यह जैमिनिमतकी पुष्टी-पूर्वपक्ष-है. सूत्रहि चले जाते हैं.

सूत्र—आचार दर्शनात् ॥ ३ ॥

अर्थ—आचारके दर्शनतें.

विवेचन—ब्रह्मविद् प्रायः कर्ममें लगे रहेते हैं. उनका वोहि आचार है. जैसे जनकादिक श्रुतिमें अश्वपति-केकय-जो यज्ञ करतेहि रहेते हैं. ब्राह्मण देखे तो कहेते हैं. "हमकों यज्ञ करनां है. वाहितें स्वरूपका ज्ञान होता है. वातें वोहि उपायके पुरुपार्थका है. औरभी-

सूत्र—तच्छ्रुतेः ॥ ४ ॥

अर्थ—वो श्रुति कहती है.

विवेचन—" यदेव विद्यया करोति. " जो विद्या करके करता है. सो वोहि कर्म " विद्याको अंगमें रखके करनां.

सूत्र—॥ समन्वा रंभणात् ॥ ५ ॥

अर्थ—संग आरंभणतें ॥

विवेचन—" तं विद्या कर्मणी समन्वारंभते " ऐसे कर्ममें विद्या भी आरंभ कीजाती हैं ऐसीभी श्रुति है.

सूत्र—॥ तद्वतो विधानात् ॥ ६ ॥

अर्थ—" वो वालेको विधानतें.

विवेचन—विद्यावालेकों कर्म करनां विधान है. आचार्यकुलमें

वेद् पढते हैं. सो ब्रह्मविद्या है. सो कर्ममें लागु करनेकोंहि विद्याका पढनां भी(तो विधान है. ऐसे विद्या कर्मकी अंगहि है और.

सूत्र—॥ नियमाच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—नियमतें ॥

विवेचन—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवेष शतं समात्" "सो वर्ष जीये तोभी कर्महि कीये जानां" ऐसा श्रुतितें नियम ठहरा है. वातें अंत फल–सो कर्मतेंहि ठहरा–विद्या कर्मके अंतर्गत है. कर्म विद्याके अंतर्गत नहि है ऐसा जैमिनिमत कहींके अव आपके पूर्व कहे निर्णयकों सुदृढ करनेकों यह सबका खंडन करते हैं. सूत्र वार.

प्रथम पुरुषार्थ क्या है. वोहि तो प्रथम भूल है! आत्माकी प्राप्ति येहि परम पुरुषार्थ नहि है.

सूत्र—॥ अधिकोपदेशात्तु वादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ॥ ८ ॥

अर्थ—अधिकके उपदेशतें वादरायणका ऐसे वाके दर्शनतें.

विवेचन—वादरायण स्वामीका मत–दर्शन देखे तो–वेदांतमें देखे तो आत्मातें औरको अधिक करके उपदेश कीया है. वाते वाकी प्राप्ति–वो पुरुषार्थ है. विभु छोडके अणुको मीलानां वो तो अपुरुषार्थ है. वो वडा सो क्यों प्रकार आत्मातें अधिक, वेदांतमें वारवार कहा गया है. और वो फल विद्यातें हैं. यहभी तो कहा गया सो " अर्थ वाद " नहि है. यथार्थ वचन है. अष्टगुणवाला सत्यकाम सत्य संकल्प–सर्वज्ञ–सर्ववित्–विविध स्वाभाविक शक्तिवाला आनंदमय–जातें देव डरतें हैं जो सबका शास्ता प्रतिपालक, श्रष्टा, हर्त्ता, ईशान, अंतर्यामी है. वो तेज निधिके पास कहां अणुखद्योत परतंत्र आत्मा विचारा !!

जाके रोम रोममें कोटी ब्रह्मांड हैं वैसे एक ब्रह्मांडके कोटी कीटमेंतें एक कीट सो जीव-आत्मा अणु-सो वाके सामने क्या ?

ब्रह्मविद कर्महि कीया करते हैं. ऐसाहि दिख पडता है. कहे तो वामें " हम यज्ञ करेंगे " ऐसा वचन दीखाये तो.

सूत्र—॥ तुल्यं तु दर्शनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—तुल्य दर्शन हैं.

विवेचन—कावपेय ऋषी कहते रहे यम क्यों पढेंगे ? क्यों यज्ञ करेंगे ? " ऐसे ब्रह्मवेत्ता कर्मके बेपरवाभी वेदांतमेंहि दीखते हैं. जो श्रुति दीखाके कहाके विद्या कर्मकी अंग है वो.

सूत्र—॥ असार्वत्रिकी ॥ १० ॥

अर्थ—(वो श्रुति) सर्वत्र नहि लगती.

विवेचन—वो तो उद्गीथ विद्या विषयीक है. सर्व विद्याकी यह बात नहि, विद्या कर्मांग है. सो कर्मके फलके वीर्यवत्तरत्वके लीये जो कहे तो उनके लीये हैं सो सर्वत्र लागु नहि दीख पडती है. जो विद्या कर्म संग आरंभका वचन कहे सो ठीक है.

सूत्र—विभागः शतवत् ॥ ११ ॥

अर्थ—विभाग सो सरीख.

विवेचन—संग कीये तो विद्याका फल विद्या देवे. कर्मका कर्म देवे. दो सो रुप मीले, सो शतभत्रके शतरत्नके, तेसे दोनों कीये तो दोनों प्रकार फल मीले. वामें कर्मांगहि विद्या ऐसा कूछ नहि है.

फिर विद्यावालोंको कर्मविद्या सो वो विद्याभी ब्रह्मविचार नहि. न उपासना—न आराधन—चोतो

सूत्र—अध्ययन मात्रवतः ॥ १२ ॥

अर्थ—अध्ययन मात्रवालेकों.

विवेचन—अध्ययन पढे वो पढने जानेवालेकों-वेद पढनेवालेकों विधान है. वो पढ चूके तो फीर तो आप अर्थ समझके कर्मार्थी कर्मके लीये, और मोक्षार्थी ब्रह्मज्ञानके लीये प्रवर्त्तता है. या प्रकार विद्याक-र्मका अंग नहि. जो सो वर्ष पर्यंत कर्म करनां कहे सोभी वैसा नहि.

सूत्र—नाविशेषात् ॥ १३ ॥

अर्थ—नहि अविशेषतें. ॥

विवेचन—वो नियम सर्वके लीये समान नहि. त्यों विद्याके अंगमें रहे तोभी विशेष नहि. परंतु वाके अंगमें विद्या नहि. जनकादिक कीये सोभी विद्याके अंगमें. फीर

सूत्र—स्तुतयेऽनुमतिर्वा ॥ १४ ॥

अर्थ—वो स्तुति वा अनुमतिके लीये.

विवेचन—विद्यावान कीतनें कर्म कीये तो लीपता नहि. ऐसी विद्याकीहि स्तुति-महात्म्य-अथवा है. भले कर्म कीये तो हानी नहि. ऐसी अनुमति है. वातें विद्याकर्मकी अंग नहि कही है.

सूत्र—कामकारेण चैके ॥ १५ ॥

अर्थ—एकमें कामकार करके.

विवेचन—एक स्थानमें वेदांतमें ऐसाभी कहा हेकि " हम प्र-जाकों क्या करे ? जीनोंका यह आत्मा यहलोक है ? " कहे तो ब्रह्म-विद्याहि अनुष्टान करके ब्रह्मकों वाके लोककों हम पावेंगे " गृहस्थ वनेंगेहि नहि. ऐसे जो कामकार-ऐसी मरजी रहे तो विना अग्नि

होत्रादि कर्मके विद्यातें पुरुपार्थ मीलजाता है. फीर विद्या कर्मांग कहां रही!

सूत्र—उपमर्दंच ॥ १६ ॥

अर्थ—और उपमर्दन.

विवेचन—विद्याका ब्रह्मज्ञानका सामर्थ्यहि इतनां है. कि वो अन्यबंधन—कर्मका नाश—अमर्दन—कर देती है. " क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे " ऐसे वचन है. और दृष्टांत देते हैं.

सूत्र—उर्ध्वरेतस्सु च शब्दे हि ॥ १७ ॥

अर्थ—उर्ध्वरेतामें शब्दमें निश्चय.

विवेचन—जो उर्ध्वरेता है. जो जैमिनिके अग्निहोत्र—गृहस्थधर्म, प्रजोत्पत्तिका विचारहि कभी नहि कीये—सो वोहि आश्रममें रहीके ब्रह्मविद्यातें—ब्रह्मदर्शनतें मुक्ति पाये—उनकों यह अग्निहोत्रादि गृहस्थके कर्मकी एकभी श्रुति लागुहि नहि. " जो जीव वहांलों अग्निहोत्र न छोडे " इत्यादि. उनके लीये तो औरहि धर्म है. 'त्रयो धर्म स्कंधः' तीन धर्मके स्कंध है. " यज्ञ, दान, तप "—यह लोकमें तपतें वनमें वसीके परमात्माकों पावनां ऐसा चहते हैं. यह श्रुतिवचन है.

पूर्व उत्तरपक्ष आइके आगे बढ गये. उपायकर्मभी है विद्याभी है. परंतु कर्मके अंगमें विद्या यह कहेनां ठीक नहि. विद्याके अंगमें कर्म तो होनांहि चाहीये—वाका केवल निषेध नहि हो सकता है. जैमिनिमत मात्र ठीक नहि कि वोहि पूर्वकांडमें कहेहि आश्रम और कर्म—गृहस्थधर्म अग्निहोत्रादिहि पुरुपार्थके लीये बस है. ज्ञान उपासनाकांडकी आवश्यकताहि नहि. चार आश्रमके धर्म भिन्न है. सबकों स्वाश्रम धर्मका अनुष्ठान आवश्यक है, वो उपायका प्रथम अंग है. परंतु वोहि उपाय

नहि है. उपाय सो ब्रह्मविद्या. वाकों साधनेकों चार आश्रममेंतें कोइभी एक आश्रमके कर्मोको धर्म समझके करो. जैसे उर्ध्वरेताका दृष्टांत ब्रह्मचारीहि जन्मलों रहे, वा ब्रह्मचारीमेंतें वानप्रस्थ, सन्यस्त ले लेवे तो गृहस्थाश्रम नहि कीये तो नहि मोक्ष होगा. ऐसा शास्त्रका सिद्धांत नहि. वातें जैमिनि मत अनुगुणहि उपाय और ब्रह्मविद्या वाका अंग यह ठीक नहि. अंत उपाय तो वोहि " विद्या " है. जो वादरायणमत है. अभी जामें जैमिनि शंका उठासकते हैं.

सूत्र—परामर्शं जैमिनिरचोदनाच्चापव-
दति हि ॥ १८ ॥

अर्थ—परामर्श जैमिनि कहते हैं. विधि नहि अतिवाद है.

विवेचन—" तीन धर्म स्कंध " इतनां मात्र कथन है. जैमिनि कहेते हैं. यहां विधि वचन नहि. वातें प्रणव जपतें ब्रह्मोपासन उनको कहा सो स्तुति अतिवाद है " उर्ध्वरेतस सो आश्रम नहि. " ऐसा और " अपवदति " श्रुति उनके विरुद्ध की है. उनकों कोइ आश्रम अनुष्ठान करनेका हैहि नहि. ऐसा जैमिनिका मत रहे तोभी.

सूत्र—अनुष्ठेयं वादरायणः साम्यश्रुतेः ॥१९॥

अर्थ—अनुष्ठेय है समान श्रुतितें वादरायण कहेते हैं.

विवेचन—उनकेभी आश्रमतो हैहि. और वाका अनुष्ठानभी करनां चाहीये. करके विधि है. श्रुति है. जो फल गृहस्थाश्रमीकों अपने आश्रममें रहीके उपासना कीयेतो है सोहि उनकों उनके आश्रममें रहीके कीयेतो है ?

अमृत तो " ब्रह्मसंस्थ " परमात्मामें लगे रहे हो. ब्रह्मनिष्ठ हो—उनकों है. परंतु गृहस्थाश्रमकाहि वोतो धर्म सहि. और ब्रह्मचा-

रीका सो नहि. यह ठीक नहि है. " तीन धर्म स्कंध " यज्ञ, अध्ययन, दान–यह गृहस्थके लीये कहे हैं. " अध्ययन " वेदाभ्यास-और–तप सो ब्रह्मचारी, सन्यासीकों है. ब्रह्मनिष्ठकों मुक्ति तो कही है. सो तो सर्व आश्रमीकों समान आवश्यक है.

हरिमें संलग्न हो. उनकों हरिभक्ति है. " ये चेमेरण्ये श्रद्धां तप उपासते " ऐसे वो तपवाले भी समानहि उपाय फलमें हैं. उनकों उनका आश्रमभी बराबर अनुष्ठान करनां होता है. तात्पर्य–गृहस्थकोंहि उपायका अंग कर्मानुष्ठान है. ऐसा नहि है. स्व स्व आश्रम धर्मानुष्ठान सर्व आश्रमीकों है. ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यास मीले, तबहि तो चार आश्रम बनते हैं. वातें उनकों आपके आश्रमके कर्मोकी बडी विधि गृहस्थकी नांइहि हैं.

सूत्र—॥ विधिर्वा धारणवत् ॥ २० ॥

अर्थ—विधि है धारण सरीख.

विवेचन—जैसे यज्ञमें समिध उपर धारण करनां, नीचे धारण करनां–ऐसे धारणकी विधियें है. ऐसे यह लोकमेंभी जो विरक्त हो सो वनमें चले जावे–न विरक्त हो तो गृहस्थाश्रम करे; ऐसी विधियें हैं. ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहवाला हो–गृहतें वनवासी होके–वानप्रस्थ होके संन्यासी होवे. अथवा ब्रह्मचारीसेंहि संन्यासी होवे अथवा गृहतें वा–वनतें संन्यासी होवे–जब विरक्तिसंन्यास लेनेके योग्य हो तब सन्यास लेवे. परंतु एक आश्रम तो आठ वर्षके भये तबतें ब्राह्मणके पुत्रकों लग जाता है. वेदांतके अधिकारीमात्रको प्रथम ब्रह्मचर्य–सो वेदाध्ययनके लीये है. जाकों प्रथम आश्रम और वाके धर्म कहेहि हैं. वो वो आश्रमी वो वो अधिकारीयोंके लीये कही भयी श्रुतियें अयथार्थ लगाये तो शंका उठती है. शास्त्रमें सर्व वर्ण आश्रम धर्म कर्म

व्यवस्थाका परिणाम क्या ? वोहि कर्म करने, आराधन—आज्ञा पालन-रुप--वातें प्रभुकृपा वातें वाका ज्ञानदर्शन—ऑर फीर वातें वो पूर्ण ब्रह्मज्ञान अनन्य प्रेमतें वाकी पुरी प्राप्ति—वो परमपुरुपार्थ येहि उपायका क्रम है.

परंतु वो सांगोपांग जाननां आवश्यक है. त्रा लीये पुर्व उत्तर-भाग उभयका पुर्ण शास्त्रज्ञान—ऑर वाकी यथार्थ समझ. उभयका मिमांसा--शास्त्र--पूरा न देखनेंतें जैसे संशय रहेता है, वो भूल होती है वैसे पुरा पढे देखेपर पुरा न समझे तो भी वोहि परिणाम आता है. अनेक फलकों लेके अनेक उपाय शास्त्रमें है. कर्मभी उपाय है. वामें ज्ञान अंग है. ज्ञानभी उपाय है. वामें कर्मअंग है. सर्वत्र व्यवस्था करनी चाहीये. दृष्टांत देखें तो यहांहि यद्यपि उद्गीथविद्या वडे छांदोग्य वृहदारण्यकादि उपनिपदोंमें कही गइ. परंतु वो कर्मका अंग है. ऑर कर्म जो ब्रह्मविद्याके अंग है. सो यहांलों की उनको " स्तुतिपरत्व भी लगा दीये जावे. श्रुतिवचन भी स्तुतिपरत्व लगता है. ऑर जब उद्गीथ विद्या ब्रह्मविद्या साक्षात नहि तो वो भी तो स्तुतिपरत्व क्यों न हो ? ऐसी शंका उठे तो समाधान करते हैं.

(स्तुतिमात्राधिकरणम्)

सूत्र—॥ स्तुतिमात्र मुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ॥ २१ ॥

अर्थ—स्तुति मात्र उपादानतें ऐसा कहे तो नहि. अपुर्वत्वतें.

विवेचन—उद्गीथका आरंभहि वडे ठाठसें. वो रसोंका रसतम आठमारस--वाको कहा--परम अंतका रस कहा. परंतु ब्रह्मकी प्राप्ति तो नहि कराती है किंतु क्रतुमें भी करनीहि ऐसा वाके उपादानका नियम भी नहि वातें वो स्तुतिमात्रहि होनी चाहीये. वाका उपादानहि

ऐसा होनेतें या प्रकार ऐसी शंका उठती है कि यह सर्व केवल स्तुति है.

वाका उत्तर--ऐसा नहि. वातें फल जो पूर्व न हो सो वातें होता है. वो स्तुतिपरत्व नहि है तो पूर्व हो चूका हो. फीर न यत्न होनां हो. और बडाइ मात्र कहनेकोंहि कहे तो वो स्तुति है. वाका फल "विधिवत्तरत्व" बहु वेर कही गये हैं. और वातेंहि.

सूत्र—भावशब्दा च ॥ २२ ॥

अर्थ—भाव शब्दतें है.

विवेचन—" उपासीत " उद्गीथकी उपासना करो ऐसी विधि आज्ञाभी है. श्रुतितें विधिभाव सिद्ध है तो फल भयाहि. वातें स्तुति मात्र नहि. सर्वथा स्तुति नहि. कीतनां फल सो समझचूके है. कर्मांगत्वतो हैहि. ऐसेहि यह वेदांतमें आख्यान आते हैं. जैसे " नचीकेता बाप बेटेकी लढाइ. वाका यमके घर जानां, " यज्ञ जब होता है तब अवकाशके समयमें आख्यान सामान्य उपदेश सरीख गंमतके लीये " पारिप्लव कहेते हैं वैसे यह आख्यायिकाओंकोभी समझी जावे वो कैसे ? याकाभी निर्णय कीया है.

(पारिप्लवार्थाधिकरणम्)

सूत्र—पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात्२३

अर्थ—पारिप्लवार्थ ऐसा कहे तो नहि विशेषित होनेतें.

विवेचन--उनतें विशेष अर्थभी खुलता है. वो प्रकरण देखे तो समझा जाता है कि उतनी आख्यायिकाभी अर्थप्रदहि है. वातेंभी विशेष अर्थ पाया जाता है. केवल विनोदार्थ वो नहि है.

सूत्र—तथा चैक वाक्योपबंधात् ॥ २४ ॥

अर्थ—तैसे ऐक्य वाक्यके उपबंधनतें.

विवेचन—प्रश्न उत्तर सर्व वेदांत है. रहस्यमय है. सिद्धांतके साथ वो वो वाक्योंका एक संबंध होता है. जैसे “ आत्मा वारे दृष्टव्यः ” इत्यादि. यातें वो पारिप्लवार्थ नहि है. अब जैसे वाक्य निकाम न रहे और विद्या कर्मांगभी निकाम नहि ठहरी तो आश्रम कर्मतो निकाम होहि केसे सकते हैं ? या प्रकार जो प्रसंग छोडा रहा वाकाहि अनुसंधान कर देते हैं. कि गृहस्थाश्रममें गृहस्थकी और वानप्रस्थके लीये वाके आश्रमकी विद्या और कर्मकीभी जहां योग्य वहां स्तुतिभी ऐसेहि हो. वो तन वो बल वैसाहि है. न केवल वृथाहि. जैमिनि कर्मकांहि अग्निहोत्रादिकका हि आग्रह करके और आश्रमकों आश्रम हीहि नहि कही देते हैं. सो ठीक नहि हैं.

(अग्नींधनाधिकरणम्)

सूत्र—अत एवचाग्नींधनाद्य न पेक्षा ॥२५॥

अर्थ—यातेंहि अग्नि ईंधन आदिकी अपेक्षा नहि.

विवेचन—कोनकों ? वोहि उर्ध्वरेतस्—ब्रह्मचारी—वानप्रस्थ—संन्यासीकों—जीनकों स्त्री नहि. जीनका अस्खलित ब्रह्मचर्य बना रहेता है. यज्ञ अग्नि ईंधन आदि नहि कहे तो नित्य अग्निहोत्र गृहस्थकी नांइ करनेकी उनकों अपेक्षा नहि है उनकों उनके आश्रमके योग्य जो कर्म हो वाकी अपेक्षा है. अग्निहोत्र कीये विनां पायेतो वो पाप होता है ” यह सर्व गृहस्थोंकों लीये यथाधिकार वचन है.

स्पष्ट निर्णय यह हैकिं अज्ञानतें देहकों आत्मा समझके या आत्माकोंहि प्राकृत भोग मीले वा लीये कर्म कीये तो वाके फल क्षय, और वातें वासना—बंधन है. वातें वैसे सकाम कर्मोतें तो विराम पावे. बुरे कर्मका फलतो दुःखहि है. वोतो कहेहि क्यों ? यहतो कर्तृव्य प्रकरण

उपाय–हितका विचार है. जामें प्रथमहितें सकाम नहि. परंतु निष्काम वो अमुकहि नहि किंतु वर्ण आश्रमके उचित कर्म हैं. वातेंहि वो आराधनरुप–शास्त्राज्ञा पालनेके विचारसें शास्त्रानुसार और वैसेहि उचित ज्ञानपूर्वक कीये तो बंधनरुप नहि होते हैं. किंतु वो आज्ञा पालनकोंहि आराधन समझके महा उदार सर्वेश्वर हमारा यह लोककों निभावनेके साथ हमारे पूर्वकर्मकों बंधनोको कमती करता है–और यह तो सिद्धहि है कि वो नये बंधरुप तो होतेहि नाहि, फीर वाके साथ उपासन–जो प्रकार जो रुपका ठीक लगे वो सर्व एकका–और कोइभी एक ब्रह्मविद्या आचार्यतें मीलाके कीये गये तो वा ब्रह्मविद्याप्रताप संचित सर्व कटेंगे. और वातेंहि परमात्मदर्शन होगा. वो विद्याप्रभाव वढता जायगा. त्यों ब्रह्मका ज्ञान–स्वरुप–रुप–गुण वैभव शीलका प्रभाव अधिक समुझाया जायगा. वैसे ज्ञानकी वृद्धिसें प्रेमवृद्धि–वातें वाकी अति आसक्ति वाकी लगनीकी वृद्धिसें फीर वाहिकी एक लगनी वोहि उपासना–तैलधारसरीख, फीर वो कोइभी रुप आकार प्रकारतें परंतु वो ईष्टदेव–वाकाहि अवलंबन, ता विना न खा सके–न पी सके–कुछभी कीये तो वाको ज्ञान भान अनुसंधान न तूटें, तो वो फीर वोहि रुपमें संपूर्ण प्रकटतें हैं. साक्षातकार कराय देतें हैं. वस वातेंहि वहांहि भया काम–यह लगनीका नाम–" वेदन " "अनन्य भक्ति " " उपासना " जो कहो तो ठीकहि है. शब्दकी मारामारी क्या करे ! वो प्रभूका ज्ञान भान होनेंकों वैसा मन जीवन वनाना चाहीये. मात्र सुननें समझनेंतें नहि वन जाता है. वाका फीर उपाय " यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन " यज्ञ, दान, तप–अनशन आदि है. वो ज्यों अधिक हो त्यों अज्ञानका टुटनां–पापोंका मलोंका कटनां अधिक, त्यों फीर मन शुद्ध वन जावे त्यों ज्ञान–लगनी–आसक्ति अधिक–औरमेंतें विरक्ति अधिक; ऐसे उभयके वलतें अंग अंगीकी

सहायतें शस्त्रसें मल काटें. वामें शस्त्रवल हमारा वल–उभय ठीक है. तैसे यज्ञ दान तपतें परमात्माकों पावें. ऐसे उभयकी अपेक्षा है. विरक्ति–आसक्ति वो यज्ञ दान तपका परिणाम–यज्ञ दान तपादिक वो विरक्ति आसक्तिके उत्पादक निर्वाहक काष्टतें अग्नि–अग्नितें तांदुल पके वो पाक तैयार हो वहांलों, सहाय काष्ठ–आग–आंच संबंध सर्व वना रहेना चाहीये. वैसे वर्णाश्रमकर्मतें ज्ञान–वातें मुक्ति–वो ब्रह्मके साक्षात्कार पर्यंत–कीयाहि करें, एककोंभी न छोडे येहि निर्णय है. निकाम एकभी नहि. अधिकारानुगुण प्रधान अप्रधान है. हमकों हमारा विचार कर लेनां. स्थिति शक्ति देखके अनुष्ठानका आरंभ कर देनां. सूत्रकार वेदांतका येहि निर्णय उपाय प्रकरणमें उपायके लीये समुझा रहे है कि.

(सर्वापेक्षाधिकरणम्)

सूत्र—सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ॥ २६ ॥

अर्थ—सर्वकी अपेक्षा है. यज्ञादि श्रुतितें अश्वसरीख.

विवेचन—जो वर्ण आश्रममें हम हों. जो जो हमतें विहित–आराधन–कर्म–वन सके ऐसे हो वो सर्व करनें चाहीये. वो सर्वकी अपेक्षा है, जैसे यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन " ऐसे श्रुतिनें–यज्ञ–दान–तप अनशन नमुनेके लीये चार दीखाये. उनकी अपेक्षा है. वैसे अनेक उपाय जो हो गीताजीमेंभी " यज्ञो दान तपश्चैव " करके करनेहि " निश्चित मत–उत्तम मत न त्याज्यं कार्य्यं " ऐसे कहेहि है. सामान विना घोडा सवारीको क्या कामका ? गाडी घोडेतें सफर करे ऐसे वह परस्पर सहायक है. उपर वहुत कहा है. यह सार है. अंव यह उपायके और अंगभी समुझातें हैं.

संसारी जैमिनीको देखके कर्मठहि वने और त्यागी, वेदांतको

देखके आपकों विरक्त ज्ञानी मान ले कुछ न करे–यह एकभी ठीक नहि. गृहस्थ और त्यागी स्व स्व आश्रमधर्ममें कुशल रहीके ब्रह्मविद्या साधे. वोहि उपाय है. श्रीहरिका अनुसंधान सदा वना रहे यह उद्देश है. सो घरकों मंदिर वनावे वो मंदिर हैं. योंहि समझे तो हो सकता है. सर्व भगवानका. वाकी सेवामें हमारा जीवन निकाले तो कर्म ज्ञान संग वने रहेते हैं. अथवा आप संसारतें त्यागी और हरिमंदिरनिवासी वोहि सेवामें जीवन पुरा करे. ऐसे ज्ञानी कर्म सेवाके साथ वने रहे तो वन सकते हैं. चारु आश्रम स्वामीके सेवनरुप हैं तो वो वैसेहि वनो. गृह भी हरिमंदिर और आश्रमका तो कहेनांहि क्या ! वो तो क्षेत्र धामकी उपमा पाया. संसारी भाव मीटानां. ब्रह्म–स्वामीभाव स्थापन होनां और वामें वा लीये वाका सेवनरुप जीवन पूरा होनां यह सार है. अमृतत्व तो ब्रह्मसंस्थाको कहा है. सो उभयकों आवश्यक भाग है. उभयकों या विध ब्रह्मविद्यामें अधिकार है. अंत अहंकार ममकार पुरा जावे और जैसा ब्रह्मकों शरीरी त्यों जीव और वाका जो कहा जाता है वाकों वाका शरीर समुझे उतनांहि नहि. वो सदा अनुभवमें अनुष्टानमें लावे, श्रीहरि रखे त्यों–और वाकेहि अर्थ हम रहे जीये–वो पुरे, ब्रह्मज्ञानी–आत्मज्ञानी. वो आपहि ब्रह्मनिष्ट अनुसंधानी वैसे होनेंकों प्रथम जैसे यज्ञ दान तप करनां तैसे भीतरका भी बंदोवस्त रखनां. शम दम आदि इन्द्रियोंका वशीत्व भी रखनां–सर्वकों समान आवश्यक है. "उपरकी अच्छी वनी, और भीतरकी रामजी जाने" सो ठीक नहि. वो रामजी सबकी जानताहि है. वैसे वाके भय लालचसें जैसे सकामकर्म छोडके निष्काम, जैसे प्राकृत भोगका प्रयास कमती करके परलोकका प्रयास अधिक औरभी याका उपयोगभी–धर्म अर्थ कामकाभी–मोक्षार्थ उपयोग करे. तैसे इन्द्रियोंको भी अर्थोतें होके. सो विषयोंतें मात्र नहि ओरोके तरफके अविहित

रागद्वेषतें भी. याहिका नाम "मनोनिग्रह." "शमदम" आदि वाके प्रकारहै. संन्यासी आदिकों तो वो आवश्यक माने गये हैं. परंतु गृहस्थकेभी आवश्यक है गृहस्थका तो प्रवृत्तिमय व्यापार है. और यह तो निवृत्तिप्राधान्यधर्म है. याते शंकाका स्थान है त्यों यह भी उपायका बडा अंग है. यातें सूत्रकार निर्णय करते हैं.

(शमदमाद्यधिकरणम्)

सूत्र—शमदमाद्युपेतः स्यात्तथाऽपि तु तद्विधेस्तदंगतयातेषामप्यवश्यानुष्ठेयत्वात् ॥ २७ ॥

अर्थ—शमदम आदि चाहीयेहि. वोभी वाके अंग होनेतें उनके लीयेभी विधि है. उनकोंभी अवश्य अनुष्ठेय होनेतें.

विवेचन—शांतो दांतो उपरतस्तितिक्षु " समाहितो भूत्वा " ऐसे विधि है. " ऐसा शांत दांत उपरति क्षमा समचित होके पीछे " आगे परमात्माके अनुसंधानकी बात है. तन शुद्ध सरीख मनशुद्धि विना, शुद्ध प्रभुपास मनतें जानां-उपासना करनां " वो मूर्ति बाहिरकी वा भीतरकी हो तनमन उभयसें शांत होके वो सगुणनिधिके पास जानां-तो वैसे होके जानां-ऐसी आज्ञा वाहिकी है. वो नहि रहे तो उपासना, सेवा, ध्यान सत्य बनेगाहि नहि. क्योंकि मुख्यकाम ब्रह्मविद्यामें मनका; वो और काम क्रोध लोभ मोह-अर्थात् प्राकृत दुष्ट व्यापार कीया करे तो मात्र पुजामें या ध्यानमें देहको बीठा रखनेतें क्या लाभ! वृथा दुनियां माने. और जूठा हमहू फीर कहें-वास्तविकमेंकी पुजा ध्यान करते रहै-वो कहां भया! वाका अंग आवश्यक अंग यह शमदमादि है. वातें " अवश्य " " अनुष्ठेय " कहेते हैं.

फीर संसारमें रहे तो विहित अहितमें प्रवृत्ति निवृत्ति हैहि. कुसं-

गतें हानी. तेसेहि सत्संगतें लाभ. या प्रकार सर्व करणके व्यापारकों रोकनांहि आवश्यक नहि. विचार विचारके आचरनां–उपयोग करनां आवश्यक है. तो शमदमादि बने रहीके–उपासना बराबर साधी जा-यगी. फीर वैसे रहेनेका अभ्यास होजानेतें स्वभावहि सुखरुप शांति-मय बन जायगा. गृहस्थ शमदमादि युक्तहि संसारमेंभी पुरे सुखी रहे-तें हैं. यश पावते हैं. प्रवृत्तिमेंभी यह बडे गुण आवश्यक हैं. मनकों रोकनां सो ध्यानसें, वाणीको रोकनां तो जपसें. निषेधमें विहित–निवृ-त्तिमें प्रवृत्ति--येहि कर्तव्य अकर्त्ता होके कर्त्ता सरीख.

गृहस्थकों जैसे शम दमादि तैसे विरक्तकोभी वैसाहि आवश्यक अंग है. गृहस्थाश्रमकी श्रेष्ठता तीन और आश्रमीकों भोजनादि सहाय देनेवाले करके मुख्य है. उनका कर्तव्य आश्रमीकों भोजन देनां ठहरा, तबहि विरक्तोंको भीक्षातें निर्वाह ठराया है सो बन सकता है. परंतु विरक्त होनेके पीछेभी फीर खानेपीनेका स्वाद ! यह विरक्ति कैसी ! भीक्षा–और फीर मनमानी होनां यह अडवड बातहि है. शरीरपोष-णभी–जा बिना वो नहि चले उतनां, वाकोभी फीर और वाने उतनां; शास्त्रीय कायक्लेशतें कसनां. जब देखेकि अब बिना रहा नहि जाता–वा शरीर ठीक काम नहि देगा. तब उतनांहि वाको पोषण देनां. सो जो जैसा मीले सो. याके उपरतेहि त्यागीकी जाति नहि. और वो सर्वका पाय ले–पाय सके ऐसा मांना गया है परंतु सत्य यह है. उपनिषद-में एक आख्यायिका है कि ब्राह्मणके प्राण जाते रहे तो प्राणधारण कर सके उतनेहि--परंतु हाथीके लीये पके हुवे उडदमेंतें बचे रहे, वाके मा-हूततें मांगके पाये. और पानी पाया. और आपका जीव न रखा. तैसी यह भीक्षा ठहरी. बातें यह नहि ठहरताकि जब मन चाहे तब वाका वो पाय लेवे. वोहि दृष्टांत-स्मरण करायके पूर्वपक्ष करके कहते हैं.

(सर्वान्नानुमत्याधिकरणम्)

सूत्र—सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्ययेतद्दर्शनात् २८

अर्थ—सर्व अन्नकी अनुमति है. प्राण जाते हो तब ऐसा दर्शन होनेतें.

विवेचन—कही चुके वैसा प्रसंग ब्राह्मणके लीये है. (वाजी छांदोग्यमें) परंतु वो प्राण विद्याके लीये जाते रहे. और पाया भी उतनांहि कि जातें प्राण रहे. वो न पावते तो मर ही जाते. या प्रकार सर्वको सर्वदा अनुमति तो नहि. ऐसे प्रसंगमेंहि.

सूत्र—॥ अबाधाच्च ॥ २९ ॥

अर्थ—अबाध होने तें.

विवेचन—पाये तो भलेहि वो ऐसे प्रसंगमें अपवादमें बाध नहि कहे तो बाध ठहरा. नियम औरहि ठहरा यह तो अपवाद है सर्वको यह सुझात है कि सात्विक अन्नतें बाध नहि होता है. सर्वका मूल मन-वो अन्नमय है "आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवास्मृतिः" जैसे यज्ञ दान तपतें ब्रह्मज्ञान वैसे यह मुख्य अंगतें अबाध है. निरंतर-स्मृतिका नाम "उपासना" वो "ध्रुवस्मृति" वोहि "ब्रह्मज्ञान" वो कब होवे! सत्यशुद्धि हो तब. वो कैसे हो! आहारशुद्धितें." या प्रकार आहारशुद्धिहि मूल है. शुद्ध आहार कोनको कहेते है. जो सात्विक सर्वथा हो. कहे तो जाति शुद्ध न्यायोपार्जित. फीर यज्ञशेप हो. तबहि भीक्षाके योग्य गृहस्थतें भीक्षा लेनां कहे तो लुगाइ बचेवाला हि नहि, किंतु अग्निहोत्री–पंच यज्ञ परायण–वाके घरकी भीक्षा; अथवा भगवतमंदिरका प्रसाद वो नित्य नहि प्राप्त हो सके. नित्य यातें आप हिके साथ भगवान रखके उनको निवेदन करके पावना करके सं-

प्रदाय वातेंहि है. पुरा सात्विक होनां वो यज्ञशिष्ट पाये तो होता है. और वो न हो तो " तेत्वघं भुंजते पापा ये पचंत्यात्म कारणात् " " अघायुरिन्द्रियारामो " आदि अनिवेदित अन्नका बडा निषेध है. यह सर्वथा लक्षमें रखे, आहारते बुद्धि शुद्धि. और पीछे उपासना है. नित्य आहारशुद्धिके पीछेहि उपासनाका विचार करनां. जो अपवाद है वो बाध नहि सर्व अन्न अनुमति सो प्राण संशयमें हो तवहि उतनी हि वो ब्रह्म जाननेको जीवनां हो तवहि. यह वातें स्मरण करावनेको.

सूत्र—अपि स्मर्यते ॥ ३० ॥

अर्थ—स्मृतिभी कहती है.

विवेचन—" प्राण संशयमापन्ने " ऐसा प्राण संशयमें आई गये हो तवहि है. नहितो शास्त्रकी बडी बडी मनाहि है. कही चूकेकि ब्रह्मविद्याका नित्यका पोषक जल आहारहि है.

सूत्र—शब्दश्चातोऽकामकारे ॥ ३१ ॥

अर्थ—यातें शब्द है. कामचारी नहि होनां.

विवेचन—शास्त्र क्या कहे ? ज्ञाति बहिष्कृतका अभीभी देखात रहाहि है. सर्व धर्म वर्ण—याका पालन—यथाशक्ति करहि रहे हैं. अथवा आस्तिक करनां चहतेहि हैं.

बावाजी—महात्माजी—आचार्यजी गुरुजी—पंडितजी जो भीक्षा वा परान्नपें जीवते हैं उनको अपना कोन आश्रम है ? यह आपके लीये खूव विचारनां. और वो यथाक्रम है वा नहि, सो तपासना. उनकों—खानां और सोनां—उतनांहि काम नहि है. औरका दीया पाय [illegible] सो आपका भजन उपासन सेवनका समय यथावनतां है. वो [illegible] कर सकें वा लीये है. और वो जो देते है सोभी ऐसा समझके [illegible] इनकों दिये तो वो पायके भजन—उपासन करेंगे. तो वामें इनके [illegible]

मीलेगा. जीतनां समय उनके शरीरकी सहायमें हमारा अन्न रहेगा-ऐसा हेतु है. देने लेनेवाले दोनों यह वात विचार लें-फीरभी वो भजन सेवनमें लगेपेंभी केवल स्वेच्छाचारी नहि हो सकते हैं. कही चूके हैं कि वो गृहस्थाश्रमी नहि है. वाका अर्थ यह नहि है कि उनका कोई आश्रमहि नहि. और जव आश्रम है तो वाके धर्म कर्म हैहि-वो उन्हीके लीयेहि है. वो कीये तवहि तो ब्रह्मचारी-वानप्रस्थ वा सन्यासी वो नाम कर्मतेंहि है वो कर्मविधिके अनुसारहि होनां चाहीये ऐसा सव समझते हैं. सो वैसा है कि नहि. यह देखनां-उनका मूल्य कर्त्तव्य है. सूत्र कहता है.

(विहितत्वाधिकरणम्)

सूत्र—विहितत्वाच्च आश्रम कर्मापि ॥ ३२ ॥

अर्थ—आश्रम कर्मभी विहित होनेंतें.

विवेचन—केवल उपासनमें लगे रहेनां नहि, माला पकडके बैठ गये. वा नाक पकडके सो कहां तक ! फीर उठेंगेतो सहि. फीर कहां जाके क्या करेंगे ! और नाक वा माला पकडे वहांलोंभी शरीरभी वैसी योग्यतावाला वनाये विना कीयेतो वाकी शुद्धि खानपान शयन शित तापतें वचाव कीये विना वो कैसे ठीक काम देगा ! तात्पर्य वो सबके लीये कर्मतो करनेंहि पडेंगे ! सो क्या !! जो उनके लीये वो आश्रमके उनके देहयात्रार्थ, उदरपूर्णार्थ नीकी भये है; वो स्मृतिपुराण इतिहासमें ठोर ठोर वाका वडा विस्तार है. चार आश्रम है वामें हमभी हैं. हमारे लीये. कहा चूकेकि ब्रह्मविद्यामें गृहस्थकाभी अधिकार है. वो आपके आश्रममें रहे, गृह यज्ञशाला युक्त वामें यज्ञनारायणका निवास, कोइभी रुपमें होके वाका कोइभी प्रकार यजन होके-यज्ञशेष पावनेवाला होना चाहीये श्रुतिनें-यज्ञेन दानेन करके कहा है वाहिका स्मरण कराते हैं.

सूत्र—सहकारित्वेन च ॥ ३३ ॥

अर्थ—वो सहकारी होनेतें.

विवेचन—कार्यसिद्ध शीघ्र होता है. और वो विना शरीरयात्रा भि नहि चलताकि जातें उपाय साधे. वातें कहा हैकि.

सूत्र—सर्वथापि त एवोभयलिंगात् ॥ ३४ ॥

अर्थ—सर्वथाभी वोहि उभयलिंगते.

विवेचन—विद्याके अर्थ आश्रम. आश्रम धर्म और विद्या यह उभय उपायके लिंग है. वो सर्वथा करनेकेहि है. फीर वातें ज्यों इष्ट होता जायगा त्यों अनिष्ट हटता जायगा.

सूत्र—अनभिभवं च दर्शयति ॥ ३५ ॥

अर्थ—अभिभव नहि होगा. ऐसा दीखाते है.

विवेचन—हम पापतें हार न जाइंगे धर्मतें पाप हटेंगे. उनका पराजय होगा. यह सर्वकों सुज्ञात है. अधिक क्या कहुं ? जीतनां अधिक हो उतनां अधिक लाभ आश्रमीकों है. वो आश्रमी कहे तो वाके धर्मकि यथार्थ पालन करनेवालेको है. दैवयोगतें आश्रम छुट जाय वो कोनका ! गृहस्थका-स्त्री मरजानेतें (औरका आश्रम तो तुटे छुटे कैसे वो जो छोडे तब तों नर्क पाताहि है. आगे कहेंगे) परंतु यह गृहस्थाश्रम बना रहेना स्ववश नहि फीर उतनी सहाय न्यून रहे वो लाचारी ते, वाते उनकों शास्त्रनें आज्ञा–रजा दी है कि वो ध्यान सेवन कीये जावे.

(विधुराधिकरणम्)

सूत्र—अंतराचापि तु तदृष्टेः ॥ ३६ ॥

अर्थ—बीच वालोंकाभी वो देख पडता है.

विवेचन—अंतर शब्द रहे तो उनकी निष्ठा पीछे कोईभी आश्रममें जुद जानेकी होनी चाहीये. निरुपायसें अनाश्रमी भये होवे पूर्व आश्रमी होवे और पीछे होनेके रहे होवे तवहि–अंतर–शब्द है वैसे विधुर उपासनादि कीये जावे तो फलीभूत होवे ऐसे दृष्टांत है. भीष्मपिता लाचारीसें पितृ सेवा निमित्त ब्रह्मचारी रहे. रैक्व–वोभी स्त्री मीली तो गृहस्थ होइ गया. परंतु वो अंतरमें परवशतातें अनाथभी रहे पर उपासना कीये गये. वो

सूत्र—अपि स्मर्यते ॥ ३७ ॥

अर्थ—स्मृतिभी कहती है.

विवेचन—जैसा वो फीर " जप्ये न चापि संसिद्ध्येत् ब्राह्मणो नाति संशयः ॥ ऐसे जप कीया करे. औरभी विशेष अनुग्रह वाकों कर सके.

सूत्र—॥ विशेषानुग्रहश्च ॥ ३८ ॥

अर्थ—विशेष अनुग्रह है.

विवेचन—कोनका–तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यया चात्मानमन्विच्छेत् ॥ तवहि आश्रमी भी आश्रम धर्मके साथ यह अधिक कीये तो परमात्म प्राप्तिके उपाय है. परंतु वाते आश्रमी रहेनेकी फीर जरुरत नहि यह तो ठेहरहि नहि सकता. उनका श्रेष्ठत्वहि है.

सूत्र—॥ अतस्त्वितर ज्यायोलिंगाच्च ॥ ३९ ॥

अर्थ—वातें औरतें वडे लिंगतें.

विवेचन—अनाश्रमीतें आश्रमी श्रेष्ठ है. ऐसे वचन लिंग है. वहां लो स्मृतिका आग्रह है. "अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु दिनमेकमपि द्विजः" ऐसे बन सके वहांलो कोइ भी आश्रममें लगहि जानां कहे तो यो

धर्म कर्म अनुष्ठान पर्यंतहि समझना त्रो उपायका मुख्य अंग है. लाचारीने हमारी परवशतामें, दैव योगतेंहि आश्रम छुट जाने वो माफ है. इच्छासे तो सर्वथा नहि. योग्य आश्रममें रहेनाहि चाहीये. ऐसा वेदांती तो कहे. किंतु मिमांसक जैमिनि भी कहेते हैं.

गृहस्थ विधुर हो तो वाका विचार भया परंतु वहां परवशता और जो तीन नैष्ठिक वैखानस परिव्राजक हैं उनकों तो भूल वा दोषतेंहि आश्रम छुटे तो फीर वो क्या करे ? विधुरकी नांइ कीये जावे क्या ?

(तद्भूताधिकरणम्)

सूत्र—॥ तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्रुपाभावेभ्यः ॥ ४० ॥

अर्थ—त्रो जो आश्रममें हैं वो भूत है. वो रुप है तो वाका अभाव नहि.

विवेचन—(जातें वो रुप नहि तो वाका अभाव ठहराहि) ऐसा जैमिनि भी मानतें है कि नियम करके वो रुप रहे तो वो भाव है. वो वो धर्मनिष्ठ नहि तो उनकों कहेंगे क्या ? विधुर सरीख कोइ नाम रहे तो विना कर्म नाम कैसा ! कर्मभ्रष्ट हो गये तो प्रायश्चित करके फीर आरंभ करे ! सो भी होहि नहि सकता. प्रायश्चित भलेहि करे. वाकों फीर ब्रह्मविद्यामें अधिकार नहि रहेगा.

सूत्र—न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदयोगात् ॥ ४१ ॥

अर्थ—अधिकार नहि होता. पतन भया तो अनुमानतें वो अयोग होनेतें.

विवेचन—पतन भया सो गया " अनुमान " स्मृति नाहि करती हैकिं वाका फीर वो ब्रह्मविद्याके साथ योग नहि होता है.

" प्रायश्चितेन पश्यामि येन शुद्धयेत्स आत्महा" वो तो ज्ञात अज्ञातकों प्रबल विषपान–स्त्रीकों पातिव्रत्य भंग सरीख जानो. वोतो मारे गये नये जन्मतें फीर चढे. यह स्पष्ट कर देते हैं.

सूत्र—उपपूर्वमपीत्येके भावमशनवत्तदुक्तम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—उपपातककाभी एक भाव अशनवत् कहेते हैं.

विवेचन—नैष्ठीकादि उपपातक कर दीयेतो महापातक सरीख वाका प्रायश्चित देनां, ऐसा एकमत करता है. जैसे ब्रह्मचारी मधुअशन कर गये तो वाका प्रायश्चित कहा है तैसे वो ब्रह्मचारी सरीख ब्रह्मविद्याके अधिकारीकों प्रायश्चित क्यों न दे ? सूत्रकार निर्णय देते हैं.

सूत्र—बहिस्तूभयथाऽपि स्मृतेराचाराच्च ।४३।

अर्थ—बहिर उभयथाभी स्मृतितें आचारतें.

विवेचन—उपपातक हो. वा महापातक हो. उभयथा वो तो अधिकारमेंते बहिष्कृतहि भया ऐसा स्मृतिवचन और शिष्टोंका आचार है. वाकों प्रायश्चित न देवे–वो करे परंतु कही गये तैसे फीर वो देहतें ब्रह्मविद्याका अधिकारीतो होगाहि नहि.

उपायका प्रकरण अब क्या अधिक कहें ? यह अंत बात बहुत लक्षमें रखनेकी होके सर्व आश्रम–धर्म–कर्मकी अगत्यतातें भी पातकतें आश्रम भ्रष्ट होनेकि सख्ताइकों स्मरणमें रखे. और सर्वथा पातकतें डर पाया करे बडी सरकारकी नौकरी है जो शिक्षा पाके जैलमें जाके (क्रीमिनलि वा डिपार्टमेन्टलि) परंतु (डीस्मीस्ड जब बर-

तरफ) कीया गया तो वो फीर न पेनशन पावेगा न और कोइ भी छोटी मोटी नोकरी सरकारी पाई सकता है. यह वोहि शास्त्रका शिष्टोका अनुकरण है यहां क्षुद्र सरकारसें नश्वर फलके लीये इतनां डर है तो वो तो सर्वत्र रहा सर्वज्ञ वाके पास जानां है. और वो भी फीर अनश्वर फल चाहीके—तो अति आवश्यक है कि कभी भी अब पापोका विचार नहि रखके भक्त भागवत ज्ञानी कर्मयोगी—कोइ भी आश्रमी—उपाय करनेवाले आपका अधिकार हैंहि ऐसा मान लेके जो बने सो कीये जाना शास्त्र वेदांतका निर्णय यह है. फीर सर्व आश्रमीकों पातक उपपातक समझानां आवश्यक नहि. बुरा क्या सो सब हृदयहि कही देता है वो छुपानां वोंतेहि चहते है परंतु वामें हमकोंहि हानी है. हम ठगे जाता हे. न सर्वेश्वर न देव ऋषी इति.

उपायके प्रकरणमें उद्गीथके अवलंबनतें एक और वडे प्रश्नका अब निर्णय देते हैं. उद्गीथ विद्यामें जो उद्गीथ पढनां वो पढने समय जो अनुसंधान रखनां सो कोन करे ! सब निर्णय प्रथम दर्शनीय तो येहि.

(स्वाम्यधिकरणम्)

सूत्र—स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—आत्रेय कहेत है. स्वामीकी फलश्रुति होनेतें.

विवेचन—जाको फल चाहीये वो करें जो करे सो पावे–यह न्यायतें तो आप यज्ञका स्वामी यजमानकोंहि करनां चाहीये. जो फलकों वलवान बनानां होतो.

शास्त्रमें देखे तो और वात है.

सूत्र—आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रियते ॥ ४५ ॥

अर्थ—ऋत्विकका कर्म है ऐसा औडुलोमी मत है.

विवेचन—वाकोहि करनां ठहरा है. "कि" वो विद्यामें आज्ञाहि ऐसी है कि वो ऋत्विजकों करनां चाहीये" तो फीर यजमान तो नहि कर सकता? फल वाकों क्यों मीलता है! वो कर्म करावनेवाला है. यज्ञ एक मनुष्यसें वने ऐसा कर्म नहि. वामें जीतनें मनुष्य जो कर्मके लीये. जैसे कहे वैसे ठहरानां. और उन्हींसें वो कर्म लेके यज्ञ कर्त्ता आपका यज्ञ पुरा करावे और वाका पुरा फल पावे. ऋत्विजनें जो कीया सोभी तो वाकी ओरतें, वाके लीये, और वो करनेकों वाको ठहराइ गइ दक्षिणा दि गइ तो वो लोक अपनें कर्मका फल पाइ चूके. यजमाननें वो दक्षिणा दी तो यजमानकाभी दावा वो कर्मके फल पर हो चूका जैसे वकीलको अपनी "फी" मील गइ–मुकदमा जीते सो दावादारकों फल–तैसे–यह प्रकरणतें यह पाया गयाकि सकाम कर्ममें ब्राह्मणादिककों वरते है सो ओरोंके तरफसें क्रिया करतें हैं. वो जो शास्त्रोक्त विद्या न हो तो या प्रकार सफल होता है. वो न्याय यहां स्थापित है. गृहकों भगवानका मंदीर समझके "देव यज्ञ परमात्माके प्रिय रुपका गृहाराधन करनेंमभी उचित सहायी–लेने–मीलानेंमें–शास्त्रवलसें यह न्याय है. वाका लौकिक उत्तर "वकील" का दृष्टांत वस है. हम अज्ञान मूर्ख रहे पर हमारा ऋत्विज सुज्ञात रहे तो वाकी कृतिका फल हमकों है हि. यह सर्व तात्पर्य हम अपनी बुद्धिसे खींचते हैं–इति.

कइ वेर कही चूके हैकि ब्रह्मविद्या परमात्माकी प्राप्तिका उपाय है. वो ब्रह्मविद्या कहे तो ब्रह्मकों जाननेंका "ज्ञान" इनका व्यापार

ब्रह्मकाहि अनुसंधान चिंतवन मनन अभी औरोंका चिंतवन रहता है सो बंध होवे. और यह होनें लगे. क्या श्वासोश्वास सरीख वो जब नाहि रहे वाका नाम वेदांतमें " वेदन " " ज्ञान " करके " उपासन " " निदिध्यासन " कहे तो ध्यान धरा है. फीर वो ध्येय इष्ट-मीष्ट होनेतें उपासक वाकी आसक्तिवाला होनेतें वो प्रिया प्रियतमकी झंखनाकी नांइ प्रेम पूर्वक होता है. यह अनुभवीयोंका रहस्य वेदांतमें छुपाया है सो गीताजीमें " प्रियोहि ज्ञानीनोत्यर्थं महंसच मम प्रिय " करके प्रसिद्ध कीया है. वेदांतमेंभी वोहि आनंदरुप है. वाकेहि आनंदतें जगदानंद है वाको संकल्पतें औरभी तो प्रिय है. सो जहां ब्रह्महि " भूमा " इत्यादि कहेहि है. वहां आनंदका क्या कहेनां. वो अनुसंधान जो रिति वो अनुभव करे वाका नाम ब्रह्मवित् " " वेदन " " जाननां " " ज्ञान " है वातें वाको अपूर्व आनंद होता है. वो ज्ञान अनुसंधान अति अभीष्ट लगता है. ऐसा ठेर ठेर प्रकट नहि कीया. गीताजीमें वो सर्व स्पष्ट कर दीया है. नामहि स्पष्ट धरा है. वो नाम सो भक्ति, वा प्रीति स्नेहपुर्वक अनुध्यानका नाम भक्ति है सो वोहितो भया. फीर वोहि तैल धारवत् सतत बना रहेनां चाहीये यह उपनिषदका दुसरा रहस्य है. " ब्रह्म है वो ऐसा है. ऐसा हम (ज्ञान) पाये समझ चूके वातें तो जैसे के वैसेहि. किंतु और चिंतवन छोडके वाकी लगनी यावदायुप वाको अंत पावे. वहां लों लगावे. और का विचार उत्तरोत्तर छुटता जावे. और यह अतुट बने. तब वाका नाम "ज्ञान" वेदन वो उपायका संपूर्ण रुप अनुसंधान उपासना ध्यान निदिध्यासन यह है. वा लीये गीताजीमें सुगम सुलभ शब्द " अनन्य भक्ति " धर दीया है. और विषयीक नहि. किंतु याहि विषयीक हो. फीर वैसे प्रेमपूर्वक अनुसंधान जाका नाम हमने लगनी रखा है. बस वो मुख्य बात है. वाको जो चाहो सो नामसें कहो. मनमें सतत अ-

नुसंधान रहेना चाहीये. वो मनन सो या प्रकार अनुभव करनेरुप हो फीर वो अति आर्त्तिसें साक्षात होनेके प्रयासरुप वाकी मददमें यह भाव प्रेम आर्त्तिके उत्पादक सहायक है और भी सर्व वाके रुप नाम धाम ग्रंथमंत्र सत आदि सर्व है. यह अवश्य होनां चाहिये. एक स्थानमें याका नाम मनन है. वो करनेवालेको मुनि कहा है. वो प्रकरणको लेके उपायके प्रसंगमें यह अत्यावश्यक विषयमें उपनिषद्‌मेंते शंकाका प्रसंग लेके श्री व्यासजी महाराज कृपा करके अंतकी बात अब अंतके भागमें समुझावते है.

श्रुति है-तस्माद् ब्राह्मणः पांडित्यं निर्विद्य बाल्येनातिष्ठा सेत् बाल्यं च पांडित्यंच निर्विद्याथ मुनिः वार्ते ब्राह्मण पांडित्य मीलाके बालभाव करके रहे. बाल और पांडित्य मीलाके फीर मुनि " यहां मुनितो उपवाक्यमें तीसरा है. मुख्य आज्ञातो पांडित्यकी फीर बाल-भाव करके रहेनां यह मुख्य वाक्य है. वाके सहकारी वाक्यके अंदर बाल पांडित्यके लीये मीलानां कहीके " अथमुनि " ऐसा पीछे मुनि कहेतो वो कोइ मुख्य बात नहि है क्या ? ऐसा नहि वो अंतकी बात होनेंतें अंत कही है. वो अंतविधि वोहि सत्य विधि है. विधि नहि ऐसा नहि.

(सहकार्यन्तरविध्यधिकरणम्)

सूत्र—सह कार्यन्तर विधिः पक्षेण तृतीयंतद्वतो विध्यादिवत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—सहकारीके भीतर विधि पक्ष करके तीसरी वो वालेकों विधि आदि सरीख.

विवेचन—समझनांहि चाहीयेकि साक्षात नहि सहकारीके अंतर विधि है. तद्वतोः विद्यावालेको " विध्यादिवत् " यज्ञादि सर्व आश्रम

धर्म शम दम आदि यह सर्व कही गये. वाका समावेश विधिमें करनां "आदि" श्रवण मनन यह सर्व सरीख यह तृतीय "मुनि" मौन-कोभी विधि समझनां. वो पक्ष करके पांडित्यतें औराहि प्रकृष्ठ मनन शील व्यासादिके मतानुसार यह "मौन" है. जो श्रवणके साथ मनन सो नहि. वो सुनने माननेकेतो पीछे फीर जो सिद्ध भया समुझा गया वाका अनुभव करनेका प्रयास पुनः पुनः वाका विचार कीया करनां वो मनन है. एक तो माननांकी ठीक हैं यथार्थ है. और यह मनन सो वोहि हमको प्राप्त हो. हमपें कृपा करे ऐसे नामरुप गुण शीलवाले हो. ऐसा मनन चिंतवन वोहि सो निदिध्यासन है. सत्वकी शुद्धि जो भगवानकी साधन भक्तिसें होवे वो दशा लगनी आसक्ति सो ये है वो कीये विना रहा न जावे वोहि हो जावे. दुसरा, अप्रिय लगे. विग्नहि माने "" यस्य देवे परा भक्ति "" मद्भक्ति लभते पराम् " यज्ञदान तप शम दम वर्णाश्रम धर्म पालनका परिणाम फल वोहि ब्रह्मको पावनेका साक्षात उपाय—वो प्रथम पांडित्य फीर बाल्यभाव पीछे पुर्ण शुद्ध मन भया वाका निशानी पांडित्यके साथ बाल्यभाव और फीर वीशदतामें यह "मनन" रुप रंग प्रेमराग है. यह मुनिकों ज्ञानी योगी ध्यानी प्रेमी ब्हावरे अनन्य भक्त, कहो यह हमकों होनां ऐसेहि बनके रेहनां चाहीये. वाका आग्रह है; वातें वो विस्तारते समुझाते हैं. उपायका स्वरुपहि यह है. जो ब्रह्मविद्या सोहि यह समुझो.

याको शोधते हैं. छांदोग्यमें श्रुति है कि ब्रह्मचर्य पूरा करके कुटुंवमें शुचि देशमें" करके अंत यावदायुप ऐसा वरते तो ब्रह्मलोकमें जाते है. जहांतें पीछे नहि आते है. ऐसा कहा है. और यह तो परिव्राजकका धर्म कर्म दीखता है. वाकी स्थितिकी बात है तो गृहस्थका उद्धार होगा. यह यहां कैसे कहा?

सूत्र—कृत्स्नभावा द्गृहिणोपसंहारः ॥ ४७ ॥

अर्थ—सर्वमें भाव होनेतें गृहीमें उपसंहार.

विवेचन—यह दशा जंगलमें जा बेठे वा खाना पीना छोडे तोहि प्राप्त हो ऐसा नहि. मनका ये व्यापार है. घरमेंहि रही वियोगी, मुग्धा—पतिमें तल्लीन रहती है. गृहमेंहि रहे. लोभी, धनकेहि ध्यानी बने रहेते हैं—जब पुरी लगनी लगी तो देशकाल स्थिति वो गौण हो जाते है. अभ्यास है. सो बढाये तो वामें तो मनका काम है. वो मन सदा हमारे साथ है. फीर उनकों हमारा घर—यह भाव कहां है. उनकों तो वो मंदीर है. गृह जन नहि " भागवत " परिजन परिचारक है. वो सर्वमें वाहिका भाव, उनका व्यापारभी तो सेवाहि समझी जावे. वो एकभी काम विरोधक नहि सहायक है. तात्पर्य—सूत्र—कृत्स्नं भावात्—सर्व आश्रमोंमें वह विद्याका सद्भाव है. सर्वतें यह साधी जाती है. (व्यास पराशर वशिष्ठ आदि वैसेहि रहे) वातें गृहस्थमेंभी वाका उपसंहार हो सके ऐसे ऐसे गृहस्थ बराबर वर्तन करके गृहमेंतेहि परमपदकों जाते हैं. यह फीर और बडा आवश्यक खुलासा हमलोककों अति उपयोगी हैं. तो फीर गृहकों मंदीर बनानेमें—देर क्यों करनां ? हरिजन हो जानां अति सुगम सुखकर श्रेयस्करहि है.

यह सत्य है कि श्रुतिमें वो प्रकरण परिव्राजकका है. वहां ब्राह्मणपुत्र वित और लोककी इषणाओंको सर्वथा छोडके भीक्षाचारी रहें वो " पांडित्य मीलाके मुनि बना रहे ऐसा तृतीय विधान वाके लीये है. परंतु वो उन्हीके लीये है ऐसा नहि.

सूत्र—॥ मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ॥ ४८ ॥

अर्थ—मौन सरीख इतरकोंभी उपदेशतें ॥

विवेचन—जैसे उनके लीये " मौन " शब्द है ऐसे इतरके लीये

इतर शब्दतें. परंतु उपदेश येहि है. इतर और आश्रमीको "त्रयोधर्म स्कंधाः" ऐसा आरंभ करके "ब्रह्म संस्थोऽमृतत्वमेति" ब्रह्ममें श्रीहरिमें वाके कोइ रुप गुण विशिष्ट इष्ट आकारमें "सं" सुभकार "स्थ" स्थिर रहता—लगा रहता—अमृतत्वको पाता है. वोहि बात मुनि शब्दतें समझाइ गइ है. सर्व आश्रमीको "ब्रह्मसंस्थ" होनां. गीताजीके शब्दमें "मन्मना" होनां "मच्चित्त सततं भव" होनां करके प्रिय अर्जुनकों वाके प्रिय इष्टदेव श्रीकृष्णरुपनें कहा है येहि अंत उपदेश अंत उपाय और वो सर्वाधिकार है. ऐसाहि सुस्पष्ट वेदांतमें उपाय जो कहा वाका भी स्वरुप है. गीताजी भी तो वेदांतहि है.

उपर कहे वचनमें बाल भावसें रहेनां कहा हैं. वाका अर्थ समुझाते हैं. क्योंकि जब बडे बन गये तब "समर्थकों नहि दोष गुसाइ" की नाइ काम चारी होनां क्या! ऐसी शंकाके समाधानमें कहीं दीया है कि

[अनाविष्काराधिकरणम्]

सूत्र—अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ॥ ४९ ॥

अर्थ—आविष्कार न करके अन्वयतें.

विवेचन—बालक जैसे आपके कुलका मान—द्रव्यका मान न रखके सरलतासें सर्वतें सर्वदा सर्वथा वर्तता है. वो आपकी ओरतें आपमें यह श्रेष्टता है. ऐसा प्रकट न होने देके "आविष्कार" आपकी मति कृतिका प्राकट्य न करके" छुपे महात्मा रहते हैं. ऐसा "अन्वयतें" "विविदिषासन्" आज्ञा देते है. वातें सिद्ध होता है. क्योंकि यहतो बनहि नहि सकता की ऐसा पुरुष फीर पापी वा यथेच्छाचारी हो! वोतो सर्वथा स्वामीके परतंत्र आप आपका सर्व तन धन जीवन वाकी आज्ञानुसारहि बीताता है. कोइ ऐसा न हो जावेकि

प्रियतमकों प्रतिकुल दीखे ! संकल्पभीतो वाके अनुकुल करता है. प्रतिकुल आये तो रोकता है. लज्जा पाता है. श्रुति स्पष्ट है. “ नाविरतो दुश्चरितो ” ना शांतो ना समाहितः ” अकुशल दुराचारी अशांत मन वर्तन वालेको वो नहि मीलनेका ” उनकी लगनी वोहि रहती है प्रियतममें. कहां वो वात, कहां ये वात ! तेज तिमिर न्याय है. वेश्या सतिके आचारका तारतम्य है. अर्थात् वाल्य कहेतो आपकी प्रभुता कोइकोभी न समुझाके हम वडे हैं ऐसा मनमेंभी न लाके.

उपायके पीछेतो फलहि है. आचरण विषयमें जैसे पूर्व भ्रष्टाश्रम नहि होनां. पतन भये तो प्रायश्चित्तहि फीर नहि कहा. वैसा यहां यह सूत्रतें सदाचार, शास्त्राचार, शिष्टाचार, और वो आडंवर रहीत रखनां ऐसाभी समुझाइ दीया. पथ्य इशारेतें पुरी समुझादी. यह विरोधीतें तो वचनांहि चाहिये. जो हमारे वशके हैं वो पाप कीयेतें, कीये गयेतेंहि हम ऐसे भये ऐसे रहे हैं. वातें सर्वथा सर्वदा रुकनेका यत्न करना. फीर वैसा स्वभावहि वनाके उपायमें लगे रहेंगे. जो लगे रहेते हैं. उनकोंभी फीर एक वात है. वो लक्ष्में रखने जैसी है. वो अंत स्थितिकी है. अंत विरोधीकी है. सो कही दीयेतो यहां पादपूर्ण हो जाता है.

वामें दो विभाग होनेतें दो सूत्र है. शास्त्रमें शास्त्रीय उपाय दो प्रकारके है. “ नश्वर ” “ अनश्वर ” दोनोंके लीये सकाम निष्काम नामसें कर्म कीये जाते है. परंतु उनका फलकर्म वामेसांगोपांग भयेपर भी कभी सद्य प्राप्त होता है. कभी सद्य नहि होता. वातें शंका भी रहती है कि फल मीलेगा वा नहि ! शास्त्राज्ञाका पूरा पालन कीये तो जो कर्मका जो फल कहा है सो हैहि. नश्वर वा अनश्वर परंतु वाके साथ यह नहि भूल जावेकि वो इच्छा भयी, कर्म करने लगे. वाके पूर्व हम वहुत कर्म कर चूके है. उनमेंतें जो फल देनेके योग्य इश्वर

संकल्पसें भये. और उनका फल मीलनांहि निकी हो चूका है. तो वो प्रथमके कर्मके फल प्रथम मीलके उनको अवकाश लेने देके यह कर्मके फलभोगमें–अनुभवमें–आवेंगे. लौकिक न्यायसेंभी यह समझा जाता है. कोर्टमें दावा कीये तो पूर्वके दावेकी मुदत पड चूकी हो. उतने दीन यह मुकदमा चलनेका आरंभ होहि नहि सकता–पूर्वतें स्वीकृत कर चूके. निमंत्रण पीछेहि:नये निमंत्रणकों अवकाश है. वो यातें बडे हो वा छोटे भले हो वो चूरे–ठराव हो गये सो ठेरावहि है. ऐसे प्रतिबंधके कर्म बीचमें प्रस्तुत अप्रस्तुत दो प्रकार होते हैं. अप्रस्तुत प्रबलकों कहेते हैं. वैसे प्रबल प्रतिबंधके रहे तो वो भोग चूके. वाके अनंतर हमारे पुण्य कर्मका फल हमकों भोगनेको मीलता है. पुण्य कर्मका नाम " ऐहिक " है.

[ऐहिकाधिकरणम्]

सूत्र—॥ ऐहिकमप्रस्तुत प्रतिबंधे तद्दर्शनात् ॥ ५० ॥

अर्थ—ऐहिक अप्रस्तुत प्रतिबंधमें वाके दर्शनतें ॥

विवेचन—पुण्य कर्मके फल प्रबल प्रतिबंध मीटे पीछे मीलते हैं. ऐसा शास्त्र कहता है. प्रतिबंधक न रहे तो सद्य मीले. फीर वो प्रतिबंध कर्की भी निवृत्तिके लीये प्रथम कर्म करनां वा संग कर्म करनां चाहीये. उनकी निवृत्तिके भी उपाय है वो फीर विशेष उपाय है. प्रतिबंधक बराबर समझे तो बराबर उपाय हो सके. जैसे उद्गीथ विद्या कहीहि है. वो प्रतिबंधकका निरसन करनेवालीहि है. हमारी लौकिक रीतिसें कहो तो " हरिभजन " " नाम स्मरण " "जपादि" तें भी प्रतिबंधक हठते हैं. यज्ञ कीया और विमान आया ऐसा नहि होता है

वाका हेतु यह प्रतिबंधक है. यह भया सकामका, वोहि हिसाब मुक्तिके फलके लीये भी है. वाका उपाय उपासन रहेपर सर्वकों सत्य ब्रह्मका साक्षातकार वा समान अनुभव नहि होता है. सर्व संग दवा पाये पर जैसी बीमारी, सर्व कपडे संग धोवे पर जैसा मेल; ऐसे पाप भेदतें उपायका सफल होनांभी भिन्न भिन्नका लीप होता है. विरोधीका निरसन होनां चाहीये. प्रारब्ध पुरे होने चाहीये. जीनकें जीतनें हो जैसे हो. वोहि कहेते है.

[मुक्तिफलाधिकरणम्]

सूत्र—॥ एवं मुक्ति फलानियमस्तदवस्थाऽवधृतेस्तदवस्थावधृतेः ॥ ५१ ॥

अर्थ—ऐसे मुक्ति फलका भी नियम नहि वो अवस्था आये ते वो अवस्था धारण कीये तो ॥

विवेचन—वो फल प्राप्त होता है. विशुद्ध होनां प्रबल प्रतिबंधोका दुःख पुरा दूर हो जानां चाहीये. दो वेर अध्याय समाप्तीके लीये है. हम भी यहांहि समाप्त करें–इति.

तृतीयाध्याय चतुर्थपाद संपूर्णः



॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

चतुर्थअध्याय–प्रथमपाद.

तृतीय अध्यायमें साधनके साथ विद्याका चिंतवन कीया. पापतें बचके, वर्णाश्रमकर्मके साथ शमदमयुक्त रहीके, सतत चिंतवन कीये जानां. येहि मुक्तिका उपाय कहा. परंतु अभी वाकों और स्पष्ट करके अत्र विद्याका जो फल है सो कहते हैं. चोथा अध्याय फलके लीये प्राधान्य है. परंतु वाका उपायके साथ संबंध है. वातें वो उपायकेहि विचारके साथ आरंभ होता है. " ब्रह्मविदाप्नोति परम् " ब्रह्मकों जाननेवाला परम पावता है. " ब्रह्मवित् " ब्रह्मकों जाननेवाला; वो जाननां कैसा ? ब्रह्मके विषयमें जो शास्त्रमें कहा है वो तो दो अध्यायमें कही चूके फीरभी यह जाननां रहा. सो तृतीय अध्यायमें कहा–वो " ब्रह्मविद्या " उपासना–वो साधारण " ज्ञान " तें भिन्न है. एक वेरके वाके ज्ञानतें पाये मीलाये तो फीर यह उपासना अनेक प्रकार गुणोंके अनुसंधानपूर्वक हृदयमें–सूर्यमें–अक्षीमें–आदिस्थानमें दिव्य पुरुषाकारका चिंतवन कीया करनां. वा लीये आश्रमी रहे, और शमदमादिभी रखें. यह सर्व कहेनां क्या ? याका येहि सार होके वो ज्ञानसें मात्र जाननां. ऐसा वेदन नहि; किंतु " उपासन " ब्रह्मकी जो उपासना करता है. वाकाहि वारंवार चिंतवन कीया करता है. सो वाकों पावता है. यह श्रुतिका तात्पर्य है. क्योंकि सूत्रकारहि.

[आवृत्त्यधिकरणम्]

सूत्र—आवृत्ति रसकृदुपदेशात् ॥ १ ॥

अर्थ—आवृत्ति अनेक वेरके उपदेशतें.

विवेचन—ऐसा निर्णय करतें हैकि यह वेदनकी आवृत्ति वार-वार कीया करनी. सो उपासनाहि भयी. और वैसाहि और वहुत जगे आज्ञा देके वेदांतमें कहा है. वो शब्दकाहि उपयोगभी कीया है. जातें मात्र जानना सो वाके फलके लीये वस नहि ऐसा दृढ होता है. "ब्रह्मकी उपासना करो" कहींके "यएव वेद" वहांहि "वेद" एवं करके या प्रकार "वेद" कहेतो पूर्वक उपासनके साथहि ऐक्यार्थ है. ऐसा उपासना कीयेतो और जगे आज्ञा देते है. भगवान् कोन देवकी हम उपासना करे! सो देव कहो. वहां "यस्तंवेदसवह" एसे अनुसंधानतें वोहि उपासना सुदृढ होती है. वो उपासना श्रवण मननके पीछे कहनी होती है. सुने, माने; फीर वो आरंभ करें—वातें हि "श्रोतव्य" मंतव्य " के पीछे " निदिध्यासितव्य " एसा उपाय दीखाया है. और वो क्यों ? " द्रष्टव्य " के लीये—साक्षात् करनेको जो निदिध्यासन—ध्यान—वोहि उपासन् और " ततस्तं पश्यति निष्कलं ध्यायमान " वो निष्कलकों ध्यान वाले देखते हैं एसा स्पष्ट वचन भी है. अर्थात् पाया गयाकि जहां वेदके फलमें ब्रह्म प्राप्ती—मुक्ति कही है वो " वेदन " का अर्थ " उपासन "—" ध्यान " हि है. और वाका आवृत्ति की याहि करनी चाहीये. वोहिका नाम ब्रह्मविद्या. वोहि खास उपाय है.

सूत्र—लिंगाच्च ॥ २ ॥

अर्थ—लिंगतें भी (स्मृतितंभी.)

विवेचन—तद्रूप प्रत्यये—चैका संततिश्चान्यनिःस्पृहा, तद्ध्यान प्रथमैः षड्भिरंगै निष्पाद्यते तथा "एसे सर्वत्र घोष है. वातें" वेदन—कहे तो ध्यानकी आवृत्ति हि ठीक है.

अव वो ध्यान चिंतवन करनेमें कोन रूपका कहां, कोन गुण युक्त, कोन विद्यामें वो सर्व कही चूके है. एक आवश्यक वात रही

है–सो यहां कहेते हैं. जो वेदांतका ज्ञान है. वेदांत जानके वातें मीलाये तो वो ज्ञान पूर्वक ध्यान करनां चाहीये. वोहि चाहीये, वेदांतते मीलाये ज्ञानका उपयोग करनां वो ज्ञान क्या है? वेदांत ब्रह्मका ज्ञान देता है. ब्रह्म यह सर्व जगतहि है. सत कारणहि कार्य–एक रहा सो बहुत भया है. वो एक, वा बहुत? सर्वत्र, तीने वात हैं. अचित् वामें चित् वाका शरीरी आप "एक" नाम लीये तो वाका वेदांत ज्ञानतें बोध वो शरीरि पर्यंत होगा. वो वाका पुरारुप है–वातें वाकाहि नाम ठीक है. "मैं भी वोहि, और तुम भी वोहि" एसे यह सर्व जगत वोहि तबहि वोहि यह सर्व भया है. यह ठीक रहता है हैंभी वैसा हि है–तो फीर वेसेहि ज्ञानपूर्वक—अहंकार जायें स्वतंत्रता और ममकार जो मेरा शरीर वाका निवृत्तिपूर्वक-यह शरीर और जीव ब्रह्महि है कहे तो शरीरकों तो भूल्नां छोडनां है. वामेंतें तो रश्मियोंकों खींच लेनी है. फीर आपका जो अहंभाव रहे वाका भी वामेंहि धरनां, और वो मैं हुं एसा अनुसंधान बनानां. जो अहं नहि, वामेंतें अहंबुद्धि जो हठानां, त्यों जो अहंका भी अहं जा करके "अहं" भी है—वामें अनुसंधान लगानां की मैं नहि तुमहि जैसे सेवक वा स्त्री कहे कि मैं नहि आपहि हो आपकी देह है–आपका देह है. आपका जीव है. मेरा नहि अंतमें नहि आपहि हो. मेंभी आप और मेरा भी आप ऐसे वाकों आप गीनें सो यथार्थ है. आप अहं करके स्वतंत्र नहि है. तो फीर वो भूल क्यों बनी राखे? जो स्वतंत्र अहं है–वाहिकों अहं मुख्य माने. आपको वाके अंतर्गत, क्या विश्व मात्रकों वाके अंतर्गत, और फीर वातें आपकी ऐक्यता सो आपकी स्वतंत्र बुद्धिसे नहि. आप वाके है. वातें शरीरीके लीये नोकर, स्त्री, स्वामी पतिके लीये भक्तिसें बोलेकि–सबमें हां मेरा है वो कहे मात्र नहि–वैसाहि माने सेवें प्यारा गीनें–अनुभवे ऐसे सकल विश्वकोंहि नहि. वाके शरीरीकों भी अहं करके अनुभवनां

चाहीये. मैं सूर्य हों मैं मनुमैं ब्रह्म–तुम भी वो हो. यह सर्व ब्रह्म है. येहि तो वेदांतका–घोष है वोहि तो ब्रह्मका पुरा जय है. कि हम दा-वादार भिन्न "अहं" स्वतंत्र न रहै. किंतु वाके होके रहे भी–हैं भी स्वतंत्र नहि; है वाके शरीर करके है–सो वातें हैहि–वोहि है–येहि तत्वका यथार्थ " स्वरुप " है. वोहि यथार्थ ज्ञानपुर्वक यह उपासना करनी चाहीये–सूत्रकारके शब्दोंमें–

" आत्मेति तूपगच्छंति ग्राहंति च ॥

" आत्मा इति धारते है और स्वीकारते हैं. " वोहि तो हमारा आत्मा है " अहं " है. अहंका अहं है. ऐसा समझनांहि नहि. किंतु मैं शरीर–और वो शरीरी–में धन शेष और वो धनी शेषी में वाके लीये–और वो स्वामी–ऐसा अनुभव अनुष्ठानपर्यंत होनां चाहीये. उपासक ऐसी उपासना करतें हैं तबहि वो स्वतंत्र तत्व नहि. किंतु शरीरहि कहे जाते हैं जो है सो ब्रह्म है. ऐसा सबके लीये कहा जाता है. सर्व वाके परतंत्र–सर्वमें मुख्य–आत्मा वो–वो सर्वका एक आत्मा होकेहि, ऐसा सर्वात्मांहि " स देव " और " जगत, " रहा–और भया,–कहनां–उचित–वास्तविक है. ग्राहंति कहे तो शास्त्र वोहि अर्थको ग्रहण करता–स्वीकारता है. श्रुतियें ऐसाहि बोलती है. " सत आत्मा " वो " तेरा आत्मा " सर्वका आत्मा करकेहि बहुत स्थलमें पहिचान कराइ है. तो हमकोंभी हमारे आत्माका आत्मा करकेहि उपासना करनां चाहीये. वोहि " अंतर्यामी अमृत तेरा आत्मा दिव्य देव एक नारायण " करके श्रुतिवचन हैहि–तो उपासीताका वो आत्मा है. वो होके है. प्रथक् आत्मा और प्रेरिता उपासक, और उपास्य देव, और सेवक होके एकका दुसरा आत्मा–शरीर–वाके साथ, तुम और शरीर, वो दोनों होके करना है मीले तो–शरीर शरीरी मीले तो–एक नाम–एक पुरा रुप–ऐसे दोका ऐक्य दोनो रही–के करना है. उपासकको आपके उपास्यके

लीये भाव बना. रहे कि में कहां कोन–और तुम कहां कोन! वोभी अत्र तो भात्र वात नहि रही. वाकी प्रतिती वो प्रकट होके करता है. वो सत्य अनुसंधान है. ऐसा अनुभव कराय देता है. वो करनेकोंहि तो यह उपासना है वाकी या प्रकार आवृत्ति करनी चाहीये.

जैसे सेवामें देवोंकी और सर्वेश्वरकी वैसे उपासनामेंभी परमात्माकी और शक्ति शरीरकी और आपकी वेदांतमें कही है. जो आपकी नाहि हो सो " प्रतिक " कही जाती है. वो आप जगदात्मा नहि–वातें सूत्रकार चेता देते हैं कि

(प्रतिकाधिकरणम्)

सूत्र—न प्रतिके न हि सः ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रतिकमें नहि वो नहि है.

विवेचन—जैसे " मनो ब्रह्मेत्युपासीत " मनकों ब्रह्म करके उपासना करो ऐसा वचन है सो मन ब्रह्म नाहि किंतु ब्रह्मका शरीर है. वातें वो मेरा आत्मा है. ऐसा अनुसंधान करके वाका उपासन नहि करनां. वाको ब्रह्म कहे तो—

सूत्र—ब्रह्मदृष्टि रुत्कर्षात् ॥ ५ ॥

अर्थ—ब्रह्मदृष्टि उत्कर्षतें.

विवेचन—मनमें हमारे लीये तुम ब्रह्महि हो–जो काम ब्रह्म देता है सो तुम द्यो–जैसे अमलदारको सरकार कहे–वैसे उनकों पुज्यत्व, उत्कर्षकों लेके मानार्थ है.

वेदांतमें सर्वत्र सुप्रसिद्ध उद्गीथके प्रकरणमेंभी या प्रकरणको लेके एक शंका उठ सकती हैं वातें वो उठाके समाधान करते हैं.

" जो ऐसा तपता है वो उद्गीथकी उपासना करो " ऐसे कर्मके अंगकी उपासनामें कहा है वहां उद्गीथमें आदित्यादि मति करे कि आदित्यादिमें उद्गीथदृष्टी-निचमें उंच दृष्टी करनी तो उद्गीथतें फल है तो वोहि आदित्यतें श्रेष्ठ होनी चाहीये. ऐसी शंकाके समाधानमें.

(आदित्यादिमत्यधिकरणम्)

सूत्र—आदित्यादिमतयश्चांग उपपत्तेः ॥ ६ ॥

अर्थ—आदित्यादि मति अंगमें घटीत है.

विवेचन—अंग कहे तो ऋतुका अंग जो उद्गीथविद्या वामें आदित्य मति करनी वो उत्कृष्ट है. वो देवके आराधनतें फल उनके द्वारा मीलता है.

येहि हिसाब इतर देवताका भी समझलेकि उनमें उत्कर्षतें ब्रह्म-दृष्टी भले करे. उनको सर्वेश्वर कहे, परंतु वो सर्वेश्वरहि है, ऐसा नहि समझे. यह यथार्थ-ज्ञान है. यद्यपि मुक्तिका साधन तो यह मतिक उपासना होहि नहि सकती. वा लीये आगे कहेंगे. वो वो प्रकरणमें देखे तो फलसेंहि स्पष्ट हो जाता है. " तमेव विदित्वा " वा लीये तो वाहिकी उपासना जैसे गीताजीमें खोलके पुजन आराधन भी वाहिका कहा है. वैसा यहां उपासना प्रसंगमें कहे तो मुक्तिके लीये उपासना तो जो हमारा सत्य आत्मा अंतर्यामी अमृत है वाकी हि करनी.

अब जब वो वारंवार करनां ठहरा तो प्रसिद्ध है कि—

(आसीनाधिकरणम्)

सूत्र—॥ आसीनः संभवात् ॥ ७ ॥

अर्थ—बेठके संभवतें.

विवेचन—डोलते रहे. सोते रहे तो जैसा न हो वैसा बैठके कीये तो होता है. यातें वो उपासना करनेमें बैठनेका विधि है. बैठके भी चित्त कहीं चला जाया करें तो क्या ?

सूत्र—ध्यानाच्च ॥ ८ ॥

अर्थ—और ध्यानतें ॥

विवेचन—वाकाहि अनुसंधान कैसा.

सूत्र—॥ अचलत्वं चापेक्ष्य ॥ ९ ॥

अर्थ—अचलत्व अपेक्ष्य है.

विवेचन—ठीक कार्य हो सके.

सूत्र—॥ स्मरंति च ॥ १० ॥

अर्थ—ऐसा स्मृति कहती है.

विवेचन—जैसे " शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य " आदि गीताजीमें है. तात्पर्य.

सूत्र—॥ यत्रैकाग्रता तत्रा विशेषात् ॥ ११ ॥

अर्थ—जहां एकाग्रता वहां अविशेषतें.

विवेचन—चित्तकी एकाग्रता जहां रह सके वो देशकालकों पसंद करे. वो जितनी चित्तकी एकाग्रता उतनी शीघ्र फल प्राप्ती जैसे पढनेमें अनुभवते हिहं.

(आप्रयाणाधिकरणम्)

सूत्र—आप्रयाणात्तत्रापि हि दृष्टम् ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रयाण पर्यंत तत्रभी देखा है.

विवेचन—दो चार दीन मास नहि अंतकालपर्यंत नया. तबभी ध्यान बना रहेनां चाहीये. अंतकालपर्यंत कहेतो मध्यकालभी तो आयाहि " मच्चित्तः सततंभव " यह सार है. यह उपासनाका प्रकार यह पादमें विशेष विचार है.

यह विधिवार्ता ठीक है. आरंभसें अंत पर्यंत आवृत्ति सो आप्रयाणात् कहा सो चुकनांहि चाहीये. प्रमाद कीये तो हानी है प्रमादका सर्वथा संभव है. बाकी असल बात यहकी जब सर्वेश्वर श्रीमन्नारायणके परत्व सुलभत्वका संपूर्ण भान हो जाता है. तब इतरमें वैराग्य और यामें राग ऐसा हो जावेकि वाकाहि चिंतवन फीर भावे. और ज्यों ज्यों अधिकार बढे त्यों फीर वो विना रहा नहि जावे. क्योंकि वोहितो आनंदघन है. वो आनंदके सरीख कोइ आनंद होइ नहि सकता. बाकी जब छायाभी आने लगीकी फीर वो छूट सकताहि नहि. वो हृदयमें वा अर्चामें मंगल मूर्तिकों पूरती मांनके वामें वा प्रकार एकाग्रवृत्ति लगाये रखेतो वाका प्रभाव ऐसा हैकि जातें वो आप और भोगकों अप्रिय करके आप प्रिय हो जावे. और तुच्छ है और यह रस है. ऐसा भान भयाकि औरमें विराग और यामें प्रेम ज्यों अधिक प्रयास उपासन त्यों अधिक औरमें विराग और यामें राग. त्यों याका अधिक अनुभव. वो अधिक आनंदप्रद यों बढताहि जाता है. विषय अपूर्व और अनंत होनेतें आप्रयाणात् तो विधि है. परंतु वो यामेंहि निमग्न हो जाता है. नदी समुद्र मील जाते हैं. ऐसा होता है. यातें आरंभसें वाका चिंतवन वो ज्यों अधिक त्यों अधिक लाभ है. वाके रहीत जीतनां काल गुमाया उतनी हानीहि. त्यों सर्व समयमे कुछ करेंगे तो सही. अन्य विचार वाके विरोधीहि. यातें ध्यान एकाग्रता अचलत्वतें प्रथम अभ्यास पाडनां है. त्यों औरतें सावधानीभी रखनी. जब सर्वेश्वर स्वीकार कर लेते हैं तब फीर पढ-

नेके भयकी बात नहि रहती है. वो स्वबल परबल, स्वगत परगत; उपाय उपेय और, और उभय एक, ऐसे बहुत प्रकार है. उपासनमेंहि यह एक प्रकार है कि शरण होके वाका उपासन-अनावृत्ति कीया करे वो रहस्य है. ब्रह्मविद्या खास गुरुगम्य है. सर्वमें जीवन स्नेह प्रेम, वो उत्पन्न भया तो फीर वामें चिंतवन रहेनां उपासना अविच्छिन्न रहेनी बडी बात नहि. याहिका नाम ज्ञान-वाके उपाय वर्णाश्रम धर्म यज्ञदान शम दम कही चूके हैं. अब फीर एक बडी बात विचारते हैं कि यह उपाय क्यों करनां पडता है. वातें क्या होता!

हम बद्ध हैं. प्रकृतिमें जुडे हैं. वाकोंहि [illegible] हैं. वामें पांच विषय हैं. वाकी इच्छा करते है वा लीये यत्न करते हैं. वाते वो मीलते हैं. परंतु वो श्रममें जो मीला सो नश्वर, और अंत [illegible] लगा जाता है. वो फीर वैसीहि इच्छाकां बीज [illegible] है. ऐसी कौनसी वासना हमकों कबसें लगी है! और अभीभी [illegible] फल [illegible] है.

फीर वो इच्छा पूर्ण करनेमें हम [illegible] नहि रही सकते हैं. न्यायके साथ अन्यायसें वो [illegible] औरका द्रव्य [illegible] भी करते हैं. वातें सर्वेश्वरकी [illegible] उत्पन्न होती है. वाको पाप कहेते हैं. जैसे पुण्यके [illegible], वैसे पापका [illegible] कदमें सर्वेश्वरके प्रति [illegible] तो क्या जानें! यदि [illegible] तो पापहि बहुत [illegible] स्वल्प ऐसाहि [illegible] है. यह हमारे कर्मोंके [illegible] भोगवना है.

अब ऐसे [illegible] "कर्म" नाम [illegible] पूर्व प्रारब्ध, और [illegible] संचित प्रारब्ध. [illegible] दिक्कालहि [illegible] कर्मों [illegible]

कर्म भोगनेको एक देह अमुक कालके लीये मीलती है. वाका नाम प्रारब्ध. वो हम जो अभी केदमें है वा लीये न्यायाधिशके ठेराव; जो अभी बाकी मुकदमे है सो संचित, और जो अब यहां केदमें रहे तुफान कीये जाते है–और जीनकी तातकालिक सजा नहि पाते है वो क्रियमाण हमारेहि लीये है. जुना करज हालमीली खरची–और नया करज बनाते कुछ कमातेभी है. यह कर्मका हिसाब है. वो खातावही सर्वेश्वरके संकल्पमें है. हम कीये भोगे मरे जाते है वातें बंधनमें घटमालमें संसारमें वहेते हैं. वद्ध है. अब यातें हमकों छुटनां है. प्रारब्ध हमकों खरच है. वो हमाराहि है. यद्यपि वामें त्रितापादि है तो भी शरीर साधन समय ऐसा है कि जाका उपयोग प्रारब्ध भोगनेके साथ जैसा चाहे वैसा कर सके. सर्वतें श्रेष्ट उपाय छुटनेके लीये ब्रह्मविद्या है. वो सविधि सदाचार्यद्वारा प्राप्त भयी तो वाकाहि इतनां महात्म्य है कि वातें संचित मात्र नाश हो जाते है; जुना करज माफ, जुने कच्चे काम नहि चलानेका ठहरता है. अब प्रारब्धमें नये भी तो होते हैं सो येहि उपायमें बराबर लगे रहे तो हमको वो नहि भोगाये जावेंगे. वा लीये हमारे पर मुकदमा न चलेगा. यहांके शब्दोंमें कहे तो यह विद्या जो यथाविधि हो वो वाका उतनां महात्म्य है कि पूर्वके अघका नाश, और उत्तरके कृत्यका असंश्लेषहि रहेगा. प्रारब्ध तो भोग चुकेकि छुटी पाये. क्योंकि उपासना तो कीयेहि जाना है. यामें आप्रयाणात् लगेहि रेहेनां है कहेनेका हेतुहि यह है कि वहांलो हम संपूर्ण छुटनेके योग्य हो जावेंगे, वा छूटनेके योग्य होहि गये है. अब इच्छापूर्वक नये और कर्म न करे तो वो यहां पादसमाप्ती पर्यंत समुझावते हैं कि यह विद्या ठीक सीखके आप्रयाणात् साधे तो हमारे बंधन-इतने प्रकारके हैं और उनका यह विस्तार है. जैसे आरंभ करे तो देखो.

(तदधिगमाधिकरणम्)

सूत्र—॥ तदधिगम उत्तर पूर्वाघयोरश्लेष-
विनाशौतद्व्यपदेशात् ॥ १३ ॥

अर्थ—वो हेहि कि उत्तर पूर्व पापोका अश्लेष विनाश वे सब-
कहेनेतें ॥

विवेचन—श्रुति कहती है "तद्यथा पुष्कर पलाश आपो नश्लिष्यंत एवमेव विदि पाप कर्म नश्लिष्यते " जैसे कमलपत्रको जल नहि वी लगता है तैसे ऐसे उपासककों पापकर्म नहि वीलगते हैं यह तो जो उपासनमें लगा रहता है वाकें उत्तर—क्रीयमाण अब जो प्रमादतें हो जावें वो कर्म नहि लगनेके लीये और जो पुराने उत्तर संचित हैं उनके लीये " तद्यथेपीकतुलमग्नौ मोत मद्व्यंते एवं हास्य सर्वे पाप्मनः मद्व्यंते ". जैसे आगमें पडा घास फूस जल जाता है वैसे याके सर्व पाप जल जाते हैं. यह कोन कारता है. कैसे जलतें है. कपडा जलमें रहे तो भीगता है. वामेंतें नीकालके धूपमें रखे तो सुकता है. हम जाडेमें जलमें घुसें तो कांपते है. ठंडे हो जाते है. धूप वा आगके पास आये तो वो शीतता नहि रहती है. वैसे हेय प्रकृतिका सहवास—जो अधिकारी आपके कीरण—रश्मीयोंतें इन्द्रियद्वारा छोडके—परमात्माकी और जोडता है वो हेय प्रत्यनिकके महात्म्यतें वो विरोधीका निरसन होता है. आग भीतरहि है. वो प्रकटी तो फीर कीतने काष्ट है उनका क्या हिसाव! वो अंतर्यामीके संपर्कमें हमकों लगे रहेनां उतनांहि हमारा कृत्य है वो यद्यपि अल्प दीखता है. परंतु जब वाके महात्म्यका विचार करे तब यह सर्व पाप नाश हो जावे—वोभी अल्प वात दीख पडती है ऐसा वाकीहि और लगे रहेनां वो विना प्रेम नहि होता वो आप ऐसा मेष्ट है यों जानें मानें विना वाके संग ऐसें वृत्ति लगा

दीये बिना वो संबंध नहि बनता. जीनकों ब्रह्म प्रिय हो गया, जो मुमुक्षु है. फीर सविधि उपासनामें लगे. बस समुझा गयाकि उनके पूर्व उत्तर पाप भगे और सीलगे. परमात्मनिमित्त परमात्माकी आज्ञापालन करके कर्म कीये तो वो ऐसा भाव ज्ञान खोलता है कि जातें वो प्रिय हो. वातें विरुद्ध कर्म कीये तो वैसी बुद्धिं करता है कि जातें पाकृत प्रिय हो. हमारी कृतिकों लेके वाका कदरमें प्रीति अप्रीति वाका फल है यह ज्ञान प्रेम वाका परिणाम कर्मोंका नाश है. ज्यों सेवा अधिक त्यों कृपा अधिक त्यों सिद्धि समीप वोहि बात वातें विरुद्ध व्यापारकीभी समझ लेनां. यह सार है.

जैसे पापका वैसेहि पुण्यका—कर्ममें उभयका समावेश है. हमतें सदा बुराहि मात्र होता है ऐसा नहि. तो जो उत्तर पूर्व अघका न्याय वोहि इतर प्रकार कर्म पुण्य उनकाभी.

(इतराधिकरणम्)

सूत्र—इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ॥ १४ ॥

अर्थ—ऐसेहि इतरकाभी असंश्लेप पात भये तो.

विवेचन—देह पात भये तो उनका नाश हो जायगा. यह ब्रह्मविद्याका उपासक आपके लीये कुछ भी खास नहि करता है. वो तो आपके आत्माका शरीर बनके उपासना करनेवाला है. वा तें जो करता है सो अब वाके लीये वाकी आज्ञानुसार वाके फल वाको अर्पण करता भया. वामें वाको पुण्यकी न स्पृहा है. त्यों जो पुराने पुण्य हो सो भी वाकों परमात्माकी प्राप्तीमें तो प्रतिबंधक होवे. वातें वो चढेगा भी नहि. न वो रहेते भी है. देह छूटाके सबका फेसला “ क्षीयते चास्यकर्माणि ” “ पुण्य पापे विधूय ” वो शुद्ध पूरा होके सिधाता है. यह संचित क्रीयमाणका ठराव है. ऐसा सुदृढ करते हैं.

[अनारब्ध कार्याधिकरणम्]

सूत्र—॥ अनारब्ध कार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः १५

अर्थ—अनारब्ध कार्यमेंहि पूर्वमें, वो अवधिमें.

विवेचन—यह सर्व नियम जो प्रारब्ध कर्म नहि हैं उनके लीये हे अनारब्ध कहेतो संचित बाकी मुकद्ये. जाका हिसाब देनांहि, ऐसा अभी ठेराव नहि कीया, क्योंकि यदि चेतन चेते और उपासना कीये तो वो माफ भी कीये जावे. और फीर जो बाकी प्रारब्धहि रहे सो तो देहकी अवधिमें नाश पाते हैं. याते यह नहि ठहरता कि वो अधिकारी कर्तव्य तें भी रुक जावे ? वो सर्वेश्वरकाहि भया तब तो वो सर्व नियत काम आपकेहि समझके अवश्य करे. नोकर और पुत्र, दासी और स्त्रीका तारतम्य फीर कर्तव्यमें आता है. वो कर्मोंको क्यों छोडे! और अधिक प्रेमसें करे.

(अग्नि होत्राद्यधिकरणम्)

सूत्र—॥ अग्निहोत्रादि तु तत्कार्य्यायैव त-
द्दर्शनात् ॥ १६ ॥

अर्थ—अग्निहोत्र आदि तो वो कर्तव्य होनेंतेंहि वैसा द-
र्शन होनेंतें. ॥

विवेचन—अग्निहोत्रादि कहे तो नित्य नैमित्तिकादि वर्णाश्रमोचित और और भी जो जब बन सके वैसा हो सो साविधि सप्रेम करनेहि चाहीये. नहि कीये तो हानी हैं. मलीनता आवेगी बढेगी. प्रभुकी अप्रीति होगी. अधिक कीये तो सद्य विशुद्धता, प्रभु कृपा अधिक और शीघ्र होगी. उपासनाके उत्पादक और उपासनाका जीवन तो येहि है. आंच लकडीतें है. वो हठा दीये वा न लगाया कीये तो अग्नि कहां फीर वा विना वाकी सिद्धि कैसी !

सूत्र—॥ अतोऽन्यापि ह्येकेषा मुभयोः ॥१७॥

अर्थ—यातेंहि अन्योंका भी एकमें उभयका.

विवेचन—यातेंहि औरभी जो जो भले कर्म बन गये या कीये गये. उनकों फीर भोगनां नहि पडेगा. एक शाखामें पुण्य पाप उभयकी व्यवस्था कही है. की पुण्य सुहृदकों और पाप द्वेषीकों मीलते हैं. वो जैसे अश्लेष विनाशका यह रस्ता है. वैसा उनका भी समज लेना. शेष तो रह ही जावेंगे सो.

सूत्र—॥ यदेव विद्ययेति हि ॥ १८ ॥

अर्थ—जो विद्या करता है.

विवेचन—यह उद्गीथ विद्या होनेकाहि प्रयोजन है. परंतु यह डर नहि कि वो भोगनेहि पडेंगे. वो सुहृद भोगेंगे. अब रहे प्रारब्ध सो.

(इतरक्षपणाधिकरणम्)

सूत्र—॥ भोगेन त्वितरे क्षपयित्वाऽथ संपद्यते १९

अर्थ—इतर भोग करके खपाईके फीर पाता है.

विवेचन—प्रारब्ध तो भोगनेकोंहि है वो भोग चूके पूरे येहि रस्ता है. फीर वोहि परमज्योति परमप्रिय परब्रह्म परमानंदकों पूर्ण विशुद्ध होके जाका ऐसी आतुरता तें सतत चिंतवन ब्रह्मविद्या तें करते रहे—वाकों पाये तो सब पाये. अनिष्ट निवृत्ति तो हो चूकती है. फीर इष्ट प्राप्ती भी भयी. वो अनंत है.

वो अनंत करणतें अनंतकाल अनंत प्रकार भोगा करें. कब कैसें होके कोन रस्ते सें कैसें जाके वो अब देखे आगेके पादमें. यहां तीनों प्रकार कर्मोंकी व्यवस्थाके इतिके साथ अधिकारीके संसारका भी इति. वैसें पादकों भी इति अबचले परलोककों. बस.

इति प्रथम पाद चतुर्थ अध्यायः ॥

॥ श्रीमतेरामानुजायनमः ॥

चतुर्थ अध्याय द्वितीयपाद.

यह मुमुक्षु जो अपने प्रयासमें विजय पाता है, वाकों "विद्वान्" वेदांतमें कहेते हैं–ब्रह्मज्ञानी, अनन्य भक्त, भागवत, महात्मा–यह वाके पर्याय है. अब वो जब संसारतें–छूटते हैं तो कोन प्रकार–सो कहेते हैं संसारतें छुटनां सो संसार तो अनादितें अनंतकाल प्रवाहरुप बहा जाता है. भ्रष्टी प्रलय भ्रष्टी हहि–वो घटमाल वहनां बद्ध चेतनोंका प्रकृतिके पूरमें है. वो वो जीवकों आप आपके–लीये प्रकृति सूक्ष्मरुपमें लगी है वो वैसेहि वाके साथ लगे हुवेहि हैं. सो वाकौंहि आप जानते हैं. जब वो आप नहि–आप उनतें भिन्न श्रेष्ठ तत्व हैं और वैसे हो सकते हैं उतनांहि नहि यह तो संयोग यद्यपि अनादि परंतु सान्त है. परंतु एक औरकाभी हमकों अनादितें योग है–जो कभी "सान्त" नहि हो सकता–वो परम तत्व हमतेंभी श्रेष्ठ हैं. उपादेय हैं. ऐसा समझके वो प्रकार तत्व त्रयके ज्ञाता–प्रकृति जीव और ईश्वरके वो तीनों अभी यह एक नाम रुपवाले जो हम कहे जाते हैं उनमें अनादितें हैं. वामेंतें जो एककों छोडे तो–एकतें छुटे तो–यह संसार भ्रमणप्रवाहमें वहन हमकों न रहे. वो मात्र हमकों जो वाका भाग लगा रहेता है वातेंहि अलग भये तो वो सूक्ष्म रहे वहांलोंहि यह स्थूल फेर फेरके आता है. वो मानोंकि बीज है. वोहि छुटनां चाहीये. वोहि छोडनां कठीन है. यह स्थूलतें छुटनेको तो पैसेका विष बस है. जब तत्व त्रयका ज्ञान होता है तब हम मध्यमें है. उपर प्रकृति और भीतर परमात्मा वो एक और प्रकृति, और दुसरी और परमात्मा है. जाकों चाहे वाकों पावे. बीजरुप संबंध जैसे बहिर्दल प्रकृतिका है तैसे शरीरी धारक कर-

अंतर्दल परमात्माकाभी है. नया संबंध एकतेंभी नहि बांधनेका है. संबंध दोनोंका बना है. परंतु दोनोंकों तेज तिमिरवत् परस्पर विरुद्धता स्वभावसिद्ध है. वामें प्रकृतिक्षरण और अल्प फल देनेवाली-और ब्रह्म अनंत और स्थिर फलरुप है. वातें प्रकृतिकों छोडें-और ब्रह्मकोंहि मीलावें ऐसा निश्चय जो करचूके वो फीर वा लीये उपायका आरंभ करते है. वो चहते हैं हम या प्रकृतिसंबंधतें छुटे. उनका नामहि मुमुक्षु. वाका कोईभी प्रकार नया संबंध तो नहि चाहते, किंतु जूना है सोभी सदा छुटे यह प्रयास है. वडा संबंध देह और वा करके जो धन जन सामान उनका है वो छोडनां सद्य नहि बनता. बनानांभी नहि. उनकी जरुरत है. सूक्ष्म संबंधसें छुटनेमें वा साधन सहायक है. परंतु फीर वो रहीके छुट गये सरीख निमिषमें हो जातें हैं. देहमें अहंभाव है कि मैं अमुक कूलवंश ज्ञाति विद्या धन-युक्त. वो भाव निकाले. वो मैं नहि. वो तो देहको लेके वामेंमें वसाहों. वातें वहांलों वो उपाधीकों लेके औपाधिक हैं. जैसे नोकर समझेकि मैं " न्यायाधिश " स्वभाविक नहि तैसे-जैसे गुमास्ता समझे में शेठ नहि तैसे आपकों देहमेंहि परमात्माका सेवक दास देहतें भिन्न देहहि वाकी समझे. फीर देहके जो धन सामान जन उनका तो कहनांहि क्या! हम शेठ नहि तो दुकान शिल्कि गाडी घोडेनोकर हमारे कहांसें! हमारे लीये क्यों? यह स्वस्वरुपज्ञान भया कि ममकार गया-और सर्व सर्वेश्वर हमारे स्वामीका है ऐसा विचार भया. वस या प्रकार कल में निश्चयहि हो गया कि हम शेष और परतंत्र-और परमात्मा शेषी स्वामी. हम और हमारे सर्वका है कि सर्वका संबंध हमारा करके जो माना रहा सो छुटा-वाके साथहि वडी छुटी स्थूल मात्रतें पाये. अब वो हमारे नहि किंतु हमहिकों दीये गये सोंपे गये हैं. हमहिने चाहीके मीलाये हैं तो उनका तिरस्कार करनां नहि.. न वो सर्वथा हो सकता-न करनां

उचित है. कही चुकेकि उनकों हमकों सूक्ष्मतें छूटनेमें गरज है. फीर वो मालीकने हम वाके-होके वाके कार्यके लीये सोंपें हैं. फीर उनतें भागे तो भी हमकों मालिकके सामनेहि जाके खडा होनां होगा तो जवाब देनां पडेगा-वातें वो हमारी वस्तु नहि. हमारे लीये नहि तो उनका उपयोग अहंकार ममकारपूर्वक जैसे यथेच्छ करते रहें वैसे वाहिकी वस्तु हैं तो वाकीहि आज्ञानुसार वाकेहि लीये करे कहांलों ? जहांलों वो सब रहे जैसे रहे वैसेतें; जीतने रहे उतनेतें; हमारा काल यह देहमें नियतहि है. वो पुरा भयाकि वो संबंध छुटेगा. परंतु उत्तम लाभ ये होगाकि वातें हम वो सूक्ष्म बंधनतें भी छुट जावेंगे. कही गयेकि वो कहेनेको सूक्ष्म. परंतु कोटानकोटी भवलों भोगे उतनें कर्मोंके बीज है. वो संचित है. वो कही गये न्यायतें यह वर्तनतें परमात्मा प्रसन्न होकर हमकों उनतें छुडा देता है. छोड देता है. कोन प्रकार सो देखें. अभी तो स्थुल सूक्ष्म उभय संबंध लगे है. जब सेवारुप जीवनतें क्रीयमाण होते नहि. और संचित माफ हो चुके है. वातें प्रारब्ध पुरे होतें है कि हमारा यह संसारप्रवाहसें यह धाम देह सेवा ग्रामसें वा देशसें मात्र नहि, चौद-लोक ब्रह्मांड, वाके उपरके सात आवरणतें भी नीकल जानां होता है. स्थुलमेंतें तो यहांसेंहि निकलते हैं. किंतु सूक्ष्ममेंतें भी विरजा पहुंचे कि सर्वथा सर्वदाके लीये छुट जाते हैं और विशुद्ध (पुण्य पापतें धोवायके) निरंजन अष्टगुणयुक्त होके वो देशमें हम प्रियतम जो अभी भीतर होके भी हम देख नहि सकते है वाकों पाते हैं. जो वाके समान हो जातें हैं. वो यहांसेंहि हमको क्रमसे छुडाता वहां पहोंचावता है. और परम समानता सो भोगके साथ देता है. और वो सदाके लीये-येहि अब वेदांतमें कहेनां शेष है येहि मुक्ति मुक्ति-फलस्वरुप है. यह तीन पादका सार है. अब विस्तारतें देखें.

. स्वतंत्र तो हम है हि नाहि. हमारा देह हाथ पेर वाणी मन कहे. परंतु वो हमकों सोंपे गये हैं. स्वामीके है-सो जब वाका संकल्प हमकों वो सर्वतें छुडावनेका होता है. तब आरंभ यों होता है कि वो इन्द्रीयें जो शरीरमें रहीके वाहिर काम करती रही–भिन्न भिन्न स्थानमें वसती रही सो जैसे अमलदारकी स्वारी उठनेकी हो तो पहेरेवाले महेलके वो वो भागकी आपकी जगे छोडके एक स्थलमें उपरीके पास और वो आपके अमलदारके पास एकठे हो जाते हैं. फीर वो गाम धाम वा कोटडी ऑफिसकी उनकों दरकार नहि की वाका क्या होगा. वा उन्हीके लीये तंबु खडा कीया गया रहा सो अव गीराया जायगा. वाके पूर्वहि वो चलनेको तैयार भये यह कृत्य जीवकी ईच्छा वा शक्तितें नहि होता, सर्वेश्वरके संकल्पतें होता है. यह जगामें वाहिरें भेजे–सर्व-नोकरकों सोंपे रहे, सो अब वोहि बुलावे तव जा सके सो बुलाता. है. प्रथम सुत्रकार कहेते हैं. वडी वडी वातें कह देते हैं.

(वागधिकरणम्)

सूत्र—वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॥ १ ॥

अर्थ—वाणी मनमें दर्शनतें और शब्दतें.

विवेचन—वाक्इन्द्रीय–अपनी मुख कोटडी छोडके अपने ज-मादार मन जो देहके महेल मध्य भागमें रहेते है उनके पास जाके हाजर हो जाती है. चले अव पीछे वो कोटडीमें नहि आना है. ऐसा श्रुति कहती है. क्यों कि वाहिर देखने वाले तो अव वो मरने पडा बोलता नहि हैं, उतनां देखते हैं. भीतर क्या भया सो केसे जांने? श्रुतिप्रमाण है.

"अस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे

प्राणस्तेजसि तेजः परस्या देवतायामिति " हे सौम्य ! यह मरजातें भये-पुरुषकी वाणी मनमें जा मीलती है ! मन प्राणमें, प्राण तेजमें, तेज पर देवतामें यह क्रम कहा. बस एक वाक् इन्द्रियहि क्यों जमादारके पास जावे.

सूत्र—अतएव सर्वाण्यनु ॥ २ ॥

अर्थ—ऐसेहि सर्व पीछे.

विवेचन—जब मकान छोडनाहि भया तो जैसे एक सिपाहीनें कीया, वैसेहि सर्वनें एकके पीछे दुसरी तीसरी सर्व इन्द्रि इकठी-भयी मनके साथ, मनकों जा मीली की हम सर्व तैयार हैं. मन एकीला मकान नहि छोड सकता. एक और बडे अमलदार है. जीनका इन सर्वकों संबंध है, वो रहे तो यह रही सके, वो गये तो वो जावे, वो कोन ? जाके पास मन साथ सर्व इन्द्रियें जाके जाकों मीलती है. वो

(मनोऽधिकरणम्)

सूत्र—तन्मनः प्राण उत्तरात् ॥ ३ ॥

अर्थ—वो मन प्राण उत्तरतें. ॥

विवेचन—वो सर्व इन्द्रिययुक्त मन जमादार आपके सर्व सिपाइ साथ हजूर सेक्रेटेरीको जा मीलते हैं तो उनकी सहायी पोषक निर्वाहक है. मनके पीछे उत्तर शब्द प्राण श्रुतिमें है. " मनः प्राणो " वातें सूत्रमें " उत्तरात् " शब्द है. यह सर्व सूत्र होनेमें जो सूत्रोंका मुख्य उद्देश श्रुतिकी शंकाओंका निरसन करनां—सो यहां साधा जाताहै कि यह एकमें दुसरी लय सो नाश हो जाती है क्या ? वाके समाधानमें सूत्र है कि नहि एकके साथ दुसरी मीलके वो दोनों संग जाती है.

जैसे एक गंगामें यमुना मीली. फीर दो भये पर आगे गंगा चली. फीर गोमती मीली कहे तैसे अत्र सबको संग लेके प्राण-प्रधान होके वो.

(अध्यक्षाधिकरणम्)

सूत्र—सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ—वो अध्यक्षमें वाका उपगम आदितें.

विवेचन—श्रुतिमें " प्राण स्तेजसि " है वो तेज केवल पंच महाभूत नहि. किंतु जीवें विशिष्ठ वोहि जीवका सूक्ष्म शरीर वामें प्राण जा मीलते हैं, यह खुलासा करनेको सूत्रकार " अध्यक्ष " में वो प्राण जा मीलते हैं. ऐसा कहते हैं. और वैसा उपगम श्रुतिमें है. वो प्रमाणका स्मरण करावते हैं. " एवमेवममात्मानमन्तकाले सर्वे प्राणा अभि समायंति " ऐसे सर्व प्राण सर्व नोकर, जमादार, सेक्रेटेरीके साथ अध्यक्ष महेलमें रहा. मुख्य अमलदार जाको अब उठनांहि है. जा लीये तंबु खडा कीया गया रहा—जाकी नीमनोकके साथ यह सर्व नोकर रखे गये रहे. वो सर्व कामचलाउ रखाथा अब कमी होता है. भये उपरी और तावेदार सर्व इकठे. अब यहां श्रुतिमें तेजसि है; सो वामें जीव है. वो जीवका सूक्ष्म शरीर है. जो यह स्थूलके छुटेपें भी अनादितें नहि छुटता. वो तेजकाहि बना है. एकहि तत्वका है क्या ? वाका समाधान करते हैं.

[भूताधिकरणम्]

सूत्र—भूतेषु तच्छ्रुतेः ॥ ५ ॥

अर्थ—भूतोमें वैसी श्रुतितें.

विवेचन—वो तेजमें आ मीलते हैं. कहे तो वो सर्वभूतका सूक्ष्मरुप समझे. ऐसा श्रुतिसें खुलासा होता है, जीव जब जाता है तब " पृथिवीमय आपोमय स्तेजोमय " ऐसे कहा है. औरभी स्पष्ट है कि एक तत्व स्वतंत्रतो हैहि नाहि.

सूत्र—॥ नैकस्मिन्दर्शयतो हि ॥ ६ ॥

अर्थ—न एकमें दीखाया है.

विवेचन—एकसें कुछ नहि होता. न भया. न कीया है. तेज जल-पृथ्वी बनके उनका मिश्रण त्रिवृत करकेहि आगे काम नाम रुप बनानेका चला है. यातें यह सूक्ष्म देह जो यहां तेज करके-जीवकी कही. जामें जीव है वो तीनों भूतके मिश्रण की है. स्थूलसें संबंध अब छुटा, आ गये सूक्ष्ममें इन्द्रियद्वारा संबंध रहा. प्राणद्वारा संबंध रहा. उन्होंनें खोखा खाली कीया. अब एक विशेष बात कहेते हैं.

मरनां कहे तो स्थूल देह छोडनां. वो विद्वान अविद्वान सर्वेकां होता है. फीर अविद्वान यह स्थूलमेंसें निकलके सूक्ष्मके साथ और देह देशमें जाते हैं. जहां स्वर्ग नर्क वा योनी फीर स्थूल देहमें वस नेको पाते है. और विद्वानकों तो ब्रह्मांड भी छोड देनां है. यातें उनका जानां वैसे कोइ स्थानमें नहि होता. यातें सृते (गते) का उपक्रम बदलता है. यहांलों जो स्थिति कही सो उभयकी समान होती है. जीनकों फीर कहीं नीमगुक होनी हो, वो अमरुदारकों बेल वा रेल-मार्गसे जानां होवे और जीनकों उपर चढनां हो तो विमानहि चाहीये. वो सुधे चले. और यह उपर ऊर्ध्वगमन हो. वैसे हृदयमेंहि नाडीभेद है. द्वारहि निकलनेके भिन्न है. दरबार बरखास्त भया तो हजुर पास जानेवाले राजकुमारोंका रस्ता और, और गाममें वसनेवालोंका द्वार, मार्ग और-वैसे यह द्वार और है. और जब वो वडे

टीकाने जानेवाला होता है तो याकों यहांतेंहि जो खुशी, जो आनंद, निकलनेमेंहि होता है. वो श्रीहरि–श्रुति कहती है कि देते हैं. आपका दिव्य दर्शन यहीं कराय देते हैं. येहि कचेरीमें हजुर प्रकट होके कही देते हैं कि तुमकों हमारे दरबारमें अब बसनां होगा. अब तुम नोकर मीटे. हमारे कुमार भये. दासी मीटे पत्नि भये. वो कहेनांहि चाहीये. तबहि निकलते पूर्ण विश्वास–संतोष–उल्लास आनंद; मार्गमें कहीं रुकनां–लुभानां नां होवे. और रहस्य तो यह है कि वो उपासनाका प्रताप है. उपासना जाकी करते रहे वो परब्रह्म वो रुपमें वाकों यह शरीरमें जैसे जांने मांने ध्यान करे रहे वैसे हैहि. ऐसी प्रतीति साक्षात्कारतें देते हैं. वाका दर्शन यहांहि उपासकको होता है. वो पवित्रके साक्षात्कारके साथ वो जीव " भिद्यते हृदयग्रंथी " आदि स्थिति पावता विशुद्ध पूरा होता है. तेजके प्रकाशतें वाका हृदयांध तिमिर जाता है. वो अमृतका अनुभव यहांहि मीला कि वो अमर भया. कबीर पारस स्पर्शतें कंचन भया. अब जैसा था वैसा नहि रहा. अब सूक्ष्म देह वाकी तावेदार है. वो वाके तावेमें बंधनमें नहि. केदीके साथ सिपाई रहे पर हजूर हूकम देवेकी उनकी शीक्षा पूरी भयी. वो हमारे कुमार हैं. अब तुम उनके तावेमें हो, की सब वो तावेदार हो जाते हैं. फीर वाकी तावेदारीमें वाका सहायक होके वो शरीर जाता है. और यहांतेंहि वाका मार्ग फीर जूदा होनांहि चाहीये. सो अब कहेते हैं.

[आसृत्युपक्रमाधिकरणम्]

सूत्र—समाना चा सृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ॥ ७ ॥

अर्थ—गतिके उपक्रम पर्यंत समान वो अमृतत्व अदग्धकोंहि.

विवेचन—सृति–मार्गका उपक्रमतें. वो मार्ग शरु हो. वहां तें

विदुष अविदुषकी गति समान है. नाडीतें फीर उपक्रम है. वो नाडी एकसो एकमें विदुषके लीये और अविदुषके लीये दुसरी नाडीयें हैं. जा द्वारा उनकों देहतें बाहिर निकलनां होता है "नाडीप्रवेशके पूर्व समान होके" "समाना चा सृति उपक्रमात्." फीर श्रुति कहती है. "शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मुर्द्धानमभिनिसृःतैका तयोर्द्ध्व मायन्नमृतत्वमेति विश्वंऽऽन्या उत्क्रमणे भवंति." एकसो एकभी हृदयकी नाडी है. वामेंतें उपर मुर्द्धा-मस्तकमें होके एक निकलतें है. जाको शुशुम्णा नाडी कहेते हैं. वातें उपर अमृतत्वकों पाते हैं. अन्य नाडीतें नीकले तो जगत्में जाते हैं. जाको ऐसे नाडीभेद होता है. "अमृतत्व और वो अनुपोष्य" यहां सूक्ष्म शरीर दग्ध नहि भया तवहि दग्ध भये विना-ब्रह्मदर्शन वाका अनुभव करके वो जाता है. यहांहि "अमृत अश्नुते" अमृत सूक्ष्मदेह रहे परभी भोगता है. दर्शन [सु]ख लेके बढता है. और खोलते हैं.

सूत्र—॥ तदापीतेः संसार व्यपदेशात् ॥ ८ ॥

अर्थ—वो ब्रह्मप्राप्तितें संसार कहेनेतें.

विवेचन—यह ब्रह्मप्राप्तीके पीछे अभी संसार कहे तो सूक्ष्म [द]ेह संबंध रहेता है. ऐसा श्रुतिमें कथन है. क्योंकि वो जीवका आर्चि-[र]ादि मार्गद्वारा गमन है. वाकों अभी प्राकृतमंडलमें उपर चलनां है. [त]ो देहसंबंध-संसार विना-सरनां-चलनां-कैसा हो सके ! अर्थात् [य]ह ब्रह्मप्राप्ती सो यहां अनुभव दर्शनमात्र है. अभी पूरी प्राप्ती नहि [भ]यी. कब होगी. सोहि कही रहेहैं. अभी तो आरंभ है. हजुर मीले [प]रम पद दीया. भीला वो कहेंगे कि हम पाये परंतु अभी सर्व पूर्ण [हो]नेमें यह देहके साथ विरजालों पहोंचनां बाकी है. वो कैसे होता [है] सो कहेते हैं. नीमणुक हजुर आके कर गये. कही गये. नये द्वार-

तें नये प्रकार चलने लगे. अब वो संसार वो देह बंधनरुप नहि रही. फीर नहिहि है–ऐसा भी नहि समझना. सूत्रकार कहेते हैं.

सूत्र—॥ सूक्ष्मं प्रमाणतश्चतथोपलब्धे ॥ ९ ॥

अर्थ—सूक्ष्मप्रमाणतें वैसा उपलब्ध है.

विवेचन—वो देह सूक्ष्म रहती है. परंतु रहती है सहि. ऐसा प्रमाणतें पाया जाता है. क्योंकि वाका फीर चंद्रमाके साथ संवाद कहा है सो विना देहके नहि हो सकता.

सूत्र—॥ नोपमर्देनातः ॥ १० ॥

अर्थ—यातें उपमर्दन नहि. ॥

विवेचन—जब श्रुति कहती है कि " अत्र ब्रह्म समश्नुते " तब सूक्ष्म देहका उपमर्दन नहि. वो रहीके ब्रह्मका यहां अनुभव भया करके समझनां.

सूत्र—॥ अस्यैव चोपपत्तेरुष्मा ॥ ११ ॥

अर्थ—याकोंहि उष्णता घटती है.

विवेचन—मरण पानेके पूर्व शरीरमें जो उष्णता दीखती है सो याहिकि है. वो जाती है. तब प्राण गया कहेते हैं. सो सूक्ष्मशरीर वो विद्वानकों भी अविद्वान सरीख होता है. और स्पष्ट करते हैं.

सूत्र—॥ प्रतिषेधादितिचेन्न शारीरात्स्पष्टो-ह्येकेषाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रतिषेधतें ऐसा कहे तो नहि. शारीरतें ऐसा एकमें स्पष्ट है.

विवेचन—विद्वानके प्राण नहि नीकलते हैं. निकलनेका प्रतिषेध होनेतें. श्रुति कहती है. ॥ न तस्य प्राणा उत्क्रामंति ॥

वाके प्राण नहि–निकलते हैं. सो विदुषके यहांहि नष्ट नहि हो जाता है. फीर–सूक्ष्मशरीर रहीके वाके साथ निकलता है. यह कहेनां ठीक नहि. ऐसा कहे तो आप नाहि करते है. कि नाहि निकलते हैं–सो शरीरतें नहि "शारीरीतं." शरीरतें तो निकलते छुटे पडते हैं. शारीर जो जीव–वातें छुटे नहि हो–जाते हैं. वाकों लगे रहते हैं. अर्थात् वाके संग जाते हैं. यहां "तस्य" कहे तो जीवकाहि प्रकरण प्रसंग है. शरीरका नहि है. उतनांहि क्यों–यह संशयकी निवृत्ति–एक शाखा–माध्यंदिनीमें कर दी है. "योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्मात् प्राणा उत्क्रामंति"– ऐसा आप्तकामतें प्राण छुटे नहि पडते हैं. ऐसा स्पष्ट कहि दीया है. देवयान मार्गतें, ब्रह्मप्राप्ती हो वहीलों वो सूक्ष्मदेह संग रहती है. वो वात और दृढ करते हैं. क्योंकि घटाकाश फूटके महाकाश यहांहि हम हो जाते हैं. ऐसी शंकाभी है. और वेदांत तो अभी यहांतें जीवकों उपर ले जाता है. यहां पुरा काम होता है. वातें सूत्रकार आपकी सहायमें.

सूत्र—॥ स्मर्यते च ॥ १३ ॥

अर्थ—स्मृति कहती है.

विवेचन—करीके और ऋषीमत भी दीखावते हैं. "उर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्वा सूर्यमंडलम् ब्रह्मलोक मतिक्रम्यतेन याति परां गतिम् ॥ ब्रह्मके भी लोककों छोडके वा करके परमगति परमपद–जो विष्णुका नित्यस्थान है. वहां जाते हैं" ऐसा कहा है.

ब्रह्मका प्रथम मीलाप यहां होता है. वाका अनुभव हृदयमें होता है. सो अंतकालमें तत्र वो सर्व सिपाइ, जमादार सेक्रेटेरी जो वाणी–मन प्राण फिर तेज विशिष्ट आप–सर्वके साथ वाके पास नया हुकम सुननेंकों हाजर हो जाता है. ऐसा श्रुति कहती है.

(परसंपत्त्यधिकरणम्)

सूत्र—॥ तानिपरे तथा ह्याह ॥ १४ ॥

अर्थ—वो परम वैसा कहा है.

विवेचन—वो अव्यक्त आपतें "पर",जो वडा है. वाके पास जाता है. श्रुति " तेजः परस्यां देवतायाम् " ऐसे वाका देवता शब्दतें श्रेष्ठ समुझावती हैं. बस वहां एकवेर तो वो वाके साथ मील जाता है कि वामें डूब जाता है. जैसे सुषुप्तिमें जीव–वाके साथ एक हो जाता है. वैसा यह सर्व भूल जाता है. उभय एक, मातकी गोदमें बाल, लीपट जावे तैसे.

(अविभागाधिकरणम्)

सूत्र—अविभागो वचनात् ॥ १५ ॥

अर्थ—अविभाग वचनतें.

विवेचन—एक हो जाता है. कहना ठीक है. वो अविभाग सो जैसे आदिसें कहते आये हैं. ऐसे वाणी मनतें एक भयी, मन प्राणतें, वैसे सर्व विशिष्ट जीव परमात्मामें एक भये. एकमत–एकाचित–एक ज्ञान हो जावे तैसे आपका स्वातंत्र्य सर्वथा छोडता है. वो क्या करभी सके ! आपतें कहां जा सके. यह उंडी खाइ, गिरि गुहामेंतें कैसे सत्य लोककेभी उपर चढ सके ! उपरतो कहां चढे; यह हृदयांधकारमें प्रवेश करनेतें वो आप शुशुप्ति दशा पाइ जाता है, मूर्छा पाया–लोक देखते हैंहि–गया, होरहा, डुब गया. कहते है. वास्तविक वो मृत्युमुखमें गया. परंतु फीर क्या होता है ? जो नित्य शुशुप्तीमें जाते हैं सो मलीन दृष्टी–ज्ञान–युक्त वो सतके पास गयेपे वाके दर्शन नहि होते हैं.

और यहतो अब शुद्ध हो गया है. वातें वाको यहां वाका साक्षातकार "अत्र ब्रह्म समश्नुते" सत्र जागता है सो मानों कि नयेहि जीवनमें-फीर कभी नहि सोवे, ऐसे जन्मके साथहि कहो-वो अंध गिरि गुहामें मकाश होता है. वो कोनका? न सूर्य, चंद्र, अग्नि-तारेका-न जीवका. वोहि "अंगुष्टमात्रं ज्योतिका." वातें क्या होता है? वो क्या करता है? यहांहि कही गयेकि घट फोडके एक नहि कर लेता है. किंतु सूत्रकार कहते हैं.

[तदोकोऽधिकरणम्]

सूत्र—तदोकोऽग्रज्वलम् तत्प्रकाशितद्वारो विद्या-सामर्थ्यात्तच्छेपगत्यअनुस्मृति योगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॥ १६ ॥

अर्थ—जो स्थानका अग्र भाग मकाशता है. वो मकाशित द्वार-वाला विद्या सामर्थ्यतें और वाकी शेप गतिकी अनुस्मृतिके योगतें ह्रदयमें रहे पुरुषके अनुग्रहतें एकसोएकमी पाता है.

विवेचन—कही चूके हैंहि विदुषको जानेका द्वारहि और एकसो एकमी नाडी होती है. जाको शुशुम्णा कहते हैं. वामें अब वाकों "हृदि" ह्रदयमें बिराजमान श्री हरि अनुग्रह करके आपमें जगाते हैं सो क्या देखता है? वो गाढ ह्रदयांधकारमेंहि मकाश! और वो वोहि कोटडीके अग्रभागमें जहां सेवाकों निकलना है-जो वाके लीये खास द्वार है. वाकों वो देनेका-खोलके दीखानेका-ऐसी वाके उपर खास कृपा करनेका-हेतु-" विद्याका मताप " जो नित्य मियतमकों झंखता रहा. वाकी मीति कृपा भयी. वो विद्या-अनुष्ठानका सामर्थ्य आपकी सेवाकी कमाइ, फीर वो नित्य स्मरता रहाकि हमकों वो गति वो मार्ग कब मीले! जामेंतें हम पीछे फीर यह संसारमें न आवे. ऐसे देशमें चले जावे, यो " शेप गतिके अनुस्मरणके योगतें " परमप्रभु प्रसंन

होके वोहि मार्ग खुल्ला करके वाको फीर सर्व स्मरण भी देतेहैं कि अब कोन मार्ग कहां जानां विचमें क्या होगा ? शालासें छुटे और चले. जो नीमनोकके लीये श्रम कीये रहे वो दरज्जेके उपर ! चली वो पतिके पास जाकों संस्मृति रही ! रस्ता पुर्वसें विदित है. क्या होगा सो सर्व जानते रहे. अब वो समय आ गया ! क्या कहुं आनंदका ! उत्साहका ! त्वराका ! परमात्माके धामकों पहोंचनेकों जैसे तारओफिससें बिजलीके तीनखेकों जानेकों और ओफिस क्या अंतमुकामपर्यंत बरोबर तार लगे तैयार रहेते हैं. तैसे यह परमपदमें जानेका मार्ग तैयार है. यहां यह नाडीतेंहि वाका तार वही "बेटरी" तेंहि जुडा है.

[रश्म्यनुसाराधिकरणम्]

सूत्र—॥ रश्म्यनुसारी ॥ १७ ॥

अर्थ—रश्मिके अनुसारी ॥

विवेचन—वो तार सो सूर्यकी रश्मियें है. श्रुति कहती है. जो यह शरीर तें निकल ते हैं. यह रश्मिके साथ उपर जाते हैं. वाके द्वार उपर चलनां-चढनां सुगमतासें होता है. वो जाकी रश्मि वाके स्थानकों लगीही है. वाको स्तंभ वा बीचकी सांध तूटे ऐसा वामें कछु नहि है. एक शंका वामें रहती है कि रातकों त्रो नहि रहेती होगी. दीख नहि पडती और तवहि रातका मरण शास्त्रमें निषेध कहा होगा. वाका समाधान है कि

[निशाधिकरणम्]

सूत्र—॥ निशिनेतिचेन्न संबंधस्ययावद्देहभावित्वा दर्शयतिच ॥ १८ ॥

अर्थ—रातकों नहि ऐसा कहे तो नहि. देह वहांलों संबंध कहते हैं.

विवेचन—रात्रिकोंभी जो जगतमें उष्णता रहती है. वो रश्मियोंकि देहमेंभी गरमी है. रातको उष्णताके किरण रहते है. यह बात ठीक नहि. कि रातको मरेतो परमपदमें न जावें. वो रातकोंहि मात्र क्यों ? अमुक स्थलमें अमुक स्थितिमें अमुक " वस्तुमें, चित्त रहीके " यह सर्वशास्त्र ठीक है. परंतु वो अविद्वानको, विद्वानकातो उद्धारनां परमात्माके शीर पै है. वो वाकों अंतस्मरण, दर्शन, नाडी खोलनां निकालनां सर्व आप करता है. वहां और सहायकोंकी अपेक्षा नहि, पुण्य पापका मार्गहि यह नहि. याकों पुण्य पापकी परवा नहि. संचित क्रीयमाणकी व्यवस्थाभी होइ चूकी है. याकोंतो " यावद्देहभावि " कर्मोंतें संबंध, सो पुरा भयाकी बस. फीर वो कहांभी, कोनभी स्थितिमें, कोनभी कालमें, वो प्रारब्ध पूरे भयेतो उनका परमपदतो निकी है, वो जो रुक रहे. सो तो प्रारब्धोंतेंहि " तस्यतावदेव चिरंयावन्नविमोक्ष्ये अथ संपत्स्ये " उनकों उतनीहि देर है जबलों नहि छुटे. फीर पाते हैं. वातें जैसे उनकों रात मरणतें हानी नहि वैसेहि.

(दक्षिणायनाधिकरणम्)

सूत्र—अतश्चायनेऽपि दक्षिणे ॥ २० ॥

अर्थ—दक्षिण अयनमेंभी वातेंहि.

विवेचन—उत्तरायनमें मरनां प्रशस्त सोभी यह विद्वानोंको विशेष लाभद नहि. न दक्षिणायनमें गये तो उनकों हानी. चंद्रका काल होके वाके लोक लेनेको आये तो वाके धाममें विराम लेके आगे जावेंगे. यह कोइ लोकमें अब फसनेवालेहि नहि है. यहतो चलेहि जायगे. वोहि गतिसें. जाका वो नित्य स्मरण करते रहे. जाकी आतुरतासें राह देखते रहे.

सूत्र—योगिनः प्रति स्मर्यंते स्मार्ते चैते ॥२०॥

अर्थ—योगीके प्रति स्मृत्ति कहती है. वो स्मरते हैं. जो दों हैं.

विवेचन—देवयान और पितृयान वो मार्ग पीछे नहि आनेवाले और पीछे आनेवालेके हैं. वो काल नहि. जो उत्तर दक्षिण अयन शुक्ल कृष्णपक्ष ऐसे नाम, जो योगीयोंकि गतिमें सकामी निष्कामकि लीये हैं. वो वो कालके अभिमानी देवोंको लेके है. वो मार्गके मुकाम, है. जैसे गीताजीमेंभी " शुक्लकृष्ण नामसें गति योगी स्मरतें है " करके केहते हैं. वामें प्रथमहि " अग्निः ज्योति " प्रथम अग्नि है. वो काल कैसे हो सके ? काल विशेषका वो प्रकरण नहि. न विदुषकों काल करके कुछ हानी लाभ हैं. ऐसा श्रुति स्मृतिका निर्णय हैं. वो तो उपरहि चले जानेके. यहांका उनका संबंध अब इति भया जैसे यह पादभी इति भया.

—चतुर्थ अध्यायका द्वितीय पादका इति—

अथ चतुर्थ अध्याय तृतीयपाद.

मारेसरीख कोटी कंगलोंका स्वामी एकहि सर्वेश्वर, यह लोकमें
टी ग्रहगण दीखते हैं. ऐसे ब्रह्मांडोकाभी अधिपति–ब्रह्माभी
ास एक कीटमाय हैं. क्योंकि वैसे कोटी ब्रह्मांडका वो अधि-
यह स्थूल बात है. परंतु सूक्ष्म बात यह है कि हम जो हैं सोहि
. जैसे कंगला और शहेनशाह–दोनों मनुष्य–दोनोंकी देह हड्ड
–वैसे यह देहभी उभयकी प्रकृतिकी और जैसे वहां राजा
ना निकाल लेवे तो मनुष्यत्व एक सरीख है. राजा पदभ्रष्ट
वोहि राजा रंककी स्थितिमें चलें आइ पडे. तैसे देहांतरसें
ीट और फीर कीट ब्रह्मा होहि सके. क्योंकि उभय एकहि
द्रव्य हैं. उभय अणु चेतन–ज्ञाता कर्त्ता आदि जो समुझ चूके
वातें देव कहे वा मनुष्य–ब्रह्मा कहे वा कीट वो विभु अनंत
शरीरकाभी एक अंश लेशमात्र हैं. वो शरीर अन्य तत्वहि हैं.
र्ग है वैसे चेतन असंख्य है. यह प्रत्यक्ष सिद्ध तो हैहि कि
भले बुरे कर्मोंतें महेल जेल भरे रहते हैं. वो सर्व चेतन भिन्न–
अनुभव भिन्न–और वो आदितें अंत पर्यंत, वैसे वो जहांसें आये
हां गये, वहांभी भिन्नहि आप आपकी स्थितिका अनुभव करते
दी नाव संजोग कहो–वा रेल वोटका संजोग कहो वामें संग
करनेवालोंकी, तबहि तैसे पूर्व, और पीछेभी स्थिति भिन्न भिन्न
. वोहि प्रमाण जन्मांतरकाभी समझो–वो घटमालतें सदाके लीये
हम जो भिन्न हैं सो भिन्नहि रहेते हैं. शरीर सो शरीरही रहते
तिका परतंत्र रहीके अनुभव करते परमात्माकों जानतेहि नहि
अब भीतर देखभी चूके–और अब वो प्रदेशमें जाते हैं. जहां

अचित वस्तु है देश है. काल है. और परमात्माभी है. असंख्य चेतनभी है. उनकों शरीरभी है. भोग भोगोपकरण भोगस्थान है. परंतु वो सर्व यातें विलक्षण हैं. प्रथम विलक्षणता यह है की वो द्रव्य चेतनोंके ज्ञानशक्तिकों आवरण नहि करता. फीर वाका जो बनता है सो चेतन चाहे वहांलों वैसा रही सके ऐसा अर्थात् सर्वथा अनुकुल और वालेंहि वहांके भागकाल आधीन नहि. किंतु उनका काल चेतनोंके आधीन है. वो सर्व चेतन स्वतंत्र है. कहेतो ऐसे प्राकृत बंधनमें अज्ञानतातें परतंत्र नहि है कि जो आप नहि है. वाकों आप जो नित्य नहि है वाकों नित्य मानके-ऐसा व्यापार करनेवालेकि हमारा जूदा और तुम्हारा जूदा. ऐसे भेदभाव मेरातेरा करनेवाले वो नहि. क्योंकि ज्ञानी है कहेतो आप सर्व एक महान विभु सर्वात्माके शरीर वो एककेहि लीये सर्व हैं वो एककाहि सर्वथा मंगल अभिवृद्धि भोग हो ऐसा सर्व चहते हैं. वाकों एक परिमित स्थान आकारमें अनुभवते हैं. फीर वहां जैसे एक पुंज्य धनी सुखभांती पिताकों सर्व सुपुत्र सेवे. वो गृह जैसा सर्वका समान वो सामान सर्वका, परस्परके संतोषसें वो संतोष मानते हैं तो यह तो वास्तविक है. एक अंगके सर्व अवयव एक समान अंगी. फीर सर्वकी शक्ति समान, सामग्री अखूट-वामें जो चाहो तब वैसा हो सकता है. अर्थात यहांके सर्व प्रकार सर्व लोकोंमें विरुद्ध, और श्रेष्ठ, वो ब्रह्म लोक विष्णुका परमपद-दिव्यधाम-नित्यस्थान है. और वहां अनादि नित्य और मुक्त आत्माके आपके सत्य शरीरकों अहं करके समझके दिव्य प्रेमतें भोग रहे है. सेव रहे हैं. वाकों यहभी जाके सेवता है वो सेव्य भोग्य स्वतःहि, यातें कइ प्रकार श्रेष्ठ ऐसा अनंत आनंदरूप है. वाकी अभिवृद्धी करे ऐसाहि वहांका वो अचित द्रव्यभी ज्ञाना नंदात्मक है वो भी उनमें एक हो जाता है सबमें मील जाता है. - पारमें-विचारमें-व्यहवारमें भोगमें वोहि एक हो जाता है.

वोहि परम पद परम गति परम प्राप्ती परम फल परम स्थिति-परम पुरुषार्थ है. अब वो कैसे मीलता है. कोनको कब मीलता है सो कही चूके. वो यह शरीरमें तें सूक्ष्म शरीरके साथ सुषुम्णा नाडी द्वारा बाहिर निकलता है. रश्मि वाकों ले जाती है. वो रश्मिद्वारा उर्ध्व जाता है. यह कहा परंतु उर्ध्व तो हजारों जाते हैं. जो पीछे भी आते है. और उर्ध्वमें हजारों देव है. जो वहां रहे ते हि है. उनमें अंत सत्य लोक है वहां पर्यंत जानां आनां व्यहवार वो जैसा यह पृथ्वी पर हो रहा हम देखते हैं वैसे वहां हो रहा हम सुनते हैं परंतु वो मार्ग सो यह नहि है. जैसे यह देहमेंहि हजारों नाडी बहार निकलनेकी रहे पर एकहि नाडी है जो यह विद्वानके लीये खुलती है. वैसे एकहि प्रसिद्ध मार्ग है. जो यह संसारमें फीर पीछे नहि आनेके लीये जो उर्ध्व जाते हैं उनके लीये हैं. वो मार्ग अब सूत्रकारहि दीखाते हैं. वा लीये एक तें अधिक उपनिषदमें कथन होनेतें परस्पर विरुद्धताकी शंका होवे ऐसे प्रसंगोंका शमन करनेकों यह सूत्र है. वो ऐसी संगतितें लगाये हैं कि शंकाओंके समाधानपूर्वक मार्गका भान भी पुरा हो जाता है. वाका नाम प्रसिद्ध जो है सो कहीके आरंभ करते हैं.

(अर्चिराद्यधिकरणम्)

सूत्र—॥ अर्चिरादिनातत्प्रथितेः ॥ १ ॥

अर्थ—अर्चि आदि करके वो प्रसिद्ध होनेतें.॥

विवेचन—आदि अर्चि सो कोन प्रकार छांदोग्यमें जैसे कहा है. वो अर्चिमें जाते हैं. कहे तो वोहि रश्मिमें वाके द्वारा चढके चढके फीर दिवस शुक्लपक्ष-उत्तरायन-संवत्सर यह सर्व वो वो कालके अभिमानी देव लोकके स्थान है जो मार्गमें आते है. सर्व मुकाम (स्टे-

शन) है. आदित्य चंद्र विद्युत (विजली) अभिमानी देव है. वो "अ-मानव पुरुष " को पहोंचता है. वस वा करके ब्रह्मकों पहुंच जाता है. येहि. देवपथ ब्रह्मपथ यातें गये फीर मानवी नहि आते हैं. पींछे नहि फीरते है " और जगे कहा है " यह देवयान पथ अग्नि लोक (वो अर्चि आदि) वायु लोक वरुण लोक इन्द्रलोक प्रजापति लोक और फीर ब्रह्मलोक जैसे पाठों मुकाम वदल गये दीखते हैं वैसे और जगे वर्णन है. वहां उनतें कुछ और प्रकार सो सर्व एकहि मार्ग है वा भिन्न ? ऐसा संशय होवे यातें आप निर्णय कहेते हैं कि " आर्चिरादि एकहि मार्ग सर्वमें वोहि प्रथित–कथित–कीया है वो प्रसिद्ध है. यह विरुद्धता नहि है. एक वद्रीनारायणकों पहुंचनेका एकहि मार्ग रेल्का रहेपर वीचके स्टेशन कोइ थोडे गीनावे–कोइ जास्ती कोइ एकका नाम न दे दुसरेका देवे–कोइ वो नाम देनेमें भी " कांची " कहे कोइ कांजिवरम " कहे. ऐसे भेद है. परंतु वो एकहि मार्ग है जो सर्व वेदांतमें कहा है. यहां हि दृष्टांत है.

संवत्सरके उपर जो लोक आता है. वा लीये एकमें वायुलोक ऐसा नाम है दुसरी जगे देवलोक नाम है तो क्या समुझे ? वो दो मार्ग और है क्या ? नहि.

(वाय्वधिकरणम्)

सूत्र—वायुमव्दादविशेषविशेषाभ्याम् ॥२ ॥

अर्थ—वायु संवत्सरतें अविशेप विशेपतें.

विवेचन—वायु विशेप नाम है. वो " देव " तो हैहि यातें वाके लोककों " देवलोक " भी अविशेपतातें कही सके यातें संवत्सरतें उपर जो कहा सो वायुका लोक वाकोंहि देवलोक कहेनांभी ठीक है. सो वाकोंहि कहा है दोनोंमें एकहि वात है.

वैसाहि और अडवड दीखे ऐसा प्रसंग है. वहां निर्णय दीया है कि.

(वरुणाधिकरणम्)

सूत्र—तडितोऽधिवरुणः संबंधात् ॥ ३ ॥

अर्थ—विजली वरुणके निचे संबंधतें.

विवेचन—विद्युतलोक वरुण लोकके निचेहि है. मेघके उदरमें विद्युत रहती है. ऐसा संबंध होनेतें.

अब फीर येहि प्रकार सर्व संशय दुर हो जाते हैं और ठहरता हैकि अनेक स्थानमें कहा अर्चिरादि मार्ग एकहि नियत है. वामें क्रमसें वो वो देवोंके लोक आते हैं. वो मात्र जैसे हमकों मुकाम गीनाये जावे वैसेहि कि वातें कछु विशेषभी समझनां है सो कहेते हैं विशेष है. देखीये ब्रह्मवित् प्रभुके प्रियकाम महात्म्य जब वो यहांसें निकलता है तब प्रारंभमेंहि तो वाको वोही ज्ञामृत स्वादतो " अत्र ब्रह्म समश्नुते " हो जाता है. वोहि वाकी एकसोएकमी नाडी खोल देता है. वामें प्रकाश कर देता है. रश्मिद्वारा वाको उपर जानेकी व्यवस्था अंत पर्यंत धोरी मार्गतें नियत की गइ है–इतनांहि- नहि बीचमें जीतनें देवलोकके स्थान आते है स्टेशन मुकाम आते हैं वहां वाका बडा सन्मान होता है सो कहांलों ? वो देवोंकाभी पुज्य होता है. श्रीपतिके खास श्री वैकुंठमें जानेवालेका महात्म्य वो समझते हैं. उनकी फरज प्रीतिनें वो जानते हैं कि सूत्रकारके शब्दमें वो.

[आतिवाहिकाधिकरणम्]

सूत्र—आतिवाहिका स्तल्लिंगात् ॥ ४ ॥

अर्थ—आति वाहिक वाके लिंगतें.

विवेचन—वो वाके वाहनकों वहन करनेवाले होते हैं. वैसे कोइ घडे पुन्यकों ब्रह्मरथ कहे तो वाके विमानके वाहक ब्राह्मण होवे. जैसे आधुनिक लौकिकमें गाडीतें घोडे दूर करके मनुष्य वाकों खींच जाते हैं. वैसे वो वो देव यह मार्गमें वाके आतिवाहक होते हैं. यातें समझे कि और क्या क्या सत्कार वो नहि करते होगे? वो लोकके स्वामी देवभी याका महात्म्य इतनां बडा समझते हैं कि वो लोकके भोग पास यह देवलोकके भोग कहां! राजपुत्रकी स्वारी ग्रामतें दुसरे ग्राम-पर, वो गामके अधिकारी संग रहीके पहुंचावे वैसादि समझो. ऐसा वो श्रुतिमेंहि चिन्ह है. वो वाकों-ब्रह्मके लोककों पहुंचाते है-ले जाते हैं कहे "गमयति" शब्द गतिमें सहायक होते हैं. ऐसा शब्द स्पष्ट करता है. फीर एकको तो खास नाम निर्देश कीया है.

सूत्र—वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ॥ ५ ॥

अर्थ—विद्युत करकेहि यातें वो श्रुतितें.

विवेचन—विद्युतपुरुष वाके साथ अमानवपुरुषपर्यंत खास साथ रहता है और लोक वीचमें आये तोभी वो संगहि रहेते हैं. यातें वाका नाम काम विशेष कथन कीया है.

या प्रकार वैभव देवता समान पाता भया, वो कृतकृत्य आत्मा उपर चला जाता है. वीचके सर्व लोकका योहि हिसाव है. प्रजाप-तिका लोकभी आ गया वीचमें गीणाया गया है. और विद्युतपुरुष संग रहीके "अमानव" पर्यंत पहोंचाता है. क्या फीर जहांते पीछा नहि आनां वहां जानां होता है. वीचमें विरजा है. फीर दिव्य प्रदेश वामें विशेष प्राप्त जो जो है वो सर्व कौशितकी पर्यंक विद्यामें विस्तार तें कथित हैं. यहां दिग्दर्शन वो मार्गका कहा सो पूरा भया अब वो कहां अंत पहुंचता है? या लीये विचार चला—

प्रथम इतरमत प्रदर्शित करते हैं जो पूर्व पक्षका काम साधते हैं. यामें बादरी आचार्य कहेते हैं कि यह अर्चिरादि मार्गतें जो जातें हैं सो कहां ?

(कार्याधिकरणम्)

सूत्र—॥ कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः ॥ ६ ॥

अर्थ—कार्यकों बादरी याकी गति घटीत हैं.

विवेचन– कारण ब्रह्म सो परमात्मा, और कार्यब्रह्म सो हिरण्यगर्भ. वाके पास यह आतिवाहिक ले जाते हैं. ऐसा बादरी स्वामीका मत है. क्योंकि परमात्मा तो सर्वत्र हैहि वाको पावनेको गति हि काहेको ? याको हिरण्यगर्भको पहुंचनेको गति जानां घटता है. वाका देश परिच्छिन्न है. सो उपासक वाको पाता है. फीर कहते है वोही मतकी पुष्टीमें.

सूत्र—॥ विशेषितत्वाच्च ॥ ७ ॥

अर्थ—और विशेष बात भी होनेतें.

विवेचन—श्रुतिमें " ब्रह्म लोकान् गमयति " ब्रह्म लोकोंको ले जाता है. " कहते है बहु वचन है तो कोइ लोक विशेपमें वहां फीर श्रुति प्रजापतेः सभां " ऐसे शब्द भी वो प्रजापतिकी सभामें जाता है. ऐसा कहती है. यातें हिरण्यगर्भकोहि माननां ठीक है. या पर एक शंका तो सद्य उठेकी श्रुतिमें फीर " ब्रह्म " कारण वाचक शब्द क्यों है ? कार्यवाची हिरण्यगर्भ शब्द होनां चाहीये. याका वो यों उत्तर देते हैं.

सूत्र—सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ॥ ८ ॥

अर्थ—समीप होनेतें वो कथन है.

विवेचन—कारणब्रह्मतें प्रथम ब्रह्मादि भये करके श्रुति कहती है. तो वो ब्रह्मके समीप भयेतो उनकोंभी ब्रह्म कह दीये हैं. अब पीछेके शब्दोतें विरोध आता हैकि यहां आये पीछे नहि फीरतें हैं. और ब्रह्माके लोकतें तो पुनरावृत्ति प्रसिद्ध है " आब्रह्मभुवना ल्लोकादि " वचनसें वाके उत्तरमें कहते हैं.

सूत्र—कार्यात्ययेतदध्यक्षेण सहातः परम-
भिधानात् ॥ ९ ॥

अर्थ—कार्यके नाश समय वो अध्यक्षके साथ यहांते परम ऐसा कथन होनेतें.

विवेचन—जो वहांलों या प्रकार चढे सो पीछे नहि गीरे. यह ठीकहि है. जब ब्रह्माका काल पूरा होता है तब ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाते हैं. अमृतत्व पावते हैं वातें उनकी अपुनरावृत्ति नहि सो या प्रकार.

सूत्र—स्मृतेश्च ॥ १० ॥

अर्थ—और स्मृति.

विवेचन—ब्रह्मणा सहते सर्वे संप्राप्ते प्रति संचरे।
परस्यांते कृतात्मानः प्रविशंति परंपदम् ॥

यह श्रुति स्मृति युक्तितें वादरी मततें ठहराकि जो हिरण्य गर्भके स्थानमें जाके फीर नहि आनेवाले हैं सो अर्चिरादि मार्गतें जानेवालोंका स्थान है उनकों देवता आतिवाहिक होके वहां ले जाते हैं.

अब याका खंडन जैमिनि आचार्यनें कीया है उनका फीर और मत है.

सूत्र—भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ ११ ॥

अर्थ—जैमिनि [illegible]

विवरण—जैमिनि ऋषी कहते हैं कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विना [illegible] रहे—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] परमात्मा जैसे सर्व वस्तु रहीके [illegible] [illegible] रहता है. पर [illegible] विलक्षण है. वैसे अनंत रहे पर चाहिये—साकार दीखता है. साकार होता है. साकारभी सदा है हि—यहभी वेदांतसारि निर्णय है. उपासनोके लीये जैसे—हृदयमे. सूर्यमे अग्नीमे दिव्याकार है वैसे जो जब उपासना पूर्ण करे तब फल देनेको वो वैसेहि अनुपम रूपमें अनुभव देते हैं. जो ब्रह्मावस्थामें अनुभव मीले सो मुक्त अवस्था भये तो अधिक पावे. यहां शुभ काम कीये तो उत्तरोत्तर उंच लोक पावें और सर्वते श्रेष्ठ काम कीये तो फीर कोइ लोक न पावे ? भला ऐसे बडे महाराज की सेवा इतने हजारों लाखों करोडों बरस तक कीये जावे. सर्वेश्वर वाते भी सेवा लेवे और वाका यह फलकी यो फीर शांत हो जावे ! न उनके लीये न हमारे लीये ये होता है कि हम मुक्त भये तो फल न पावे. अनेक प्रमाणतें अन्य देश दिव्य प्रदेश है. यहां भोग भोगोपकरण भोग स्थान. नित्य, मुक्त, पत्नि परिजन परिचारक सहित परमात्मा श्रीपति श्रीमन्नारायण सदा है. और यह देहमें [illegible] भी वोहि जाते हैं. वाकोंहि पाते हैं. यहभी सकल वेदांतमें सुप्रमाणित है. यातें वह बादरी मत तो सर्वथा ठीक नहि है. यो मतमें [illegible] दुषण है. प्रथम तो श्रुति स्पष्ट परंब्रह्म कहे पर—कारण कहे पर—कार्य कों लगानी. "ब्रह्म" शब्द यामें रहे पर "ब्रह्मा" में लगानी. यो

सद्य अपुनरावृत्तिको जाते हैं कहे पर बैठ रहेते हैं कहेनां और फीर भी जो प्रमाण श्रुति स्मृतिका धरते हैं की ब्रह्मा साथ उनकी मुक्ति होती है. वहांभी ब्रह्मलोकमें जाते हैं और परमपदमें प्रवेश करते है. ऐसे फीरभी जानांहि ठहरता है. देश विशेपका पावनांहि ठहरता है. अंत वो " लोकान् " शब्द बहु वचनका विरोध कहेते है सो भी तो परब्रह्मकी और प्रभुता स्थापक है. ऐसा-क्यों निर्बंध करनांकि वहां एकहि लोक हो कोटी ब्रह्मांड-तैसे दिव्य प्रदेश परमपदमें भी अनेक वैकुंठ अनेक लोक है हि. ऐसा अनेक प्रमाणोंतें सिद्ध शिष्टोंको संमत है. और जैमिनि भी प्रमाण धरनेकों सूत्र कहेते हैं.

सूत्र—॥ दर्शनाच्च ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसा दर्शन होनेतें. ॥

विवेचन—श्रुति यह नहि कहतीकि यह शरीरमेंतें निकले तो फीर कोइ ऐसा नहि. जाको जामीले. जाकों पावे वो तो कहती है "एप संप्रसादोऽस्मात् शरीरात्समुत्थाय परं " ज्योति रुपकों पाइके आपने रुपतें प्रकाशीत होता है वैसे यह शरीरतें समुत्थान वैसेहि परंज्योति रुपकों संपत्ति भी वाकों कहती है.

फीर " प्रजापति समावेश्य " करके प्रजापतिकी सभाका-प्रवेश कहेते सो.

सूत्र—॥ न चकार्य्ये प्रत्याभि संधिः ॥ १३ ॥

अर्थ—कार्य प्रति अभि संधि नहि है.

विवेचन—प्रजापति शब्द आये तो ब्रह्माकोंहि-क्यों लगाना स-त्य प्रजापति वोहि है. जो कारण है. फीर वहांहि-वाक्यकि प्रति अभि संधी देखे तो स्पष्ट होता है. वो अधिकारी नहि चाहताकि में प्रजाप-

तिकी सभामें प्राकृत शरीरकों लेके जा बैठुं, वैसे बैठनेवाले देवहि तो यह उपासना करते हैं उनकों अधिकार स्थापन कीयाहि सो जो है वैसे रहनेंकों नहि. वहांहि प्राकृत शरीर संबंध तो सर्वथा छुटनां "चंद्र राहुके मुख ते प्रमुच्य होवे सो" धूत्वा शरीरम् ऐसे शरीरकों धोनां कहा है. जैसे चंद्र मुक्त शुद्ध हो जाता है. ऐसे होके पीछे ब्रह्मलोककोंमें पाऊं. ऐसी अभिसंधी - और वो ब्रह्मलोककी वो प्रजाके पतिकी सभामें प्रवेश होता है, कहे तो वाहितें सिद्ध भयाकि दिव्यधाम दिव्य प्रदेशमें वहां श्रीहरिका दरबार भी है जहां यह मुक्त ऐसे विशुद्ध होके जाके वाकों पाके कृत कृत्य होते हैं.

यां रीति यह देवलोक आतिवाहिक होके अर्चिरादि मार्ग तें जो जानेवाले है वो बादरी कहेते है की ब्रह्माके स्थानकों जाने वालोंको ले जाते है. त्यों वाके विरुद्ध परमपद विष्णुधाम है और वाकी प्राप्ती मुक्तोंकों होती है. ऐसा सुप्रकार स्थापन करके भगवान जैमिनि कहेते है वो परम ब्रह्मकों पानेवालेकों वो ले जाते हं प्रथम वार्त्ता तो ठीक नहि है तबहि तो बादरिका खंडन जैमिनि मुखतें व्यासजीने करवादीया परंतु यह उनका भी आग्रह ठीक नहि है कि विष्णुके परमपदमें वो परब्रह्मकोंहि पानेवालोंकों यह देवलोक वाहक होके ले जाते हैं. जैसे बादरि मत ठीक नहि वैसे यह जैमिनिकाभी समझनां पूरा ठीक नहिकि अपुनरावर्तीकों जानेवाले वोहि हो. क्योंकि वेदांतको देखेतो, वो गतिके प्रकरणकों देखेतो, दो प्रकारके उपासककों वो गति कही है. वो दो सो न ब्रह्माकों जानेवाले—न परब्रह्मकोंहि जानेवाले. किंतु यह प्रकृति मंडलतें सदा छूटके स्वस्वरुप जो परमात्माका शरीर है ऐसे परमात्म शरीरक आत्म स्वरुपकों पाके वामें केवल तुष्ट रहेनेवाले हम उनकों "कैवल्य" केवल आत्मप्राप्तीवाले कहते है यह एक है. और उनतें बढके जो जैमिनि कहेते हैं वो जो परमात्माकोंभी पानां

चहते है–चो है. उभयकों यह देववाहक अर्चिरादि गतितें ले जातें हैं. वातमें करामत हैकि अपुनरावृत्ति यह दोनोंकों है. मुक्ति दो प्रकार है. आत्मप्राप्ती और परमात्मप्राप्ती. जैसे गीताजीमें प्रथम षट्क और द्वितीय षट्कमें कही है. जा लीये जिज्ञासु और ज्ञानी दो प्रकार भक्त–आर्त–अर्थात भिन्न कहे है यह उभय मुमुक्षु है. वातें उभय मुक्त होते हैं. एक मुक्तितो चोथा पुरुषार्थ मोक्ष और इतरकों पांचमा–परमपुरुषार्थ कहींके वहुरुपी–भक्त हमकों (वो) मोक्ष नहि होनां कहीके सालोक्य–सामीप्य–सारुप्य–सायुज्य–मांगते है. वो शंकाके समाधानमें ऐसे मुक्त मुक्तिका–फलका पुरुपार्थका स्वरुपभी समझमें आजाता है. वो जो देव कोनकों ले जातें हैं वो प्रकरणमें दो मत धरते हैं. उनका समाधान अव आपकी और तें देते हैं. जामें तें यह रहस्यभी मीलता है; जो हम कही गये.

सूत्र—अप्रतिकालंवेनान्नयतीति वादरायण उभयथा च दोपात्तत्क्रतुश्च ॥ १४ ॥

अर्थ—अप्रतिकालंवनोकों ले जाते हैं ऐसा. वादरायण–उभयथा दोषतें ततक्रतु.

विवेचन—यह ठेराव हैकि उपासकका स्वरुप देखेतो वो देव, अनधिकारीके लोकभी वाहक न वनेंगे ! वो अधिकारीकों खूव पहिचानतें हैं. अधिकारी वो है. जो उनमेंभी विशेपका आलंवन करनेवाले उपासना करनेवाले हो ! उनतें वढते दो, एक शुद्धात्मा और परमात्मा क्योंकि ब्रह्मादि अभी वद्धात्मा है. और उपनिपदमें ऐसे " प्रतिक " जो शुद्ध नहि यमें परमात्माकी दृष्टी करके उपासना करनीभी कही है. जाका नाम प्रतिकालंवन है. वैसेको वो यह मार्गतें नहि ले जाते हैं. ऐसे निपेध मुखतें विधि समझा दइकी अव उनतें जो और प्रकार उपासना है. जो प्रतिक न कहा जावे वैसे अधिकारीतो वो दो है,

उपर कहे वैसे परमात्मा शरीरक शुद्धात्माके उपासक और परमात्माकोहि उपासकतो ठहराके उनकों वो ले जाते हैं.

यह मत उपर कहे दोनोंका ठीक नहि. प्रथम तो ब्रह्माकोंहि जा पहुंचाते हैं. वो स्थान प्रतिकालंबनीकों मील सकता है. वहां जानेवाले के देव कभी अति वाहक न होंगे. आपके गाममें दास बनके (वस्ती) प्रजा बनके रहेनेकों आनेवालेके वाहक आप राजा ब्रह्मा होवे. यह असंभवित है. फीर यह शरीरतें निकलके परंज्योतिकों पाते हैं. इत्यादि श्रुति प्रभृति जो जो जैमिनि स्वामी कही गये वो सर्व दोष वो मतकों तो है हि.

वैसेहि जैमिनि स्वामीभी परब्रह्मकोंहि जानेवाले–वाकेहि उपासककों कहेते हैं. वैसा माने तो वो अर्चिरादिका जो प्रकरण है: वहां श्रुतिमें एकहि अधिकारी वाके नहि कहे किंतु दोकों कहे हैं. एक पंचाग्निवालोंकों–और एक परब्रह्मोपासीनकों श्रुति " तद्य इत्थं विदुर्ये च मेरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासऽतेअभिप्रमभि संभवंति इति–जो इत्थं विदुः और फीर " यंच " करके अरण्यमें तपके उपासक ऐसे पंचाग्नि विद्यावालोंका पहिले कहीके दुसरे परमात्माके उपासक कहीके उनकों अर्चिरादि गति कही है. फीर तो जैसी श्रुति, और वोभी जहां कोनको ले जाते हैं ? कोनको अपुनरावृत्ति है ? ऐसा प्रकरणही है वहांहि जैसा कहती है वैसाहि अर्थ ग्रहण करनां चाहीये. फीर यामें युक्तिभी है. आप वोभी वेदांत प्रमाणसें दीखाते हैं. "तत्क्रतुश्च" तत्क्रतु न्याय है.

जैसी जाकी वहां वैदिक उपासना वैसी अंत वाकों प्राप्ती यह " यथा क्रतु " आदि श्रुतितें सिद्ध है. त्यों न्याय भी है कि जैसा चहावे ध्यावे वैसा अंत पावे. वो वैसा पावे वहां त्यों वाकों ध्यावेहि. क्योंकि वो वोहि चाहता है. तो प्रथम बादरि मत तो ठहरताहि नहि. जो स्वप्नमें भी ब्रह्माका विचार नहि कीया–वाके लोकमें जानां–वो लोककों पानां नहि चहा सो मीले, यह तो स्पष्ट असंगत है. त्यों जै-

मिनि भी परब्रह्मकों पानांहि कहते हैं. परंतु जो उतनां पूर्ण फल न चाहिके आरंभेंतेहि हमतो यह संसारतें-प्रकृति मंडल ते-वाके श्रष्टी-प्रलय जन्ममरणकी घटमालतें नीकल जाये, पार हो जावे तो वस है उतनांहि चहते है. फीर वातें वढके परमात्माके नित्यधाममें नित्य जा रहे वहां नित्य कैंकर्य आनंदानुभवमें लगे रहे यह पद है सो यह उपासना करनेवाले न चहे, न वाकों ध्यावे-सो वो स्थान वो फल भी कैसे पावे ? वो तो वोहि पावे है-जाकों वो ध्यावे कि; जीनका यहां तेहि वो आरंभ है. कि लोकांतरके मोह सरीख हम मुक्त स्वतंत्र हो जावें. हो रहै यह मोहभी जाइके-अणुहि क्यों रहे ! अणुकाहि क्यों आनंदले ? अनंत विभुको अनंत प्रकार वाके शरीर है वेंसे शरीरहि समझके वो शरीरीकों सेवे मांगे वो चाहते ध्याते वो प्रियतमकी मधुर' मुरती हृदयमें लाते हर्षाश्रु वहाते, कभी वो छुट गइ तो वियोगमें चिल्लाते महा दुःख पाते हैं. वो सदाके लीये संपूर्ण-कृत कृतात्मा परमपदमें परम पुरुषके पास जाके, वाकों पाते हैं. यह तत्क्रतु न्याय श्रुति संमत है. वाते येहि निर्णय है. और सुदृढ करके यहां इति करते हैं.

सूत्र—विशेषं च दर्शयति ॥ १५ ॥

अर्थ—और विशेष श्रुति दीखाती है.

विवेचन—प्रतिकालंवनके जो उपासी है उनकों परिमित फल दीखाया है. उनके लीये खास गति दीखाइभी नहि. वातें जो उपर कही गये वोहि ठीक है. और यद्यपि वामें दो प्रकार अधिकारी ठहरते हैं तोभी जो परमब्रह्मके उपासक हैं वोहि पूर भाग्यशाली परम फलकों पानेवाले है. तो हमभी वोहि होवें. परमपद पावें, वोहि अंत इति तैसे यहां पादकाभी इति है.

—इति चतुर्थाध्याय तृतीयपाद पूर्ण—

॥ श्रीमतेरामानुजायनमः ॥

चतुर्थाध्याय चतुर्थपाद.

परमपदमें पहुंच गये तो फीर क्या बाकी रहा! वो मुक्त, वहां पहोंचजानेवालोंका ऐश्वर्य क्या? वो क्या होते हें? कैसे होते हैं? क्या भोगते हैं? वहांतें यहां आते नहि. सो आय नहि सकते ऐसा नहि. वो आनां चहतेहि नहि. ऐसा क्या हे? ऐसा उनका वहां जो होता है. वो कहेनेका आरंभ करते हैं. पादपुर्तितें वो पुरा कहेदेंगे.

मुक्त भये तो क्या मीलता है. जैसे राजा भये तो देह तो वोहि काली-रोगी-जो हो सो रहे. परंतु वैभव-राज्य-संपत्ति प्राप्त होती है. देवलोकमें गये तो देहभी उत्तम-ओर संपत्तिभी वढती है-प्राप्त होती है. त्यों मुक्त भये तो क्या? वोतो कछु रहेहि नहि. न देह न प्राकृत पदार्थ-तब वहां कोन संपत्ति? कैसी मीलती हे? मुक्तकी प्रभुताको, ब्रह्मातेंभी अधिक क्यों? ब्रह्माके शरीरसंपत्ति देखीयें-वैभवकों विचारीये; वातें वढके आत्माकी क्या संपत्ति? कहांसें मीलती हे? कैसी मीलती हे? क्रमसें सर्व कहेंगे. पहिलेतो आत्मा मुक्त होना! वोहि वडी संपत्ति है. कोन प्रकार सो कहेते हैं.

प्पन होना है. वाकों सूत्रकार समझाते हैं कि संपत्तिका आविर्भाव होता है. अर्थात् बाहिरकी संपत्ति कोइ नहि आती है. किंतु प्रथमतो जो आपमें तिरोहित दबी रही वाका आविर्भाव होता है. वो खुलती है. वो आपहिकी है. वाकी अनिष्पत्ति रही सो निष्पत्ति होती है. आपमें भीतर रही बहार आती है. जाका अभीलों आप उपभोग अनुभव नहि करता रहा. यह क्या बात है? वैसा स्थितिके फेरफारतें हो सकता है. यहां जो संपत्तिका आविर्भाव, स्वरुपतें अभिनिष्पत्ति सो.

सूत्र—मुक्तः प्रतिज्ञानात् ॥ २ ॥

अर्थ—मुक्तकि प्रतिज्ञातें.

विवेचन—मुक्तावस्थाके लीये कहेते हैं. बद्धावस्थामें वो नहि अनुभव सकते हैं—नहि भोग सकते हैं. यह शरीरमेंतें जब निकलता है, परंज्योतिकों पाता है. तब वो ऐसा होता है. वहांलों नहि क्यों? वो बद्धावस्थामें रहा—केदी रहा! हमारी कीतनीभी विभूति रहे पर हम जेलमें वो भोगसकते हैं? हमारेमें चलनेकी शक्ति है. परंतु हम व्याधिग्रस्त रहे तो पांऊंभी दे सकते हैं? अरे! हमहिमें चलनेकी शक्ति जो अभी अवस्थाके साथ आविर्भाव भयी है सो हम बाल दो मास चार मास रहे तब भोग सकते रहे क्या? तात्पर्य बद्धावस्थामें एक स्थिति उन्हीकी मुक्तावस्थामें दुसरी होती है, जैसे बीमारीमें एक तनदुरस्तीमें, दुसरी. बाल्यावस्थामें एक युवामें, दुसरी—और वो हमारी हमारे वशकी फीर हममें हो—वो हमारे साथ हो. वाके भोगमें तारतम्य है. वो न भोग सके. और भोग सके वो संपत्ति प्राप्त होके अप्राप्त सरीख—हममें होके तिरोभाववाली रहती है. तैसे यह जो स्थिति है सो बद्धावस्थाकी नहि. शरीर केदमेंतें छुटने पीछेकी है. पानीमेंतें लकडा बहार आवे और फीर परंज्योतिको पाये. वो लकडेको आग

लगे. ऐसी दो वातों हो तब वो काष्टमेंहि तिरोहित रही–उष्णता–प्रकाशक गुणवाली अग्निका आविर्भाव होता है! वैसे हम देहतें छुटे. और पारसकों परसपें मुक्त भये. तो औरहि संपत्तिवाले स्वरुपतेंहि हो जाते हैं. कही चूके कि वो संपत्ति–और जो हमतें भिन्न नहि हममें तिरोहित रहीके आविर्भाव हमारेहि रूपकी अभि निष्पत्ति–वो क्या है?

सूत्र—आत्मा प्रकरणात् ॥ ३ ॥

अर्थ—आत्मा प्रकरणतें.

विवेचन—प्रकरणतें पाया गयाकि यह आत्मा है. आत्माकी प्रकरणमें क्या व्याख्या है. कोन आत्माकी–मुक्तात्माकी–जाकी प्रतिज्ञा है. जाके स्वरुपकी संपत्तिका आविर्भाव होता है कहते हैं. वो "अपहत पाप्मा विजरो विमृत्यु–विशोको विजीगत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः" मुक्त हो चूका. सूक्ष्म देहभी न रही के परंज्योतिकाभी साक्षात्कार हो गया. फीर वाकों कोइ दोष नया तो लगहि नहि सकता. छाछमेंतें घृत वनाके छाछमें भी धरे तो फीर वो छाछ वाकों नहि असरकर सकता है. वैसे यह सदा निर्दोष रहता है. फीर प्रकृति संबंधतें जो कष्ट रहे वो सब जरा, मृत्यु, शोक, जुगुप्सा, भूख–प्यास, यह भी गये. ऐसा भूत वर्तमानकों व्यवस्थाके साथ "सत्य काम, सत्य संकल्प" जो जहां है सो वाके लीये जैसा चाहे वैसा होके वाके अनुभवमें आवे "यह अनिष्ट निवृत्तिपूर्वक कीतनी वडी सत्ता है! कीतनी वडी संपत्ति है! अब वाकों खुब विचारें! वो शक्तियें संसारदशामें प्रकृतिके वंधनतें तिरोहित रही. वाकीहि इच्छाके फलमें सर्वेश्वरने वाकों वो वो प्राकृत इच्छा पूर्ण करनेकों वो कर्म करावने और फल भोगावनेकों वाकों तिरोहित रखी रही. जब वानें चाहा मांगा यत्न कीयाकि, श्रीहरि! मोंको यह प्रकृतिबंधननें छोडा–यह भोग मोंको

अनंत ज्ञान वैसे आनंदस्वरुप आपहि है. याको–भोगनेवाला यह आत्मा होता है. तब याका आनंद कीतना ? याकि क्या गणना करे ! फीर वो नित्य है. आनंदवल्लीमें बडे विस्तारतें कहा–आनंदमयाधिकरणमें आ गया है. वोहि यहां स्मरण वो करावते हैं कि–आत्माका सत्य काम सत्य संकल्पत्वका उपयोग वो यह आनंदनिधानकों भोगनेमें करता है. वो पुरी ऐश्वर्यता हम वाकी समझते हैं. याका पूर्व स्वरुपाविर्भाव तबहि भया कहा जावे, जब भीतर दलकाभी पूरा ज्ञान अनुभव भोग, जो याकों मील सके ऐसा है. मीलनेंकोंहि है. सोभी पावे. फीर वो याकों कैसे भोगता है. आपकाहि आनंद आप समझके कैवल्य भोग तैसे यह सर्वेश्वरकोंभी आपहि समझके अविभागतें भोगतें हैं–सूत्र है कि.

[अविभागेन दृष्टत्वाधिकरणम्]

सूत्र—अविभागेन दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

अर्थ—अविभाग करके देखनेतें.

विवेचन—परंज्योति रुपकों पाके आपके रुपमें प्रकाशित भये कहे तो येहि विचार आवे की तब ब्रह्म छूट जाता होगा ? और आप स्वतंत्र आपकों भोगता रहता होगा ? राजानें जेलमेंतें छोडके रुबरुमें जागीरका पटा पीछा दीये तो वो जागीरकों स्वतंत्रतासें भोगे. तैसे यह नहि होते हैं. वैसे आपकों भिन्न स्वतंत्र समझनांभी ज्ञानस्वरुपका पूरा आविर्भाव आपका संपूर्ण ज्ञान नहि यथावस्थित ज्ञान बहिर्दल प्रकृति तें भिन्न–मध्यम–हम आत्मा आनंद स्वरुप–उनतें अंतर्दल संपूर्ण हम वाके शरीर अवयव अंश एकहि अपृथक् कभी न भिन्न रहे. न हो सकते हैं. ऐसा मात्र ज्ञान–जाननां नहि–किंतु अनुभवनां–आनंदकों जाननां सो अनुभवनां भोगनां होता है. परब्रह्मका भोग सो हमारा

भोग-वाका आनंद सो हमारा आनंद होता है. स्त्री प्रतिके अविभाग सरीख क्योंकि उपासना समयहि कही गये हैं कि "आत्मा करके उपासे रहे" तो "तत्क्रतु न्याय" है. सो फलमेंभी स्वाभाविक ज्ञानतें अविभाग करकेहि अनुभव होता है. यह भाग्यका क्या कहे! याकों ठीक ठीक विचार देखे-यह वेदांतका सार रहस्य उपासना और फल उभयमें है. यह ऐक्य है कि हम वाके अंतर्गत है? वो मुख्य है वो हम हैं.

सामान्य ऐश्वर्य कही चूके वाका अब शोधन करते हैं-जो यह आत्मा परंज्योति रूपकों पाइके आपके रूप करके अभिनिष्पन्न होता है कहा सो. वाका रूप सो कैसा दो प्रकार हो सके! एक जैसा कहा वैसा-ब्रह्मगुण जो अपहत पाप्मादि आठ है-वो स्वभाव सिद्ध होनेतें वो गुण प्रयुक्तहि-और वो यदि औपाधिक हो जैसे कोइ आत्माकों निर्गुण अकर्त्ता विज्ञान मात्र कहेते हैं ऐसा गुण रहित स्वरुप मात्र वोहि स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते करके कहा हो. वो मुक्तात्मा कैसा होता है? जाका फीर और कुछ नहि होता-न जो फीर संसारमें बद्ध होके आता है. वामें प्रथम जैमिनि स्वामीका मत दीखावते हैं.

[ब्रह्माधिकरणम्]

सूत्र—ब्राह्मेण जैमिनि रुप न्यासादिभ्यः ॥५॥

अर्थ—ब्रह्म गुणवाले, जैमिनि उपन्यास आदितें.

विवेचन—जैमिनि स्वामी गुणवाला स्वभाव सिद्ध मानते हैं. क्योंकि श्रुतिमें वैसाहि उपन्यास कीया है. दहरवाक्यमें जैसे ब्रह्मके गुण "एप आत्मा अपहत पाप्मा" आदिसें कहते हैं वैसाहि प्रजापति वाक्यमें यह मुक्तात्माके लीये वोहि अष्टगुण और आदि कहेतो जक्षन् क्रीडन् करके भी कहे हैं वातें सिद्ध होता है कि यह स्वरूपावि-

भाव सो यह गुण प्रयुक्त यह ऐश्वर्य यह संपत्तिभी आत्माकी स्वाभाविक स्वरूप सिद्ध है. जो और मत है वोभी सप्रमाण है.

सूत्र—चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ६ ॥

अर्थ—चितन्मात्र करके तदात्मक होनेतें ऐसा औडुलोमिः

विवेचन—चिति-चेतन-तन्मात्र-वोहि मात्र चैतन्य स्वरूप मात्र वो स्वरूप आविर्भाव भये तो मात्र चैतन्य स्वरूप होता है. क्योंकि वाकों ज्ञानात्मकहि श्रुति कहती है. "सयथा सैंधवनोऽनंतरो बाह्य कृत्स्नो रसघन एव" "एवंवा- अरेऽयमात्माऽनंतरो बाह्यः कृत्स्नो प्रज्ञानघन एवं" जैसे सैंधवका टुकडा भीतर बाहिर समग्र रसघनहि तैसेहि यह आत्मा अंतर बाह्य समग्र विज्ञानघनहि "एव" कहे तो विज्ञान मात्र तो गुण नहि भये. विज्ञान स्वरूपहि विज्ञानात्मक जैसा सैंधव रसात्मक वैसा वो स्वरूप आविर्भाव भये तो होता है. वातें येहि मानना होगा कि अपहत पाप्मत्वादि गुण जो कहे सो सुख दुःखादि विकार जो अविद्यात्मक है वाकी व्यावृत्तिके लीये कहे हैं. स्वरूप तो चैतन्य मात्र हि. यह मतके उपर भगवान बादरायण आपकी ओर तें कहेते हैं. दोनों मत ठीक है.

सूत्र—एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥ ७ ॥

अर्थ—ऐसे उपन्यासतें पूर्व भावतें अविरोध है बादरायण.

विवेचन—बादरायण स्वामी कहेते है यह दोनोंके मतमें परस्पर विरोध हैहि नहि. विज्ञान मात्र स्वरूप कहा सो ठीक है. अपहत पाप्मत्वादि प्राकृत धर्मकी व्यावृत्ति परभी ठीक है. त्यों फीर वामेंहि सत्य-

काम सत्यसंकल्प गुणभी है. वाकों विज्ञानघनके साथ माननेमें विरोधभी तो नहि है, जैसे सैंधव घन कहेतो फीर वामें खारापन वाकी रंगत आकार कहेतो विरोध नहि है. एव कार विज्ञान मात्र कहेतो वामें और संग कुछ नहि. जैसे आम्रफलमें सर्प रसमय नहि. छीलका गुटलीभी है. वैसा नहि. यह समुझावनेकों "एव" कार है. तात्पर्यकि ज्ञानस्वरूप और ज्ञानवान् तेसेंहि प्रकृतितें विशुद्ध और सत्यसंकल्पादि युक्तभी है. वो श्रुति और स्पष्ट करती है. वो गुण है एसी प्रतीति वाके उपयोगतें होती है मुक्त विषयीकहि प्रकरणमें और वहांहि कथन है.

[संकल्पाधिकरणम्]

सूत्र—संकल्पादेव च तच्छ्रुतेः ॥ ८ ॥

अर्थ—संकल्पतेंहि वो श्रुतितें.

विवेचन—"वो वहां खेलता है. क्रिडा करता है." सो संकल्पतेंहि. राजाकों क्रीडा करनी होंतो औरकों हूकम दे. वो सामग्री एकट्ठी करे. एसी अपेक्षा रहती है. एसी याकों नहि रहती. "सयदि पितृलोक कामोभवति संकल्पादेवा स्यपितरः समुत्तिष्ठेति" जो वो पितृलोककी इच्छा करता है तो वाके संकल्पतेंहि पितर खडे होता है. जो जो चाहता है सो संकल्पतें होता है. "वो श्रुतिका वचन जो सत्य संकल्पत्व–स्वरूपसिद्ध गुण वामें है करके कहा. याकी पुष्टी करता है. वातें वो चेतन मात्र नहि ठहरता.

सूत्र—अत एव चानन्याधिपत्तिः ॥ ९ ॥

अर्थ—वातेंहि वाका अन्य अधिपति नहि.

विवेचन—अधिपति कहेतो विधिनिषेध–जो माननेहि पडे, सो

भाव सो यह गुण प्रयुक्त यह ऐश्वर्य यह संपात्तिभी आत्माकी स्वाभाविक स्वरूप सिद्ध है. जो और मत है वोभी सप्रमाण है.

सूत्र—चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ६ ॥

अर्थ—चिततन्मात्र करके तदात्मक होनेतें ऐसा ओडुलोमिः

विवेचन—चिति–चेतन–तन्मात्र–वोहि मात्र चैतन्य स्वरूप मात्र वो स्वरूप आविर्भाव भये तो मात्र चैतन्य स्वरूप होता है. क्योंकि वाकों ज्ञानात्मकहि श्रुति कहती है. "सयथा सैंधवनोऽनंतरो वाह्य कृत्सो रसघन एव" "एवंवा- अरेऽयमात्माऽनंतरो वाह्यः कृत्सो प्रज्ञानघन एवं" जैसे सैंधवका टुकडा भीतर वाहिर समग्र रसघनहि तैसेहि यह आत्मा अंतर वाह्य समग्र विज्ञानघनहि "एव" कहे तो विज्ञान मात्र तो गुण नहि भये. विज्ञान स्वरूपहि विज्ञानात्मक जैसा सैंधव रसात्मक वैसा वो स्वरूप आविर्भाव भये तो होता है. वातें येहि मानना होगा कि अपहत पाप्मत्वादि गुण जो कहे सो सुख दुःखादि विकार जो अविद्यात्मक है वाकी व्यावृत्तिके लीये कहे हैं. स्वरूप तो चैतन्य मात्र हि. यह मतके उपर भगवान वादरायण आपकी और तें कहेते हैं. दोनों मत ठीक है.

सूत्र—एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं वादरायणः ॥ ७ ॥

अर्थ—ऐसे उपन्यासतें पूर्व भावतें अविरोध है वादरायण.

विवेचन—वादरायण स्वामी कहेते है यह दोनोंके मतमें परस्पर विरोध हैहि नहि. विज्ञान मात्र स्वरूप कहा सो ठीक है. अपहत पाप्मत्वादि प्राकृत धर्मकी व्यावृत्ति परभी ठीक है. त्यों फीर वामेंहि सत्य-

काम सत्यसंकल्प गुणभी है. वाकों विज्ञानघनके साथ माननेमें विरोधभी तो नहि है, जैसे सैंधव घन कहेतो फीर वामें खारापन वाकी रंगत आकार कहेतो विरोध नहि है. एव कार विज्ञान मात्र कहेतो वामें और संग कुछ नहि. जैसे आम्रफलमें सर्प रसमय नहि. छीलटा गुटलीभी है, वैसा नहि. यह समुझावनेकों "एव" कार है. तात्पर्यकि ज्ञानस्वरूप और ज्ञानवान् तेसेंहि प्रकृतितें विशुद्ध और सत्यसंकल्पादि युक्तभी है. वो श्रुति और स्पष्ट करती है. वो गुण है एसी प्रतीति वाके उपयोगतें होती है मुक्त विषयीकहि प्रकरणमें और वहांहि कथन है.

[संकल्पाधिकरणम्]

सूत्र—संकल्पादेव च तच्छ्रुतेः ॥ ८ ॥

अर्थ—संकल्पतेंहि वो श्रुतितें.

विवेचन—"वो वहां खेलता है. क्रिडा करता है." सो संकल्पतेंहि. राजाकों क्रीडा करनी होतो औरकों हूकम् दे. वो सामग्री एकठी करे. एसी अपेक्षा रहती है. एसी याकों नहि रहती. "सयदि पितृलोक कामोभवति संकल्पादेवा स्यपितरः समुत्तिष्ठेति" जो वो पितृलोककी इच्छा करता है तो वाके संकल्पतेंहि पितर खडे होता है. जो जो चाहता है सो संकल्पतें होता है. "वो श्रुतिका वचन जो सत्य संकल्पत्व—स्वरूपसिद्ध गुण वामें है करके कहा. वाकी पुष्टी करता है. वातें वो चेतन मात्र नहि ठहरता.

सूत्र—अत एव चानन्याधिपतिः ॥ ९ ॥

अर्थ—यातेंहि वाका अन्य अधिपति नहि.

विवेचन—अधिपति कहेतो विधिनिषेध-जो माननेहि पडे, सो

अब वाकों नहि रहे. जेलसें छुटे सो स्वतंत्र होते हैं. उनका जेलर-न कोइ जडज अधिपति फीर है. चाहे वहां फीरते फीरे. वोहि रीति श्रुति कहती है. “सस्वराट् भवति. सर्वेषुलोकेषु कामचारी भवति” वो स्वतंत्र होता है. सर्व लोकमें कामचारी है. स्वतंत्र कहोकि सत्यसंकल्प कहो. वाकी इच्छाकों रोक नहि होती है. वोहि अनन्याधि पतित्व ऐसा उनका स्वरूप है. औरभी खोलते हैं.

उनकों देह इन्द्रियेंवाला शरीर होता है. वा नहि? स्वरूपके साथ गुण आये. उनके साथ क्रीडा यथेच्छ विहार आया तो अब शरीरभी होनां चाहीये. यह अर्थात् ठहरा-बादरी कहते हैं.

(अभावाधिकरणम्)

सूत्र—अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ १० ॥

अर्थ—बादरी कहते हैं अभाव है ऐसाहि कहा है.

विवेचन—श्रुति कहती है, वो अशरीर होता है. वातें वाकों प्रिय अप्रिय नहि स्पर्श करते हैं. शरीर रहे तो प्रिय अप्रिय स्पर्श करते हैं.” ऐसा कहा है तो वैसाहि मानें-और वातें यह ठहरेकि मुक्तकों शरीर नहि होता है.

सूत्र—भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ ११ ॥

अर्थ—जैमिनि कहते है भाव है विकल्प कथनतें.

विवेचन—श्रुतिमें विविध “कल्प” कहे हैं. “स एकधा भवति त्रिधा भवति-पंचधा भवति-सप्तधा” इत्यादि. वो एक होके विविध जीतनें देह धारण करनें चाहे उतनें धारता है. ऐसा कहा है तो वाकों शरीर होते हैं. वो चाहे उतनें वैसे परंतु वो शरीरवालाहि ठहरता है.

आत्मा तो अच्छेद्य है. सो एक स्वरूपतें अनेकधा कैसे होवे ! तो शरीर करकेहि समझनां. फीर तो "शरीर नहि" सो वहांहि कहे वैसे "प्रिय अप्रिय"–पुण्य पापके फलरुप–कर्मके भोगरुप–प्राकृत नहि. दिव्य द्रव्यके शरीर होते हैं.

सूत्र—द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ १२ ॥

अर्थ—द्वादशाह सरीख उभय विध; यातें बादरायण.

विवेचन—बादरायण स्वामीका मत है कि दोनों ठीक है. जैसे यज्ञमें द्वादशाह कर्म करे न करे–इच्छाकी बात है. तैसे मुक्त, शरीर धारे, न धारे,–इच्छाकी बात है–वाका काम तो–वो हो तोभी और न हो तोभी चलता है.

सूत्र—तन्वभावे संध्यवदुपपत्तेः ॥ १३ ॥

अर्थ—तनुके अभावमें स्वप्न सरीख घटीत है.

विवेचन—जैसे स्वप्नमें इश्वरकृत सृष्टीकों हम अनुभवते हैं. यह हाथ पेरके उपयोग कीये विना, तैसे वाके दीये करणतें आपकी और तें तनु बनाये विना भोगनां बनता है. तैसेहि.

सूत्र—॥ भावे जाग्रद्वत् ॥ १४ ॥

अर्थ—हो तो जाग्रत सरीख.

विवेचन—संकल्पतें शरीर धारण कीये तो जाग्रत सरीख। पितृ लोकादिका अनुभव आपके संकल्पते होता है. कभी उनकी लीला परम पुरुषकी इच्छाके अंतर्गत होती है. कभी आपहितें होती है. तब जैसे परमपुरुष लीलार्थतनु धारण करते हैं वैसे मुक्त भी धारण करते हैं. परमात्मा तो विभु सर्वत्र हैहि. यह तो अणु है. फीर अनेकधा अनेक शरीर एक साथ कैसे धारण कर सके ?

अब वाकों नहि रहे. जेलसें छुटे सो स्वतंत्र होते हैं. उनका जेलर-न कोइ जडज अधिपति फीर है. चाहे वहां फीरते फीरे. वोहि रीति श्रुति कहती है. "सस्वराट् भवति. सर्वेषुलोकेषु कामचारी भवति" वो स्वतंत्र होता है. सर्व लोकमें कामचारी है. स्वतंत्र कहोकि सत्यसंकल्प कहो. वाकी इच्छाकों रोक नहि होती है. वोहि अनन्याधि पतित्व ऐसा उनका स्वरूप है. औरभी खोल्ते हैं.

उनकों देह इन्द्रियेंवाला शरीर होता है. वा नहि? स्वरूपके साथ गुण आये. उनके साथ क्रीडा यथेच्छ विहार आया तो अब शरीरभी होनां चाहीये. यह अर्थात् ठहरा-बादरी कहते है.

(अभावाधिकरणम्)

सूत्र—अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ १० ॥

अर्थ—बादरी कहते हैं अभाव है ऐसाहि कहा है.

विवेचन—श्रुति कहती है, वो अशरीर होता है. वाते वाकों प्रिय अप्रिय नहि स्पर्श करते हैं. शरीर रहे तो प्रिय अप्रिय स्पर्श करते हैं." ऐसा कहा है तो वैसाहि माने-और वातें यह ठहरेकि

आत्मा तो अच्छेद्य है. सो एक स्वरूपतें अनेकधा कैसे होवे ! तो शरीर करकेहि समझनां. फीर तो "शरीर नहि" सो वहांहि कहे वैसे "प्रिय अप्रिय"–पुण्य पापके फलरुप–कर्मके भोगरुप–प्राकृत नहि. दिव्य द्रव्यके शरीर होते हैं.

सूत्र—द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ १२ ॥

अर्थ—द्वादशाह सरीख उभय विध; यातें बादरायण.

विवेचन—बादरायण स्वामीका मत है कि दोनों ठीक है. जैसे यज्ञमें द्वादशाह कर्म करे न करे–इच्छाकी वात है. तैसे मुक्त, शरीर धारे, न धारे,–इच्छाकी वात है–वाका काम तो–वो हो तोभी और न हो तोभी चलता है.

सूत्र—तन्वभावे संध्यवदुपपत्तेः ॥ १३ ॥

अर्थ—तनुके अभावमें स्वप्न सरीख घटीत है.

विवेचन—जैसे स्वप्नमें इश्वरकृत सृष्टीकों हम अनुभवते हैं. यह हाथ पेरके उपयोग कीये विना, तैसे वाके दीये करणतें आपकी ओर तें तनु बनाये विना भोगनां बनता है. तैसेहि.

सूत्र—॥ भावे जाग्रद्वत् ॥ १४ ॥

अर्थ—हो तो जाग्रत सरीख.

विवेचन—संकल्पतें शरीर धारण कीये तो जाग्रत सरीख पितृ लोकादिका अनुभव आपके संकल्पते होता है. कभी उनकी लीला परम पुरुषकी इच्छाके अंतर्गत होती है. कभी आपहितें होती है. तब जैसे परमपुरुष लीलार्थतनु धारण करते है वैसे मुक्त भी धारण करते है. परमात्मा तो विभु सर्वत्र हहि. यह तो अणु है. फीर अनेकधा अनेक शरीर एक साथ कैसे धारण कर सके ?

सूत्र—॥ प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ॥१५॥

अर्थ—प्रदीप सरीख आवेश वैसाहि दीखाते हैं.

विवेचन—जैसे दीप एक जगे धरे तो अन्यत्र प्रभा करके प्रवेश करता है तैसे आत्मा एक शरीरमें रहीके अन्य शरीरोंमें भी स्व प्रभा करके प्रवेश करता है. वो शक्ति वाकी स्वाभाविक है. अभी बद्ध दशामें कुंठीत होनेतें एक स्थानमें हृदयमें रहेपर एक देहमेंहि प्रकाश करता है वैसा संकोच मुक्तावस्थामें नहि रहेता. वो सर्वत्र ज्ञान ज्ञानशक्तितें प्रसरे. ऐसा जब सो " परंज्योत्तिकों पाया " तबतें वाके मीलनेके साथ वाके समान धर्मवाला हो गया है. वामें रहे धर्म वो प्रकट हो जाते हैं वाकों शंका करके सुदृढ करके श्रुति कहती है " प्राज्ञेनात्मना. संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेदनान्तरमिति " प्राज्ञतें आत्मा जब संपरिष्वक्त हो जाते है तब वो बहार. भीतर कछु नहि जानता ऐसा श्रुति तो ब्रह्म संपत्ति परंज्योतितें मीले तो कुछ ज्ञान भान बाहिर भीतरका नहि रहता है. करके कहती है. फीर यह सर्वज्ञ होता है. सर्व शरीरमें प्रवेश करता है. यह क्या ?

सूत्र—॥ स्वाप्यय संपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ॥ १६ ॥

अर्थ—सुषुप्ति मरणकी अपेक्षातें आविष्कार है.

विवेचन—वो दोनों अवस्थामें सतके साथ मीलता है. सुषुप्तिमें और देह छोडनां हो तब. परंतु सुषुप्तिमें तो कही गये हैं कि वाके कर्म शेष होनेतें परमात्माके आधीन उनके ज्ञानका संकोच रहता है. यह श्रुति सुषुप्ति अवस्थाकी है. वोहि प्रकरणमें आगे मुक्तके लीये

अब तो अपहतपाप्मा भी हो गया है. वातें तिरोधान-होनां भी नहि. तब फीर वोहि परमेश्वर. जो सर्वेश्वरकी शक्ति सो वाकी भयी ! हां ठीक है. परंतु वो सर्व स्थिति सत्य शास्त्रेंत समझनां है. शास्त्र उन्हीके लीये कहेते हैं. कि वो जगत नहि करते हैं. और जगत अनेक वार भयेपें सर्वेश्वरके साथ और कोइ सहायमें रहा. ऐसा शास्त्रेंत देखभी नहि पडता सूत्रकारका निर्णय है कि.

[जगद्व्यापारवर्जाधिकरणम्]

सूत्र—जगद्व्यापार वर्जं प्रकरणादसंनिहि-त्वाच्च ॥ १७ ॥

अर्थ—जगत व्यापार रहीत-प्रकरणतेंहि पास नहि होनेतें.

विवेचन—उनका जगत व्यापार नहि दीखता. न प्रकरण देखेतो एकेश्वर विना या समय वो कार्यमें कोइ पासभी रहा. एकमेव अद्वितीय एक नारायणहि रहा. ब्रह्मा नहि. महादेव नहि. तैसे सर्वमेंभी वो अंतर्यामी अमृत दीव्यदेव एक नारायण वो एकहि कर्त्ता भर्त्ता संहर्त्ता दीखता है. सिद्ध होता है. वातें मुक्त वो काम नहि करते है यह सिद्धांत है.

अभीभी येहि प्रकरणकों सुदृढ करते हैं. अनेकेश्वरवादन उठे श्रुति "स्वस्वराऽभवति" आदि कहीके जो चाहे सो लोक वाके सामनें खडे होते हैं कहती है. सो वाके संकल्पतें वो श्रष्टी होती है. ऐसा क्यों न मानें-पितृलोक मातृलोक आदि बहुत गीनाये है. प्रत्यक्ष यह उपदेश वेदांतमें है.

सूत्र—प्रत्यक्षोपदेशादितिचेन्नाधिकारि कमंडलस्थोक्तेः ॥ १८ ॥

अर्थ—प्रत्यक्ष उपदेशतें नहि कहेतो नहि अधिकारीके मंडलमें रहेके लीये कहा है.

विवेचन—वेदांतमें ऐसा प्रत्यक्ष उपदेश होनेतें मुक्तोंकोभी जगत व्यापार है. नहि है ऐसा नहि. या शंका उठायेतो समाधान हैकि वो अधिकारमें लगाये गये ऐसे ब्रह्मादेव पितृ उनके लोकके जो भोग वो वो मुक्तके बनाये भये वो नहि भोगता मुक्त चाहता वो लोकमें रहे भोगकों आप शक्तितें उनकों भोग सकता है. परमात्माकी सकल विभूतिका भोगी वो राजकुमार सो होता है. पिताके सर्व राज्य तें सर्वत्र भोग पिता सरीख मांगे. परंतु नियमनको वाको संबंध नहि. यो भोग प्रकरणकों लेके जो चाहे सो हो. नियमनको वाको संबंध नहि. फीर शंकाकों और रीति अवकाश है. यह भोग नश्वर विकारी है. उनकों भोगी भये तो वो मुक्तके भोग अंत वो नहि भये क्या ?

सूत्र—॥ विकारावर्ति च तथा हि स्थितिमाह ॥ १९ ॥

अर्थ—विकारके बाहिर वैसी स्थिति कही है.

विवेचन—इच्छासें नश्वर भोग भोगनेमें आये तो वोहि वाके भोग ऐसा नहि ठहरता इच्छासें गाडी चलाये तो कुमारको चमन नहि होता. न गाडी तुट जानेसें वाके भोगका नाश भया माना जाता है. वाकी स्थिति अब वो विकारीयोंकि मर्यादाके उपर है. वो जो यह भोग भोगता है सो वोहि भोगकी भोगी नहि. अपने पुज्यपिताकी विभूतिके अंतर्गत नश्वर भोगभी भागे तो वाके अनश्वर भोगकों ज्ञानी नहि. वो बनेहि है. गाडी चलायेतो कुमारत्व बना है. परमात्माकी विभूति अनंत नश्वर एक पादतें त्रिगुण त्रिपाद अमृतदिवि, फीर वाके उपर आप आनंद अनंत आपके अनंत कल्याणगुण गण ऐसे वाको " भूमा " भाग है. जाको पार नहि. वोहि नित्य अनंत फल वो मुख्यहि पाया है. फीर वाको " अथ सोऽभयंगतो

भवति" वोतो फीर सदाके लीये अभय जन्ममरण प्रकृति लयके विकारी मंडलके पार और वातें कोटी गुण उत्कृष्ट जाकी मात्रा लेशमें जगदानंद वैसे रसरूपको पावता–"रसोवैसः." "रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनंदी भवति." वाके सर्व मंडल स्थान अधिकारी विभूतिके भोग भोगे तो वो अंतवान भोगवाला ज्यों नहि ठहरता–त्यों वो आपहि स्वामीभी नहि ठहरता नियंतृत्व तो वाकाहि–और तो शरीर सदा हैहि–वोहि जगतकाभी है. यह विषयमें भ्रम नहि करनां.

सूत्र—दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ॥ २० ॥

अर्थ—ऐसाहि प्रत्यक्ष अनुमानमें दिखाया है.

विवेचन—मुक्त और नित्योंकाभी नियंता तो जो सर्वका सोहि उनका नियंता नित्य मुक्त सर्व शरीर शेष परतंत्र, वो तो एकहि–वाके समान कोई नहि. वातेंहि देव सर्व कंप रहे हैं. वाके भयतें धावते हैं. वाके शासनमें सर्व रहे हैं. तात्पर्य–ऋषी देव मुक्त नित्य कोइ हो–सर्वेश्वरस्वामी शेषी तो श्रीमन्नारायणहि–ऐसे वोहि सर्वेश्वर–वोहि श्रुति गीताजी इतिहास पुराणका एक कंठघोष–वाके पास और अणु चेतन कोन विचारे! जो आप कहते हैं "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" और वैसेहि दिव्य दृष्टीतें अर्जुनकों अनुभव कराइ दीया–ज्यों बंधमें त्यों मोक्षमेंभी वोहि हेतु है. वोहि आनंद देता है. ऐसी सर्व अचित् चित्की स्वरूपस्थिति प्रवृत्ति सर्वदा सर्वथा वाकेहि स्वाधीन है.

जामें मुक्तका सत्यसंकल्पत्वभी आइ जाता है. यह अज्ञान करके आपका स्वतंत्र मानकेहि विकल्प है कि स्वतंत्र बने सो चाहे सो करे! फीर सर्वेश्वरके परतंत्र क्यों रहे! और न रहे तो जगत क्यों न करे! जब आत्मा यह स्थिति पावता है. यह शक्ति पावता है तब वाका अज्ञान सर्वथा दूर भया होता है. वो आपकों स्वतंत्र समझनांहि क्या

अनुभवताहि नहि. आपको शरीर—और सर्वेश्वरको शरीरी—आपको शेष और सर्वेश्वरको शेषी ऐसाहि देखता अनुभवता अनुष्ठान करता है. " आत्मेति " और " अविभागेन " के प्रकरणमें कही गयेकी उपासनातें यहांते वाका आरंभ और वोहि अंत फलदशामें सदाके लीये वास्तविक स्वरूपानुरूप है. यथार्थ ज्ञान है और फीर वो शरीरी और आपतें कोटीगुण ज्ञान शक्ति आनंद आदि कल्याण गुण स्वरूप रूप वैभवमें देखके वो ज्ञानप्रभाव प्रेम और वातें वाका आशक लब्ध वाके परतंत्र है. वैसा बनाहि रहता है. वाहिमें लाभ देखता है अनुभवता है. आपका और वाका भिन्न नहि सो संकल्पभी, ऐक्यता सो चित्तकी, विचारकी, संकल्पकी, क्रियाकी, भोगकी, वोहितो सत्य ऐक्यता. सो परमपदमें सर्वेका मध्यबिंदु सर्वेका जीवन एकहि है. सर्वे वाके अवयव—वाकी इच्छा पूर्ण होनेमें वाके अनुकुल होने रहेनेमेंहि आनंद माननेवाले होते हैं. वातें वाके ज्ञान वैभव आनंदके समभागी सो बाप बनके नहि, आप बनके नहि. किंतु बेटा बनके भोगते है. और तबहि सूत्रकार कहते है. बेटे होकेहि वो :

सूत्र—भोगमात्र साम्य लिंगा च ॥ २१ ॥

अर्थ—भोग मात्र समान लिंग होनेतें.

विवेचन—बस भया. जगत व्यापारको " मात्र " शब्दतें और स्पष्टतम अलग कर दीया. ठहरायाकी वो परतंत्र है और वोहि सिद्ध है. तबहि परमतत्व एक " सत्यज्ञानमनं ब्रह्म " है. वो कृपा करके गुहामें परिमित होता है. वाको जो उपासना करके आत्मा मानके उपासेतो आत्मा शरीरी करके अनुभव. वातें वाके सर्व भोग सो आपके हो जावे. "सोऽश्नुते सर्वान्कामान् सहब्रह्मणा विपश्चितेति" वो भोग हम सर्व भोग सके ऐसा हमारेमें रही ज्ञानशक्तिरूप संपत्तिः वाका आविर्भाव वो तब करता है. और आपहि भोगरूपभी होनेतें. और वो

हमाराहि शरीरी होनेतें वा कहोके वाके वन रहीके वाके अनु-कुल रहेनां येहि भोगनां. ऐसे यथार्थ ज्ञानवान फीर सदा चातें एक रहीके वाके भोग समभोगते है. वाके परतंत्र है. यातें अव जगत व्यापारकी गंध नहि रहनी चाहीये. त्यों यह डरभी नहि रहनां चाहीयेकी जब वाके खोलनेतें ज्ञान खुल्या है. वाका दीया भाग पाये. और भोगाया भोगते हैं. राजकुमार है तो पीछे जैसे पूर्व रहे वैसे जेलमें न भेज दे? वो ज्ञानसंकोच कीयाकि भंग गया. अज्ञान आया—स्वतंत्रमान, देहमें अहंभाव, आया. प्रकृतिके वश भये. प्राकृतोंकों चहे—और संसारमें फीर वहे! फीर कृपा करे तब कभी पीछा पत्ता लगे. ऐसा लीलातो नहि करता होगा! त वो पूर्ण दयालु न ठहरे. हमारी इतनीहि कृति जो वाकी आज्ञा शास्त्रकों परम प्रमाण मानके जो वर्ण आश्रममें रहे वहांसे वाकी आज्ञानुसार कर्म वाके आराधनरूप करते भये तप यज्ञ दानसेवन ज्यों अधिक बने त्यों करते—रजकों तमकों घटाते, हठाते, सत्वकी वृद्धि करते, वाकी उपासनामें लगते अनादिकालके असंख्य संचितकारके प्रारब्ध भोगके शेप रहे सोभी वांट जाय. और हमकों खास मार्गतें बुलावें—सो क्या! फीर वाहिमें पीछे गेरनेको! अव मैं जानेका हेतु "कर्म" ज्यों नहि रहे त्यों वाकी इच्छाका हेतु कृति संबंध सो नाहि रहा. हम इच्छा करनेवाले रहे वो विपयवान भोगीको अमृतदिव्य मील चूका. अव वो वमनका मन सर्वज्ञ होकेभी कोइ करे? अर्थात् कोइ कारण नहि रहा. न वाका स्वभाव ऐसा है वो तो असंख्य कल्याण गुणगणोंय महार्णव है. यातें फीर नहि कहनां रहता है कि—

सूत्र—॥ अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात् २२

अर्थ—पीछे आवृत्ति नहि है शब्दतें (२)

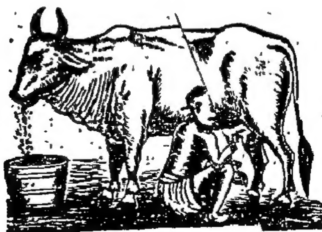
विवेचन—ते कही चूकी है कि यह पाईके मनुष्य पीछे नहि

फीरते हैं. पीछे नहि-फीरते ते वेर अध्याय समाप्तिके लीये सूत्र सरीख श्रुति भी कहती है. क्या आरंभतें अपुनरावृत्ति गतिवालोंके ऐश्वर्यका तो यह पाद है. वो क्या पीछे आवे ! उनकों क्यों पीछे भेजे ! जो यहांसेहि ज्ञानी आशक सो.

भगवानके शब्दमें " मियोहि ज्ञानिनोत्यर्थ महं सच ममप्रिय " ऐसे परस्पर प्रिय प्रियतम हो जाते हैं फीर वहां तो बीचका परदा भी हठ जाता है. फीरवो सदा जूटे रहे परस्पर दृढी सर्वदा सर्वथा चाहे दोनो एक रहे हो जवे है. वातें अधिक क्या कहे ? बस वातें जीवके भाग्यकी भोगकी उभयकी इति है.

चतुर्थअध्याय चतुर्थपादका इति.

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥



फीरते हैं. पीछे नहि-फीरते ते वेर अध्याय समाप्तिके लीये सूत्र सरीख श्रुति भी कहती है. क्या आरंभतें अपुनरावृत्ति गतिवालोंके ऐश्वर्यका तो यह पद है. वो क्या पीछे आवे ! उनकों क्यों पीछे भेजे ! जो यहांसेहि ज्ञानी आशक सो.

भगवानके शब्दमें " प्रियोहि ज्ञानिनोत्यर्थ महं सच ममप्रिय " ऐसे परस्पर प्रिय प्रियतम हो जाते हैं फीर वहां तो बीचका परदा भी हठ जाता है. फीरतो सदा जूटे रहे परस्पर वृद्धी सर्वदा सर्वथा चाहे दोनो एक रहे हो जाते हैं. वातें अधिक क्या कहे ? बस वातें जीवके भाग्यकी भोगकी उभयकी इति है.

चतुर्थअध्याय चतुर्थपादका इति.

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

